धर्मवीर भारती के साहित्य में जीवन मूल्य

पी-एच०डी० (हिन्दी)

उपाधि के लिए

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

सह निर्देशिका
डॉ० नीलम मुकेश
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग
डी० वी० कालेज
उरई

निर्देशक
डॉ० राकेश शुक्ल
रीडर, हिन्दी विभाग
राम स्वरूप ग्राम उद्योग परास्नातक
महाविद्यालय, पुखरायाँ,
कानपुर देहात

प्रस्तुति
श्रीमती बेबी सचान
ग्रा० पो० हासेमऊ,
पुखरायाँ, कानपुर देहात

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

सन् २००२ ई०

डॉ राकेश शुक्ल
रीडर, परास्नातक हिन्दी विभाग
राम स्वरूप ग्राम उद्योग परास्नातक
महाविद्यालय, पुखरायाँ,
कानपुर देहात

160, सुभाष नगर
पुखरायाँ, कानपुर देहात
दूरभाष- 05113-70460

दिनांक : 5-12-2002

प्रमाण-पत्र

सहर्ष प्रमाणित किया जाता है कि, श्रीमती बेबी सचान आत्मजा श्री राम बाबू सचान ने हम दोनों के निर्देशन में 'धर्मवीर भारती के साहित्य में जीवन मूल्य' विषय पर पी-एच0डी0 उपाधि के लिये बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के नियमों का पालन करते हुये दो सौ दिनों से अधिक तक अपना शोध कार्य सम्पन्न किया है।

इनकी वृत्ति सारग्रही एवं दृष्टि अन्वेषी रही है। इन्होंने बड़ी लगन, परिश्रम एवं रुचि के साथ अपने अभिप्रेत कार्य को पूर्ण किया है। हमारी दृष्टि में यह शोध कार्य मौलिक तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति एवं प्रस्तुति में उत्तम है।

अतः निरीक्षण के पश्चात इनकी सफलता की कामना करते हुए, इस शोध-प्रबन्ध को 'मूल्यांकन' हेतु विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने की संस्तुति करते हैं।

(डॉ0 नीलम मुकेश)
सह निर्देशिका

(डॉ0 राकेश शुक्ल)
शोध निर्देशक

विषय अनुक्रमणिका

****

भूमिका

डॉ0 धर्मवीर भारती स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के अग्रगण्य साहित्यकारों में से एक हैं। आप नयी कविता के प्रतिस्थापित कवि के अतिरिक्त एक श्रेष्ठ चिन्तक, शीर्षस्थ नाटककार, प्रमुख कथाकार, सफल निबन्धकार एवं विशिष्ट समीक्षक हैं। साहित्य की इतनी विधाओं में एक साथ इतनी सफलता प्राप्त करने वाले डॉ0 धर्मवीर भारती कदाचित् एकमात्र ऐसे साहित्यकार हैं।

कविता के क्षेत्र में धर्मवीर भारती की कुछ कृतियाँ जैसे- अन्धायुग और कनुप्रिया चिन्तन के नये आयाम प्रस्तुत करती हुई मील का पत्थर सिद्ध हुयी हैं। भारती जी का काव्य पुरानी जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को ढहाने का प्रयत्न करता है क्योंकि परम्परागत बासी मूल्यों को नवीन जीवन द्रुष्टि और अभिव्यंजना शैली की आवश्यकता है।

आज का युग समस्याओं और संकट का युग है। इस युग में यदि एक ओर मनुष्य ने अपना तीव्र भौतिक विकास किया है तो दूसरी ओर नैतिक मूल्यों पर मँड़रा रहा खतरा उसकी चिन्ता का विषय है। वस्तुतः दो प्रकार के जीवन मूल्य हुआ करते हैं - (1) शाश्वत जीवन मूल्य (2) समकालीन जीवन मूल्य ।

शाश्वत जीवन मूल्य जैसे- सत्य, नीति, सदाचार और धर्म अदि सदैव अपरिवर्तित एवं कालजयी जीवन मूल्य हुआ करते हैं।

जबकि समकालीन जीवन मूल्यों को सदैव देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहने की आवश्यकता है क्योंकि यदि समकालीन मूल्य अपरिवर्तित रहेंगे तो समाज में जड़ता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी ।

साहित्यकार धर्मवीर भारती जीवनमूल्यों के श्रेष्ठ चिन्तक रहे हैं इनकी प्रत्येक रचना और कृति में उनका अपना विशिष्ट मूल्यबोध दृष्टिगोचर हुआ है। अतः जीवनमूल्य या मूल्यबोध की दृष्टि से भारती का साहित्य विशिष्ट है।

परास्नातक कक्षा के दौरान मैं नयी कविता और विशेषतः डॉ० धर्मवीर भारती के काव्य से विशेष प्रभावित हुई। डॉ० भारती की जीवन दृष्टि उनके पूरे साहित्य में एक विशिष्ट मूल्य बोध से अनुप्राणित है। ऐसा मैंने उनके साहित्य के अध्ययन के दौरान अनुभव किया है। चूँकि जीवन मूल्य की दृष्टि से धर्मवीर भारती पर अभी तक कोई सर्वांग सम्पूर्ण प्रकाशित या अप्रकाशित शोध कार्य मुझे देखने को नहीं आया, अतः मेरे मन में **"धर्मवीर भारती के साहित्य में जीवन मूल्य"** शीर्षक पर शोध कार्य करने की प्रेरणा उत्पन्न हुई, इस प्रेरणा को और अधिक प्रोत्साहन तब बिला जब मेरे गुरुदेव **डॉ० राकेश शुक्ल,** प्राध्यापक हिन्दी विभाग, आर०एस०जी०यू० डिग्री कॉलेज, पुखारायाँ जो स्वयं हिन्दी नयी कविता एवं डॉ० धर्मवीर भारती साहित्य के मर्मज्ञ हैं, ने मुझे इस शीर्षक पर शोध कार्य अपने निर्देशन में करने की अनुमति दे दी। अस्तु उन्हीं के सुयोग्य निर्देशन में यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका।

मैं सर्वप्रथम अपने शोध निर्देशक एवं श्रद्धेय गुरुदेव **डॉ० राकेश शुक्ल** के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। उनके स्नेहपूर्ण आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन से इस कार्य को सम्पन्न कर पायी हूँ। गुण उनके हैं और त्रुटियाँ मेरी हैं। व्यस्तताओं के बावजूद आपने मेरे प्रबन्ध का शब्द-शब्द पढ़ा है और प्रारम्भ से अन्त तक बहुमूल्य सुझाव देकर मार्ग की बाधाओं को दूर किया है, नहीं जानती, श्री एवं श्रीमती शुक्ल के इस ऋण से मैं कब उऋण हो पाऊँगी ।

मैं इस शोध कार्य की सहनिर्देशिका विदुषी **डॉ० नीलम मुकेश** के प्रति भी हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक सहयोग प्रदान किया।

मैं विद्वान साहित्यकार **डॉ० रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी**, विद्वान प्राध्यापक **डॉ० रामलखन सचान** के प्रति आदर व्यक्त करती हूँ जिनकी प्रेरणा तथा परामर्शो से मैंने सदैव लाभ उठाया।

मैं पुस्तकालयाध्यक्ष **श्री श्याम मोहन त्रिपाठी, श्री हृदयकान्त श्रीवास्तव** एवं सह-पुस्तकालयाध्यक्ष **श्री केदार द्विवेदी, श्री अरूण कुमार श्रीवास्तव**, के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने सहृदयतापूर्वक मुझे महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध कराई।

मैं अपने पूज्य इष्टदेव एवं माता-पिता **श्री रामबाबू सचान, श्रीमती सुरजा देवी** के प्रति विनयावत् हूँ। मैं अपने आदरणीय भाईयों **अजीत सिंह, वीरेन्द्र सिंह, बसन्त कुमार, मनोज कुमार, मुकेश बाबू, श्यामबाबू, विश्वजीत** और अपनी भाभियों की, तथा बुआजी की हृदय से ऋणी हूँ, जिन्होंने मेरे इस कार्य में अपना हर सम्भव स्नेहिल सहयोग दिया। मैं बाबा **स्व0 द्वारिका प्रसाद** को याद करना भी अपना कर्तव्य समझती हूँ एवं अन्य सभी छोटों के प्रति स्नेह व्यक्त करती हूँ।

इस शोध कार्य के दौरान ही मेरा विवाह हो गया, किन्तु शोध कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ी। अस्तु अपनी माँ जी (सास), सहधर्मी **श्री सुरजीत सिंह,** बड़े भैया **श्री दलजीत सिंह, श्री अनिल सिंह** एवं अन्य सभी छोटे भाईयों के प्रति आदर व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझती हूँ। अपनी मित्रों **कु0 रेनू गुप्ता, कु0 राखी, कु0 रंजना, कु0 कविता** एवं **कु0 शिल्पी** के प्रति भी स्नेह व्यक्त करती हूँ जिनसे मुझे इस शोध कार्य में सहयोग मिलता रहा।

टाइपिस्ट **श्री रामचन्द्र वर्मा** ने इस शोध प्रबन्ध के छपने में इतना समय और मन लगाया है अतः मैं उनकी भी आभारी हूँ।

सुविधा की दृष्टि से इस "शोध-ग्रन्थ" को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। इस शोध ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में जीवन मूल्य : एक विश्लेषण के अन्तर्गत- मूल्य : समाजशास्त्रीय अवधारणा, मूल्य : दार्शनिक अवधारणा, मूल्य : सांस्कृतिक अवधारणा, मूल्यबोध : विविध दृष्टिकोण, नैतिकता और मूल्यबोध, समाकालीन बोध और मूल्य चर्चा, जीवनमूल्य और मानवतावादी चेतना, मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन, जीवन मूल्यों का प्रयोजन, सामाजिक यथार्थ और मानव मूल्य तथा शाश्वत जीवन मूल्य एवं समकालीन जीवन मूल्यों पर विचार किया गया है।

शोध ग्रन्थ के **द्वितीय अध्याय** में धर्मवीर भारती की जीवन-दृष्टि शीर्षक के अन्तर्गत भारती का जीवन बोध और मूल्य दृष्टि, मानव मूल्य और अन्तःसंघर्ष, सामाजिक पृष्ठभूमि और भारती, राजनैतिक पृष्ठभूमि और भारती, आर्थिक पृष्ठभूमि और भारती, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भारती तथा दार्शनिक पृष्ठभूमि और भारती के महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

शोध ग्रन्थ के **तृतीय अध्याय** में धर्मवीर भारती का काव्य साहित्य : मूल्य दृष्टि के अन्तर्गत भारती के काव्य का विकास, "दूसरा सप्तक" और कवि भारती, भारती के गीति-काव्य में जीवन मूल्य, "ठण्डा लोहा": प्रणयानुभूति और मूल्य दृष्टि, "सात गीत वर्ष": मानव आस्था और मूल्य बोध, "अंधायुग" : वैयक्तिक मूल्य और सामाजिक मूल्यों का टकराव, "कनुप्रिया:" अस्तित्ववादी चिन्तन और संवेदनात्मक मूल्य के बिन्दुओं का अवलोकन किया गया है।

शोध ग्रन्थ के **चतुर्थ अध्याय** में भारती का कहानी साहित्य : जीवन मूल्य शीर्षक के अन्तर्गत यथार्थबोध के कहानीकार भारती, आस्था-अनास्था के बीच मूल्य बोध, भारती की कहानियों का चिन्तन बोध, भारती की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प पर प्रकाश डाला गया है।

इसी प्रकार शोध ग्रन्थ के **पंचम अध्याय** में भारती के उपन्यास साहित्य : जीवन मूल्य के अन्तर्गत गुनाहों का देवता : आदर्शोन्मुखा यथार्थवाद और मूल्यों का विघटन, सूरज का सातवाँ घोड़ा : जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा उपन्यासों का अनुशीलन किया गया है।

शोध ग्रन्थ के **षष्ठ अध्याय** में भारती के निबन्ध एकांकी एवं संस्मरण साहित्य में जीवन मूल्य शीर्षक के अन्तर्गत भारती के निबन्धों में मूल्य चेतना सम्बन्धी विचार, नदी प्यासी थी, (एकांकी संग्रह) : मनोवैज्ञानिक चिन्तन तथा भारती के संस्मरणों में उनकी मूल्य दृष्टि पर विचार किया गया है।

शोध ग्रन्थ के **सप्तम अध्याय** में भारती का समीक्षा साहित्य और जीवन मूल्य शीर्षक के अन्तर्गत वैयक्तिक मूल्य चेतना, सामाजिक मूल्य चेतना, आर्थिक मूल्य चेतना, सांस्कृतिक मूल्य चेतना, पौराणिक मूल्य चेतना, राजनैतिक मूल्य चेतना, साहित्यिक मूल्य चेतना, दार्शनिक मूल्य चेतना, मनोवैज्ञानिक मूल्य चेतना तथा भारती की समीक्षा पद्धतिः जीवन दृष्टि के आलोक में महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

इस शोध ग्रन्थ के **अष्टम एवं अन्तिम अध्याय** में 'उपसंहार' शीर्षक के अन्तर्गत मूल्यों के बदलाव की आवश्यकता एवं सम्भावनायें एवं निष्कर्ष निकाले गये हैं तथा उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया है।

डॉ0 धर्मवीर भारती हिन्दी साहित्य के एक महान साहित्यकार हैं अस्तु ऐसे साहित्यकार के साहित्य पर विद्वान लोग ही कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं। मैं तो एक अल्पज्ञ पाठिका भर हूँ अस्तु मुझमें इतनी सामर्थ्य कहाँ कि मैं इस महान विषय पर कुछ निष्कर्ष निकाल सकूँ।

इस शोध कार्य में मैं अपनी मौलिकता का दावा किंचित नहीं करती हूँ, विद्वान समीक्षक मेरी इस विवशता को समझते हुए क्षमा करेंगे तथा मुझे प्रोत्साहित करेंगे, ऐसी मेरी आशा है।

विनीता,

बेबी सचान

दिनांक: 01-12-2002

(श्रीमती बेबी सचान)

अध्याय एक

अध्याय - एक

जीवन मूल्य : एक विश्लेषण

(1) मूल्य : समाजशास्त्रीय अवधारणा

(2) मूल्य : दार्शनिक अवधारणा

(3) मूल्य : सांस्कृतिक अवधारणा

(4) मूल्यबोध : विविध दृष्टिकोण

(5) नैतिकता और मूल्य बोध

(6) समकालीनता बोध और मूल्य चर्चा

(7) जीवन मूल्य और मानवतावादी चेतना

(8) मूल्यांकन- पुनर्मूल्यांकन

(9) जीवन मूल्यों का प्रयोजन

(10) सामाजिक यथार्थ और मानव मूल्य

(11) शाश्वत जीवन मूल्य एवं समकालीन जीवन मूल्य

जीवन मूल्य : एक विश्लेषण :

'जीवन' के कोशगत अर्थ निम्न प्रकार हैं। यों तो "यह शब्द संस्कृत का पुर्ल्लिंग शब्द है जिसका अर्थ है - जीवन, जीता रहना, प्राण धारण, जीवित दशा, जीवन का आधार रूप वस्तु।"[1]

एक अन्य कोश के अनुसार "जीवन वह स्वाभाविक धर्म है जो कि वनस्पति, प्राणी और मनुष्य में समान रूप से मिलता है तथा अन्य वस्तुओं से अलग भी करता है।"[2]

दोनों कोशों के अर्थ देखने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनुष्य एवं मनुष्येत्तर प्राणियों के जन्म-मृत्यु के बीच घटित होने वाले स्वाभाविक धर्म को जीवन कहते हैं जो निर्जीवों से उनकी सत्ता को अलग करता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जीवन को प्रगति पथ पर चलने के लिये प्रेरित करते हुये कहा है कि "जीवन को ठीक उसी प्रकार समय-पथ पर चलने देना चाहिये। जिस प्रकार वनस्पतियों पर ओस बिन्दु पुलकते हैं।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण का आशय यह है कि शाश्वत एवं समकालीन जीवन मूल्य वह हैं जो जीवन को आनन्द से पूर्ण बनाते हैं क्योंकि जिस प्रकार ओस बिन्दु के पड़ने से वनस्पति पुष्ट एवं तुष्ट होती है उसी प्रकार जीवन मूल्यों को अपनाकर व्यक्ति अपना जीवन पुष्ट एवं तुष्ट बना सकता है।

'मूल्य' बीसवीं शताब्दी का कदाचित् सर्वाधिक बहुचर्चित शब्द है यदि हम विभिन्न कोशों पर दृष्टिपात करें तो मूल्य का अर्थ इस प्रकार है-

---

1. वृहत हिन्दी कोश, सं0 कालिका प्रसाद, राजबल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव,पृ0 425
2. Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol.VIII, Life and Death, pg.I
3. Dictionary of Thought Life, pg. 341.

" 'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल्' धातु में 'यत्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी आदि होता है।"[1]

वस्तुतः " 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी भाषा के (Value) शब्द का पर्याय है। लैटिन भाषा (Valere) शब्द से (Value) शब्द का निर्माण हुआ है। (Valere) का अर्थ है- सुन्दर या उत्तम। जो कुछ उत्तम है और इच्छित है वही (Value) या मूल्य है।"[2]

वृहत हिन्दी कोश के अनुसार- "मूल्य संस्कृत भाषा का शब्द है, जो विशेषण के रुप में उन्मूलन के योग्य, खरीदने योग्य, जो मूल में हो के अर्थ में प्रयोग किया जाता है किन्तु जब यह पुल्लिंग के रूप में प्रयोग होता है तो वस्तु के बदले में दिया जाने वाला धन, कीमत, दाम, वेतन, पारिश्रमिक, उपयोगिता, रचना के भीतर वर्तमान रहने वाला ऐसा उद्देश्य जो उसे किसी सामाजिक आदर्श, व्यक्तिगत उच्चता आदि से जोड़े।"[3]

हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-9 में "मूल्यों को भावात्मक-अभावात्मक और तटस्थ रूप में स्वीकारा गया है।"[4]

"मूल्य वस्तुतः सामाजिक हैं जिसकी आधारशिला अर्थशास्त्र एवं राजनीति की प्रक्रिया में सुप्त है।"[5]

एक अन्य कोश के अनुसार- " 'मूल्य' शब्द के उपयोगिता, गुण, कीमत, भाव आदि संज्ञा के रूप में अर्थ बतलाये गये और क्रियात्मक संज्ञा के रूप में महत्व देना, आदर देना, कद्र करना, सम्मान देना आदि भी अर्थ होते हैं।"[6]

---

1. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 812
2. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया, पृ0 1
3. वृहत हिन्दी कोश, सं0 कालिका प्रसाद, राजबल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव,पृ0 912
4. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-9 द्रं0 हृदय नारायण मिश्र
5. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 पृ0 659
6. मानक अंग्रेजी- हिन्दी कोश, सं0 सत्य प्रकाश और बलभद्र प्रसाद मिश्र

उपर्युक्त कोशों का अवलोकन करने के पश्चात् हमें ज्ञात होता है कि मूल्य संज्ञात्मक और क्रियात्मक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। वह संज्ञा के रूप में अमूर्त रहता है तो कभी-कभी किसी माध्यम द्वारा मूर्त भी हो जाता है। अमूर्त संज्ञा की दृष्टि से मूल्य शब्द कीमत अथवा शुभ या अच्छाई के रूप में प्रयुक्त होता है इसकी पुष्टि डिक्शनरी ऑफ फिलॉसफी भी करती है-

"मूल्य का उपयोग संज्ञा और क्रिया दोनों प्रकार से होता है। वह संज्ञा रूप में अमूर्त रहता है, तो कभी-कभी किसी माध्यम द्वारा मूर्त भी हो जाता है। अमूर्त संज्ञा की दृष्टि से 'मूल्य शब्द' कीमत अथवा शुभ या अच्छाई के रूप में प्रयुक्त होता है।"[1]

विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से मूल्य के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। डॉ0 भरत कुमार कहते हैं कि - "मूल्य हमारी निजी अभिवृत्ति का वह कार्य है जो निसर्ग और मनुष्य के बीच होने वाले संघर्ष के परिणामस्वरूप शेष बचता है अर्थात जिसकी उपयोगिता एक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र अथवा विश्व के लिये उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण परिग्रहण है और साथ ही वह आस्तिकमय तथा निर्धारक प्रवृत्ति भी है।"[2]

डॉ0 नगेन्द्र मूल्य का तात्पर्य समझाते हुए कहते हैं कि - "मनुष्य के कर्म अथवा भोग के फलितार्थ रूप में जिसका महत्व या मान होता है, सामान्यतः उसे ही मूल्य कहते हैं।"[3]

एक अन्य स्थान पर वे मूल्य के लक्षण बताते हुए कहते हैं "मूल्य उस गुण या गुण-समवाय का नाम है जो किसी पदार्थ की, अपने लिये, प्रमाता के लिये अथवा अपने परिवेश के लिये सार्थकता का निर्धारण करता है। पदार्थ का गुण होने के कारण मूल्य की

---

1. Dictionary of Philosophy, ed.Degobert D.Runes
2. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य (खण्ड-प्रथम), डॉ0 भरत कुमार सिंह, पृ0 23
3. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 158

सत्ता वस्तुपरक है किन्तु प्रमातृसापेक्ष होने के कारण वह व्यक्तिपरक है।"[1]

जीवन मूल्यों की स्थापना के सन्दर्भ में विवेचन करते हुए डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है -

"अनुभूति और जीने की अधिकार वांछा को कलाकार (या साधारण जन) किसी भी कर्मश्रृंखला के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है तो वहीं वह मानव-मूल्यों की स्थापना करता है।"[2]

डॉ0 रमेश देशमुख की मान्यता है कि - " मानवी जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखाने वाले गुणों को जीवन मूल्य कहा जाता है। मूल्य शाश्वत व्यवहार है। इनका निर्माण मानव के साथ-साथ हुआ है। यदि इनका अन्त होगा तो सभ्यता के साथ-साथ मानवता भी समाप्त हो जायेगी ।"[3]

इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जन्म से मृत्यु पर्यन्त होने वाले जिन संस्कारों के सहारे निरन्तर सत्य के समीप पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होता है वे ही संस्कार जीवन मूल्य कहे जाते हैं। इस प्रकार सत्यता, दया, विनय जो दया का ही सार रूप हैं धैर्य, संतोष, समता, शील, ईमानदारी, एवं अनुशासन आदि ही जीवन मूल्य है, जो मानव के भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन हेतु आवश्यक होते हैं और मानव को प्रगतिशील मानवीय जीवन की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। यदि साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो हम कह सकते हैं कि रचना के भीतर विद्यमान रहने वाला ऐसा उद्देश्य जो उसे किसी सामाजिक आदर्श, व्यक्तिगत उच्चता आदि से युक्त करता हो, उसे जीवन मूल्य कहते हैं।

---

1. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, डॉ0 नगेन्द्र, पृ0 160
2. लहर, सितम्बर 60, डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ0 44
3. आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, डॉ0 रमेश देशमुख, पृ0 9

1. मूल्य : समाजशास्त्रीय अवधारणा :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसी कारण वह समाज तथा परिवार से मूल्य ग्रहण करता है। मूल्य सामाजिक विषय का अंग है क्योंकि जीवन मूल्यों का जितना सम्बन्धा व्यक्ति से है उतना समाज से भी। सामाजिक मूल्य ही मानव की उन अभिवृत्तियों, नीतियों आदि से सम्बन्धित होने के कारण ही समाज, राष्ट्र और मानवता की विस्तृत सीमा को गति प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्यों के लिये वैयक्तिक मूल्यों को त्यागना जरुरी होता है। क्योंकि व्यक्ति को समाज हित के लिए अपने वैयक्तिक स्वार्थो की बलि देनी पड़ती है। राष्ट्र प्रेम, समाज प्रेम, मानवता, अहिंसा, दया, त्याग, क्रान्ति और समन्वय की भावना आदि से उत्पन्न मूल्य समाजशास्त्री हैं। समाजशास्त्र के विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक दृष्टि से मूल्यों पर विचार किया है।

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार- "समाज प्रचलनों और प्रणालियों की सत्ता और पारस्परिक सहायता की, अनेक समूहों और श्रेणियों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों की और स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है।"

डॉ0 बेवर के शब्दों में- "सर्वोच्च मूल्य तो अभी भी सर्वोच्च ही हैं और उनके सम्बन्धा में चुनाव के लिये सावधानी और उत्तरदायित्व की आवश्यकता है।" एक अन्य विद्वान मूल्य की समाजशास्त्रीय अवधारणा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि - "मूल्यों के विकास के लिये सामूहिक प्रयत्न की आवश्यकता होती है। समाजशास्त्रियों के अनुसार मानवीय प्रकृति और समाज मनुष्य को मूल्य शोधी प्राणी बनाने के लिये उत्तरदायी हैं। सामाजिक जीवन में मानव की इच्छाओं, आदतों और अभिरूचियों का इस प्रकार रूपान्तरण हो जाता है कि दूरस्थ मूल्य उत्प्रेरित होते हैं।"[1]

---

1. निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, देवेन्द्र नाथ त्रिवेदी, पृ0 25-26

उपर्युक्त विद्वानों के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि समाज में प्रचलनों और प्रणालियों की सत्ता सर्वोच्च है इसलिये मानवीय प्रकृति और समाज में मनुष्य को मूल्यों के सम्बन्ध में चुनाव करते समय सावधानी और उत्तरदायित्व की आवश्यकता है। क्योंकि मूल्यों का विकास पूर्णतः समाजाभिमुख है चूँकि व्यक्तियों का सुख-दुःख का उदात्तीकरण ही समाज के अन्तर्गत आता है। मूल्यों का विस्तार समाज के ही कारण सम्भव है इस तत्व को स्वीकार करते हुए डॉ0 भरत कुमार कहते हैं कि - "समाजशास्त्र जीवन मूल्यों का अध्ययन उदात्त रूप से करता है। मूल्यों का समाजशास्त्र समाज की आर्थिक, मानसिक, राजनीतिक एवं दार्शनिक स्थिति पर निर्भर रहता है। यह शास्त्र सामाजिक वर्तन द्वारा व्यक्ति तक के निकष निकालता है। इन निकर्षों से सामाजिक मूल्यों का विवेचन होता है।"[1]

पाश्चात्य विद्वान भी इस तत्व को स्वीकारते हैं -

"सामाजिक दृष्टि से मूल्यों को उस निकष पर परखा जाता है जिसके द्वारा समुदाय या समाज व्यक्तियों, पद्धतियों, उपलब्धियों तथा अन्य उद्देश्यों का निर्णय करता है।"[2]

उपर्युक्त कथनों के विश्लेषण से यह पता चलता है कि समाज की संरचना, आर्थिक, मानसिक, राजनैतिक, दार्शनिक आदि की उपलब्धियों द्वारा होती है जिसे अपनाकर समाज अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। इसको प्राप्त करने के लिये प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा में नैतिक तत्वों को सम्मिलित किया जाय क्योंकि नैतिकता और सामाजिकता दोनों एक दूसरे के पूरक हैं क्योंकि नैतिक मूल्यों और आदर्शों को ग्रहण कर समाज में ही समृद्ध और विकसित होते हैं। नैतिक मूल्यों में आदर्श का तत्व रहता है जो उचित अनुचित का विचार करता है।

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य, (खण्ड-प्रथम), डॉ0 भरत कुमार सिंह पृ0 93

2. Sociologically, values may be defined as those criteria according to which the group or society judges the importance of Persons patterns, goals, and other socio-cultural objects. Sociology, Joseph H. Fichter, pg. 393-94.

क्योंकि जीवन मूल्यों का आधार नैतिकता है और नैतिकता की भावभूमि धार्मिक आस्था है। इस प्रकार धर्म और सदाचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है 'सतां आचारः सदाचारः' के अनुसार सज्जन मनुष्यों का आचरण ही सदाचार है। 'शांति जोशी', 'नीतिशास्त्र' में सदाचार को स्वतंत्र मूल्य बताते हैं-

"सदाचार एक स्वयं मूल्य है और तुलनात्मक अध्ययन में मूल्य रूप धारण करता है और स्वतंत्र रूप से भी 'सदाचार' में मूल्य स्थित होते हैं। अर्थात् सदाचार नैतिक दृष्टि से स्वयं मूल्य है और सामाजिक दृष्टि से मूल्य युक्त या मूल्य-मय है इसी कारणवश सदाचार मनुष्य का उत्थान एवं प्रणति का चिह्न है। सदाचार व्यक्तिगत एवं मानव कल्याण के रूप में भी औचित्य सम्पन्न है और आत्मगत एवं वस्तुतगत औचित्य के रूप में शुभ प्राप्ति की ओर संकेत भी करता है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण का आशय यह है कि सदाचार नीतिशास्त्रीय गुण है जो समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण अंग बन गया है इसके बिना समाजशास्त्र का अध्ययन अपूर्ण रहता है इसमें सबसे प्रबल एवं बलवान गुण सदाचार है, इसको अपनाकर मनुष्य अपना जीवन श्रेष्ठ बनाता है तभी सदाचार मानव जीवन का गुण ही नहीं बल्कि जीवन जीने की रीति हैं। इसको आदर्श रुप में स्वीकार कर हम किसी भी व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र को उर्ध्वगामी बनाते हैं। इसमें व्यक्ति की संस्कृति, व्यवहार, आचरण आदि का बोध होता है क्योंकि इनका सम्बन्ध मानव से है-

"सामाजिक मूल्यों में सामाजिक संगठन एवं परस्पर लोकाचार बनाए रखने की अत्यधिक आवश्यकता है। परस्पर सामाजिक सम्बन्ध के कारण व्यक्ति का व्यक्ति से एवं समाज से घनिष्ठ नाता है और इसी के फलस्वरूप उन पर पूर्ण नियंत्रण है एवं उन्हें कार्यान्वित करने के लिये सामाजिक मूल्य सहायक हैं।"[2]

---

1. नीतिशास्त्र, शांति जोशी, अ0 21, पृ0 555
2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 52

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूल्य निर्माण का प्रमुख आधार सामाजीकरण की प्रक्रिया है जो सामाजिक संगठन एवं परिवर्तन का हेतु है। मनुष्य के सामाजीकरण की क्रिया को अनेक बाह्य तत्व प्रभावित करते हैं इसके समर्थन में डॉ0 भरत कुमार का मत है -

"जीवन मूल्यों का समाजशास्त्र लोकाचार (Mores) से अधिक सम्बन्धित है। सामाजिक आचार-व्यवहारादि, लोकनीति जीवन मूल्यों की जनक है और सामाजिक शास्त्र उससे निर्मित एवं विकसित हैं।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्र के अन्तर्गत जो रूढ़ि परम्परा, नियम, कायदा, कानून आदि बनाये गये हैं उनका पालन किया जाता है। ये कभी-कभी समाज के लिये घातक सिद्ध होती है। इन सभी का सूक्ष्म अध्ययन कर इसमें जो अच्छाइयाँ हों उन्हें स्वीकार कर तथा नये नियमों का पालन कर समाज को आगे बढ़ना चाहिये, क्योंकि मूल्य विहीन समाज के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इसकी पुष्टि करते हुये आँग्ल विद्वान ने कहा है -

"मूल्य-विहीन समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। प्रत्येक अस्तित्वशील समाज मूल्यों की बुनियाद पर स्थित है। मूल्य एक जटिल सम्पूर्णता है .... चेतन प्राणी शास्त्रीय सामाजिक आदर्श दशा है।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार हम कह सकते हैं कि हमारे महापुरुषों ने समाजहित के लिये जो मानदण्ड निश्चित किये हैं उसकी बुनियाद सामाजिक मूल्य ही हैं इसलिये -

"मूल्य एक ऐसा मापदण्ड (Criteria) है जो सम्पूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्ता प्रदान करता है। सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति (तुष्टि) एवं सामान्य-जन भलाई की रक्षा हेतु ही लोगों का मूल्यों की ओर विशेष ध्यान रहता है।"[3]

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य (खाण्ड-प्रथम), डॉ0 भरत कुमार सिंह, पृ0 94
2. "A value is a complete gestalt, a conscious vital Social-ideal situation."
   The Social Structure of Values, R.K. Mukherjee, Pg. 107
3. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 52

डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल ने सामाजिक दृष्टि से जीवन-मूल्यों को दो भागों में विभाजित किया है -

"वैयक्तिक मूल्य एवं सामाजिक मूल्य। वस्तुतः वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों को दो भागों में विभाजित करने पर इनके मध्य कोई रेखा खींचना सम्भव नहीं है, क्योंकि वैयक्तिक मूल्यों को जब व्यक्ति की सीमा से परे समाज में देखाने का प्रयास किया जाता है तो वही मूल्य सामाजिक मूल्य कहलाते हैं।"[1]

इस प्रकार समाज की दृष्टि से अगर हम मूल्यों का विवेचन करें तो वैयक्तिक मूल्य और सामाजिक मूल्यों में अंशतः भेद दिखलाई देता है। वैयक्तिक मूल्यों में व्यक्ति-स्वातंत्र्य, अहिंसा, मोक्ष, संवेदना आदि अभिवृत्तियों से सम्बन्धित होते हैं और ये समाज के अधीन होते हैं। जब व्यक्ति अपने इन संकुचित स्वार्थो को त्यागकर समाजहित के लिये जो कार्य करता है वही वैयक्तिक मूल्य सामाजिक मूल्य बन जाते हैं।

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के सम्बन्ध में नेम नारायण जोशी 'व्यक्ति-स्वातंत्र्य : पृष्ठ पर चिन्तन' शीर्षक के अन्तर्गत स्पष्ट घोषणा करते हैं -

आश्चर्य इसी बात का है कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य का यह मूल्य पौराणिक पक्ष 'फिनिक्स' की भाँति हर बार अपनी राख से, अपने ध्वंसावशेष से पुनः जी उठता है और समष्टि के नानाविध रूपों-समाज, प्रशासन, कानून संविधान धर्म आदि में जूझने लगता है। जान पड़ता है इस मूल्य का बीज मनुष्य के रक्त में है, और यह रक्त बीज अपनी जिजीविषा से, अपनी प्राण शक्ति में उद्धम और दुर्निवार है। शायद यह उसी दिन तक जुझाए बना रहेगा जब तक व्यक्ति असहाय, अकिंचन, बौना मूक और पंगु बना रहेगा और विश्राम तभी लेगा जब व्यक्ति आत्म-नियन्ता बनकर अखण्ड स्वतन्त्रता का उपभोग करने लगेगा।"[2]

---

1. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुंकुमचन्द्र राजपाल, पृ0 54
2. बिन्दु : मूल्य विश्लेषण- अंक- अक्तूबर 1967, पृ0 71-72

उपर्युक्त समाजशास्त्रीय अवधारणा के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्रीय मूल्यों में सामाजिक मान्यतायें, पद्धतियाँ, संगठन, परस्पर आचार व्यवहारादि, रूढ़ि परम्परा, कायदा, कानून आदि को बनाये रखाना तथा उनके आदर्शों का पालन करना है।

2. **मूल्य : दार्शनिक अवधारणा :**

दर्शन शब्द संस्कृत का पुर्ल्लिंग शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति दृश धातु में 'ल्युट' प्रत्यय लगाने से बना है।इसका अर्थ देखाना है।"[1]

यदि हम वृहत हिन्दी कोश पर दृष्टि दौड़ायें तो उसके अनेकानेक अर्थ इस प्रकार है- "दर्शन संस्कृत का पुर्ल्लिंग शब्द है जिसका अर्थ होता है चाक्षुष प्रत्यक्ष, साक्षात्कार, जानना, वह शास्त्र जिसमें आत्मा, अनात्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, पुरुष, जगत, धर्म, मोक्ष, मानव-जीवन के उद्देश्य आदि का निरुपण हो, तत्व ज्ञान कराने वाला शास्त्र (छः आस्तिक सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा (पूर्व मीमांसा) और वेदान्त (उत्तर मीमांसा तथा छः नास्तिक चार्वाक, जैन, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रांतिक और वैभाषिक), बुद्धि, परीक्षण, शास्त्र, धर्म, यज्ञ, उपस्थिति (न्यायालय में)।"[2]

डॉ0 बल्देव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ भारतीय दर्शन में जीवन दर्शन का अंग्रेजी पर्याय फिलासॅफी शब्द 'फिलॉस' और 'सोफिया' के योग से बना है। 'फिलॉस' अनुराग और 'सोफिया' का अर्थ विद्या है। इस प्रकार 'फिलॉसफी' को भूत विज्ञान के स्तर का विद्यानुराग कहा जा सकता है।"[3]

---

1. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 450
2. वृहत हिन्दी कोश, सं0 कालिका प्रसाद, राजबल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, पृ0 509
3. भारतीय दर्शन, डॉ0 बल्देव उपाध्याय, पृ0 45

इस तरह हम निष्कर्ष रूप में दर्शन को कह सकते हैं कि जिसमें आत्मा, जीव, ब्रह्म, प्रकृति, धर्म, मोक्ष, आस्तिक, नास्तिक, तत्वों का ज्ञान और मानव जीवन के उद्देश्य आदि का निरुपण ही विद्यानुराग कहा जा सकता है।

इस प्रकार दर्शन शब्द का सामान्य अर्थ देखें तो किसी श्रेष्ठ व्यक्ति का एक-एक गुण जीवन में उतारना यही उत्तम सेवा एवं दर्शन है। विशिष्ट अर्थ है आत्मा का दर्शन, जो मन और बुद्धि से परे है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि किसी महापुरुष के आदर्श विचारों से ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है अर्थात् दृष्टि विशेष से जीवन को निरखाना एवं परखाना दर्शन है। इसकी पुष्टि करते हुये देवराज ने कहा है -

"दृष्टि-विशेष से जीवन को निरखना-परखना' - दर्शन का मूल अभिप्रेत सिद्ध होता है। जीवन पर समग्र चिन्तन की विशिष्ट पद्धति को दर्शन कहना सर्वथा समीचीन कहा जा सकता है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण का आशय है कि दर्शन का अर्थ है देखाना, यह शब्द देवादि महान सत्ताओं को देखाने में हो गया है जैसे- चन्द्र दर्शन, सूर्य दर्शन, देवदर्शन आदि। दर्शन मूर्त एवं अमूर्त सभी पदार्थो का होता है। इसीलिये उपनिषद में आत्मा को दर्शन का विषय माना गया है।

डॉ0 देवराज ने "दर्शनशास्त्र के इतिहास में मानव जीवन से सम्बन्धित मूल्यों का विस्तृत वर्णन किया है - "सृष्टि का लक्ष्य अखाण्ड परात्पर सत्ता है। अखाण्ड, अलौकिक सत्ता का साक्षात्कार ही दर्शन है।"[2]

---

1. दर्शनशास्त्र का इतिहास, डॉ0 देवराज, पृ0 450
2. दर्शनशास्त्र का इतिहास, डॉ0 देवराज, पृ0 450

मानवीय मूल्यों पर विशेष बल देते हुए **डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया** भी कहते हैं- "दर्शन-शास्त्र में जगत-जीव और प्रकृति पर विचार के साथ-साथ मानव पर भी विचार हुआ और मानवीय मूल्यों पर विशेष बल दिया गया।"[1]

भारतीय विद्वान **डॉ0 राधाकृष्णन्** ने दर्शन को केवल चिन्तन की वस्तु न समझकर उसका साक्षात्कार कराते हुए कहते हैं-

"भारतीय इतिहास के प्रारम्भ से ही मानव-चेतना की एक निश्चित दिशा निर्धारित कर दी गयी है। अपना अस्तित्व बनाये रखना और आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है आत्म साक्षात्कार करना ।"[2]

इतिहास गवाह है कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर मानव जीवन ही सर्वोत्तम है क्योंकि मानव अपनी तर्कशक्ति एवं चिन्तन शक्ति के द्वारा अपने जीवन को सफल बनाता है इसीलिये वह महान है -

डॉ0 दीवानचन्द ने ठीक ही कहा है - "पृथ्वी पर कोई वस्तु इतनी महान नहीं जितना मनुष्य है; और मनुष्य में कोई अंश इतना महान नहीं, जितना उसका मन है।"[3]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पृथ्वी पर सबसे महान उपलब्धि मानव समाज है। इसलिये आध्यात्मिक विकास हो या भौतिक विकास सभी जगह मानव ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस तत्व को स्वीकारते हुए **डॉ0 राम गोपाल सिंह** ने कहा है -

"व्यक्ति के भौतिक विकास के साथ-साथ उसके आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता

---

1. हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया, पृ0 8
2. पूर्व पश्चिम : भारतीय जीवन, डॉ0 राधाकृष्णन्, पृ0 7-9
3. दर्शन संग्रह, डॉ0 दीवान चन्द्र, पृ0 25-26

के महत्व का प्रतिपादन कर, आध्यात्मिक भौतिक विकास के समन्वय में ही व्यक्ति और समाज की वास्तविक प्रगति का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया है।"[1]

पाश्चात्य विद्वानों ने भी दर्शन में शुभ और अशुभ, सुन्दर, असुन्दर आदि मूल्यों को व्याख्यायित करते हुए कहा है -

"दर्शन में मूल्य-सिद्धान्त ऐसी धारणाओं का अध्ययन करता है जो शुभ, अशुभ, सुन्दर, असुन्दर एवं अभीष्ट है।"[2]

अंग्रेजी के विख्यात साहित्यकार **शेक्सपियर** ने शुभ की परिभाषा इस प्रकार दी है-

"संसार में कुछ भी शुभ व अशुभ नहीं है, यह केवल एक दृष्टिकोण है कि अमुक शुभ है, अमुक अशुभ।"[3]

एक अन्य विचारक **मूर** ने भी स्वीकार किया है -

"शुभ, शुभ ही है और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।"[4]

वस्तुतः दर्शनशास्त्र मूल्यों का निर्माण करता है वह शुभाशुभ तथा सांस्कृतिक मानदण्डों आदि का अन्वेषण कर समाज को गतिशीलता प्रदान करता है-

"दर्शनशास्त्र मूल्यों का निर्माण करने वाली वह विद्या है जो मनुष्य के समस्त

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ0 राम गोपाल सिंह चौहान, पृ0 48
2. Value theory in philosophy, is the study of such concepts as good, bad, desirable beauty, ugly.
   Value Theory, Chamber's Encyclopaedia, Vol.XIV, Page 211.
3. There is nothing either good or bad, but thinking makes it so.
   Hamlet, Shakespeare, Act II Scene 2, line 259
4. "Good is good and that is the end of the matter."
   Principia Ethica, G.F. Moore, page-6.

उत्कर्षापकर्ष का समग्रता में अनुशीलन करते हुए सांस्कृतिक मानदण्डों का अन्वेषण करती है। मूल्य वह सांस्कृतिक माध्यम है जो समाज में वास्तविक प्रभाव की खोज करता है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में सांस्कृतिक मानदण्ड प्राचीन काल से रहे हैं क्योंकि भारतीय जनमानस शुरु से धार्मिक रहा है। हमारे यहाँ धर्म की महत्ता को सर्वोपरि माना गया है। भारतीय धर्मशास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय, वर्णाश्रम व्यवस्था, चतुवर्गफल प्राप्ति आदि द्वारा जीवन विषयक मूल्य निश्चित हुए हैं इनके द्वारा जीवन को एक उचित मार्ग निर्देशन प्राप्त होता था जिससे जीवन को सुचारू तथा सुसंगत रूप से चलाया जाता था। **डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल** इस तत्व की पुष्टि करते हुए कहते हैं -

"भारत में ही सर्वप्रथम जीवन को व्यवस्थित चलाने के लिए पुरुषार्थ की कल्पना की गयी।"[2]

एक अन्य विद्वान ने पुरुषार्थ की महत्ता को स्वीकारते हुए कहते हैं -

"पुरुषार्थ वस्तुतः एक साधना है जिसमें धर्म के आधार पर अर्थ तथा काम (अर्थात इहलौकिक जीवन) की साधना करते हुए, पारलौकिक जीवन को साधने का प्रयास निहित है। पुरुषार्थ अभ्युदय तथा निःश्रेयस की साधना का माध्यम है।"[3]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारत में प्राचीन काल से ही दार्शनिक मूल्यों को जीवन में अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया। ये जीवन तत्वों का निचोड़ थे। परन्तु आज की दार्शनिकता जीवन की जिन परिस्थितियों से निर्मित होती है वह अधिक स्थायी नहीं रहती है क्योंकि इसमें स्वार्थ की भावना विद्यमान रहती है।

---

1. "Values, it may be said, are the culturally charmeled means of seeking positive affect."
   , Understanding Human Society, W.Golds Chmidt,page-80

2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल,

3. भारत में समाजशास्त्र प्रजाति और संस्कृत, गौरीशंकर भट्ट, पृ0 244

3. मूल्य : सांस्कृतिक अवधारणा :

महादेव शास्त्री दिवेकर ने अपने ग्रन्थ 'आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष प्रकरण' में संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए लिखाते हैं -

"संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग में कृ धातु से भूषण अर्थ में 'सुट का आगमन करके क्तिन प्रत्यय करने से......... इसका अर्थ होता है सम्यक् कृति या चेष्टा। इस प्रकार सम्यक् कृतियों और परम्परा से प्राप्त संस्कारों की समष्टि को संस्कृति कह सकते हैं।"[1]

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है -

"तैयार करना, रचना या कृति, संस्कार द्वारा पवित्र करना, संकल्प तथा प्रयत्न द्वारा कार्य की सम्पन्नता है।"[2]

यदि हम हिन्दी कोशों का अवलोकन करें तो संस्कृति शब्द का अर्थ निम्नवत् है-

"संस्कृति उस समुच्चय का नाम है जिसमें ज्ञान-विश्वास, कला, नीति, विधि, रीति रिवाज तथा अन्य ऐसी क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में मानता है।"[3]

मानक हिन्दी कोश में -

"संस्कृति आध्यात्मिक बौद्धिक तथा मानसिक सिद्धियों से सम्बद्ध है। यह संस्कृति कला-कौशल के क्षेत्र की उन्नति, सामाजिक रहन-सहन और परम्परागत योग्यताओं तथा

---

1. आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष प्रकरण, महादेवशास्त्री दिवेकर, पृ0 5
2. ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम, पृ0 1120
3. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-12, पृ0 14

विशिष्टताओं के आधार पर आंकी जाती है। .... संस्कृति लोगों के आंतरिक तथा मानसिक उन्नति की परिचायक होती है।"[1]

एक अन्य कोश में -

"विभिन्न शास्त्रों, दर्शन आदि में होने वाले चिन्तन, साहित्य, चित्रांकन आदि कलाओं एवं परहित साधन आदि नैतिक आदर्शो तथा व्यापारों को संस्कृति कहा जाता है।"[2]

उपर्युक्त कोशों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि निःसन्देह संस्कृति समाज का वह स्वच्छ दर्पण है जिसमें नैतिक आदर्श, परहित साधन, रीति-रिवाज, परम्परा से प्राप्त संस्कार, कला-कौशल के क्षेत्र की उन्नति व सामाजिक रहन-सहनआदि से निर्मित जीवन मूल्य प्रतिबिम्बित हो उठते हैं।

"संस्कृति के दो प्रकार होते हैं - भौतिक संस्कृति और अभौतिक संस्कृति। भौतिक संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्य के व्यवहार में आने वाली वस्तुएं आती हैं। जैसे - मकान, उपकरण, औजार, हथियार, बर्तन, यातायात तथा संचार के साधन आदि ।

अभौतिक संस्कृति के अन्तर्गत मानव समाज की वे अमूर्त वस्तुएं आती हैं जो सामाजिक व्यवहार के अन्तर्गत मूल में निहित है, जैसे - ज्ञान, धर्म, कला, रीति-रिवाज, रूढ़ियाँ, विश्वास आदि ।"[3]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति समाज सापेक्ष होती है चाहे वह भौतिक क्षेत्र हो या अभौतिक। **डॉ0 भरत कुमार** ने ठीक ही कहा है -

"जिस देश की जैसी जाति समाज-व्यवस्था, आचार-विचार पद्धति अथवा जीने की शैली होगी वैसी ही वहाँ की संस्कृति होगी। । स्थल काल सापेक्षा संस्कृति अपनी ऐतिहासिकता को प्रकट करती है।"[4]

---

1. मानक हिन्दी कोश, खण्ड-5, पृ0 243
2. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 801-802
3. सप्त सिंधु, वर्ष 18, अंक-1, जनवरी 1971, पृ0 34 विषय, विषय-स्वतंत्र।
   भारत में सांस्कृतिक चेतना का विकास
4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य (खण्ड-प्रथम), डॉ0 भरत कुमार सिंह, पृ0 99

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार हम कह सकते हैं कि जिस देश का जैसा सामाजिक परिवेश होगा वैसी ही वहाँ की संस्कृति होगी क्योंकि यह हमें जीने का ढंग बताती है इसी तत्व की पुष्टि करते हुए **डॉ0 रामधारी सिंह दिनकर** ने कहा है -

"असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सांस्कृतिक मूल्य सामाजिक होते हैं क्योंकि इन मूल्यों का विकास समाज के द्वारा ही सम्भव है। प्राचीन काल से ही भारतीय चिंतनधारा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जीवन के लिये अनिवार्य बताया गया है इनको प्राप्त करने के लिए तप की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। **डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय** ने तप को संस्कृति का प्राण स्वीकारते हुए कहा है -

"भारतीय संस्कृति का जो साधना पक्ष है, तप उसका प्राण है। तप का तात्पर्य है तत्व के साक्षात् दर्शन करने का सच्चा प्रयत्न। जो कही-सुनी बात हो उसका स्वयं अनुभव करना तप है। तप हमारी संस्कृति का मेरुदण्ड है। तप की शक्ति के बिना भारतीय संस्कृति में जो कुछ ज्ञान है, वह फीका रह जाता है। तप से ही यहाँ का चिन्तन सशक्त और रसमय बना है।"[2] इस प्रकार मनुष्य अपने जीवन को सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिये कर्म करता करता है। डॉ0 मुंशीराम शर्मा 'सोम' के अनुसार-

"संस्कृति इस प्रकार की विचार तथा कर्म दोनों क्षेत्रों को सींचती तथा पल्लवित करती रहती है। विचार और कर्म ही ऐसे साधन हैं जो या तो हमें कल्याण की ओर अग्रसर कर दें या निष्कृति की मध्यधारा में डुबो दें। सुसंस्कृत व्यक्ति के विचार तथा आचरण में एकता होती है। असंस्कृत मानव की कथनी-करनी में वैषम्य रहता है।"[3]

---

1. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ0 656
2. साहित्यिक निबन्ध संग्रह- सम्पा0 डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974 में पृ0 96 पर श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, के लेख 'भारतीय कला का अनुशीलन' से उद्धृत ।
3. साहित्यिक निबन्ध संग्रह-पृ0 134 पर, लेख 'संस्कृति और साहित्य एवं कला' से उद्धृत ।

वस्तुतः संस्कृति शब्द अपने आप में एक व्यापक अवधारणा को समाहित किये हुए है। इसे शब्दों में ठीक-ठीक व्यक्त कर पाना कठिन कार्य है। इस शब्द का प्रयोग विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है-

"भारतीय मनीषियों ने अपने देशवासियों में जीवन के आवश्यक कर्तव्यों, संयम और वैराग्य की महिमा और स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की ओर झुकने का जो प्रेम पैदा किया उनका ही परिणाम है कि भारतवर्ष दीर्घकाल तक पशु सुलभ क्षुद्र-स्वार्थो का गुलाम नहीं बन सका।"[1]

डॉ0 महावीर वत्स के मतानुसार-

"संस्कृति से ही मानव जीवन में सत्य, अहिंसा, प्रेम, परोपकार, उदारता, सहयोग, करुणा, दया, सहानुभूति आदि गुणों का विकास होता है। जिससे मानव स्वयं उन्नति के पथ पर अग्रसर होकर समाज को भी उन्नत करने में सक्रिय सहयोग देता है।"[2]

डॉ0 राधाकृष्णन के शब्दों में -

"संस्कृति विवेक-बुद्धि का, जीवन को भली प्रकार से जान लेने का नाम है।"[3]

एक अन्य विद्वान ने कहा है -

"चिंतन द्वारा अपने जीवन को सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिये मनुष्य जो यत्न करता है उसका परिणाम संस्कृति के रुप में प्राप्त होता है।"[4]

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 208
2. साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना- डॉ0 महावीर वत्स, पृ0 3
3. स्वतन्त्रता और संस्कृति, विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी, पृ0 53
4. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ0 19

उपर्युक्त कथनों का अवलोकन करने से हमें ज्ञात होता है कि हमारी भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र था जीवन को सुन्दर और कल्याणमय बनाया जाय। मानव को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये जप, तप, संयम और कर्तव्यनिष्ठा, धर्म परायणता, शांति, प्रेम, अहिंसा, परोपकार, पारस्परिक सौहार्द, त्याग, कर्तव्य पालन, अनुशासन आदि गुणों को अपनाना चाहिये जिससे वह स्वयं तथा समाज को उन्नति के पथ पर प्रतिष्ठित कर सकें।

इसकी पुष्टि बी0एन0 लूनिया के मत से हो जाती है "जब किसी संस्कृति में उदारता, अहिंसा, करुणा, मैत्री परोपकार, सत्य, विनय जैसे गुण विद्यमान होंगे तो निश्चय ही उसकी दृष्टि भी लोकमंगलकारी प्रयत्नों की ओर उन्मुख होगी। भारतीय संस्कृति को यह गौरव युगों से प्राप्त है। इस संस्कृति के उन्नायकों की यह ऊँची भावना रही कि वे अपना सर्वस्व त्याग कर भी दूसरों को सुखी बनाने का प्रयास करें।"[1]

हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति में समता, उदारता, मानवता, अहिंसा, करुणा, मित्रता, परोपकार, सत्य, विनय, बन्धुत्व, सहयोग, सहानुभूति, नैतिकता, ईमानदारी आदि को जीवन के सर्वोच्च मूल्य स्वीकार किये गये हैं। जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त हैं। व्यक्तिगत जीवन को सुन्दर और सार्थक बनाने के लिये इन मूल्यों का आचरण करना आवश्यक है। परन्तु हमें यह ध्यान रखना होगा कि अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों को हम पहले प्राथमिकता दें तभी हम दूसरों को सुखी रख सकते हैं।इसी कल्याणमयी भावना से ओत-प्रोत ये पंक्तियाँ हैं :-

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ।।"

इसी कल्याणमयी भावना के कारण हमारी भारतीय संस्कृति आज तक विदेशों में भी विद्यमान है-

---

1. प्राचीन भारतीय संस्कृति, बी0एन0 लूनिया, पृ0 20

"भारतवर्ष ने एशिया और यूरोप के देशों को अपनी धर्म-साधना की उत्तम वस्तुएँ दान दी हैं। उसने अहिंसा और मैत्री का सन्देश दिया है, क्षुद्र, दुनियावी स्वार्थो की उपेक्षा करके विशाल आध्यात्मिक अनुभूति का उपदेश दिया है, और उससे जिन बातों को ग्रहण किया है वे भी उसी प्रकार महान और दीर्घ स्थायी रही हैं।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो हमारे शाश्वत मूल्य हैं वे एशिया में हो या यूरोप में सभी जगह मानवता और मनुष्यता की बात करते हैं।

डॉ0 रविकुमार 'अनु' ने ठीक ही कहा है-

"संस्कृति किन्हीं शाश्वत मूल्यों के संयोजन में व्यस्त रहती है, जिनके अन्तर्गत समस्त मानव-समाज भौतिक जीवन से आगे बढ़कर मानवीय सत्यों का साक्षात्कार कर सकता है, मानवता अथवा मनुष्यता की बात कर सकता है।"[2]

एक आंग्ल विद्वान ने भी इसकी पुष्टि करते हुए स्वीकार किया है-

"संस्कृति पूर्णत्व की खोज है, वह पूर्णत्व जो मानव को मानवता और समाज को सर्वांगीण उन्नति की ओर ले जाता है। संस्कृति इस सर्वांगीण उन्नति हेतु धर्म, कला, विज्ञान काव्य दर्शन तथा इतिहास का सहारा लेती है। सुसंस्कृत व्यक्ति, प्रकाश, सौन्दर्य, ज्ञान, समानता, को सर्वसुलभ करने का प्रयास करते हैं।"[3]

उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही उदार, सर्वसमन्वयक एवं सर्वकल्याणकारी रही है। इसमें वसुधैव कुटुम्बकम की भावना विद्यमान है। यह मनुष्य का आन्तरिक तथा नैतिक विकास कर उसे मनुष्यता की श्रेणी तक ले जाती है। **पं0 जवाहर लाल नेहरु** ने ठीक ही कहा है-

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 203
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना, डॉ0 रविकुमार 'अनु' पृ0 8
3. Culture and Anarchy, Mathew Arnold, page-91

"संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सद्व्यवहार है और दूसरे को समझने की शक्ति है।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति ही मनुष्य को मानव बनाती है क्योंकि यह सदैव गतिशील है इसकी गतिशीलता का रहस्य मानव जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों में निहित है जो व्यक्ति का आन्तरिक एवं वाह्य विकास कर उसके जीवन को सार्थक बनाती है। यह अनेकत्व में एकत्व की स्थापना करती है।

4. मूल्यबोध : विविध दृष्टिकोण :

मनुष्य की प्रज्ञादृष्टि मूल्य चेतना को जन्म देती है। मूल्यबोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया अस्तित्वशील मनस्तत्व पर निर्भर है। ये मानव अस्तित्व की विवेकात्मक परिणति है। इसलिये समस्त मूल्यों का स्रोत मानव-विवेक को स्वीकार किया गया है, क्योंकि मनुष्य जीवन एवं जगत की समग्रता में सत्य मीमांसा का अपरिहार्य अंग होने के कारण मूल्यों के तात्विक स्वरूप का अध्ययन कर समस्त मानवीय मानकों द्वारा विवेचित किया जाता है।

मूल्यबोध की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं-

डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया के अनुसार[2] - मूल्यों के विभाजन के अनेक आधार रहे हैं, जिनके फलस्वरूप मूल्य विवेचन में बड़ी गड़बड़ी हुई है। सुविधा की दृष्टि से मूल्यों के विभाजन को सीमित करना आवश्यक मानते हुये इन्होंने मूल्यों को छः वर्गो में विभाजित किया है :-

1. वैयक्तिक मूल्य
2. समष्टिगत मूल्य
3. आध्यात्मिक मूल्य
4. भौतिक मूल्य
5. नैतिक मूल्य
6. सौन्दर्य-मूलक-मूल्य

---

1. संस्कृति के चार अध्याय, पं0 जवाहर लाल नेहरु, भूमिका से
2. हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया, पृ0 14

डॉ0 रमेश देशमुख ने भी मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

मूल्य

शाश्वत मूल्य — साध्य मूल्य

बदलते मूल्य — साधनगत मूल्य

सौन्दर्यात्मक मूल्य

* सत्यम्
* शिवम्
* सुन्दरम्

नैतिक मूल्य

* त्याग
* समर्पण
* अहिंसा
* करुणा
* उदारता
* सेवा

जैविक मूल्य

* आर्थिक मूल्य
* शोषण मुक्ति
* आर्थिक समता
* रोजगार के समान अवसर

अतिजैविक मूल्य

सामाजिक मूल्य

* समता
* स्वतन्त्रता
* पारिवारिकता
* विवाह

आध्यात्मिक मूल्य

* जप-तप
* निषेध
* विधिपालन
* जातीय संस्कार
* आस्तिकता
* आनन्द
* मोक्ष

राजनीतिक मूल्य

* राष्ट्रीयता
* देशप्रेम
* कर्तव्य परायणता

पाश्चात्य विचारक **अर्बन** ने भी मूल्यों को कई दृष्टिकोणो से विभाजित किया है जिसे निम्नलिखित आठ भागों में बाँटा गया है -

मूल्य

शरीर विषयक मूल्य	**सामाजिक मूल्य**	**आध्यात्मिक मूल्य**
1. शरीरात्मक मूल्य	1. सामाजिक मूल्य	1. सौंन्दर्यात्मक मूल्य
2. आर्थिक मूल्य	2. चरित्रात्मक मूल्य	2. बौद्धिक मूल्य
3. मनोरंजनात्मक मूल्य		

मूल्य बोध की दृष्टि से उपर्युक्त दृष्टिकोण प्रमुख है जिसका विश्लेषण संक्षेप में किया जा रहा है :-

1. वैयक्तिक मूल्य
2. समष्टिगत मूल्य
3. आध्यात्मिक मूल्य
4. भौतिक मूल्य
5. नैतिक मूल्य
6. सौन्दर्य-मूलक मूल्य

1. वैयक्तिक मूल्य :

प्रत्येक व्यक्ति के मूल्य अपनी जीवन प्रणाली में अपने आत्मान्वेषण में अपनी संवेदनाओं और अभिवृत्तियों में दूसरों से बिल्कुल पृथक रहते हैं तथा इनका विकास व्यक्ति से समूह या समाज की ओर होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं - "वैयक्तिक मूल्यों में सर्वाधिक प्रतिष्ठा "व्यक्ति-स्वातंत्र्य' मूल्य की है। 'यहाँ स्वातन्त्र्य का अर्थ है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में अन्तर्निहित मानवीयता को (मानव-मूल्यों के अर्थ में) समस्त संस्कारों से मुक्त होकर अर्थवान करता है . क्योंकि उसका व्यक्ति समस्त सामाजिक व्यक्तियों की समष्टि में ही गतिशील है, इस कारण इस स्वातन्त्र्य के अन्तर्गत अन्य सभी व्यक्तियों के स्वातन्त्र्य का भाव समन्वित है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण का आशय है कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य को व्यापक अर्थ में उपयोग करना चाहिए जिससे समाज का कल्याण हो। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए मानव मूल्य आवश्यक है, क्योंकि मानवीय मूल्य ही अन्ततोगत्वा मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के लिए जरुरी है। व्यक्ति का आन्तरिक धर्म है विकासोन्मुख सृजनात्मक प्रवृत्ति जो समूह, समाज, राष्ट्र के लिए कल्याणकारी है।

2. समष्टिगत मूल्य :

भारत में समष्टिगत मूल्यों की परम्परा प्राचीन रही है। मानवता, राष्ट्र-प्रेम, सत्य, दया, त्याग, अहिंसा, प्रेम तथा समन्वय आदि समष्टिगत मूल्य माने गये हैं। ये मूल्य मानव की उन अभिवृत्तियों से सम्बन्धित हैं जो समाज, राष्ट्र और मानवता की विस्तृत सीमा को गति प्रदान करते हैं।

पाश्चात्य विद्वान **ओ मेले** ने भी समष्टिगत मूल्यों में समाज को सर्वोपरि मानते हुए कहते हैं -

"भारत में समष्टिगत मूल्यों की परम्परा प्राचीन रही है। मानवता, राष्ट्रप्रेम, दया, त्याग तथा समन्वय आदि को समष्टिगत मूल्य कहा गया है। भारतीय समाज में व्यक्ति का स्थान नगण्य था और समाज सर्वोपरि।"[2] इन मूल्यों की आधारशिला संयुक्त परिवार में थी। इसका महत्व बताते हुए एक विद्वान ने कहा है -

---

1. दायित्व और स्वातन्त्र्य : अविच्छिन्न मूल्य, सम्पादकीय, आलोचना, जनवरी 1956, पृ0 2
2. मॉडर्न इण्डिया एण्ड दि वैस्ट, ओ मेले, पृ0 355

"संयुक्त परिवार होने के कारण समष्टि ही इष्ट थी। संयुक्त परिवार की रक्षात्मक सामर्थ्य इसका मूल आधार थी ।"[1]

आज मानवीय मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा संयुक्त परिवार में ही सम्भव दिखाई देती है इसमें ही समानता सम्बन्धी अभिवृत्ति को स्थापित किया जा सकता है। समष्टिगत मूल्यों के लिये वैयक्तिक स्व को त्यागकर समाजहित के लिये अपने स्वार्थों की बलि देनी होती है।

3. आध्यात्मिक मूल्य :

यदि हम 'संस्कृत-हिन्दी कोश' पर दृष्टि डालें तो आध्यात्मिक शब्द का अर्थ इस प्रकार है -

" 'आध्यात्मिक' शब्द 'अध्यात्म' में 'ठञ' प्रत्यय लगाने से बनकर विशेषण हुआ है। अध्यात्म का अर्थ आत्मा से सम्बन्ध रखने वाला ('आत्मनः संबद्धम्') होता है।"[2] इन्होंने अन्य स्थान पर कहा है कि -

"आध्यात्मिक अर्थ, मन, आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित है।"[3]

उपर्युक्त कोश का अवलोकन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि आध्यात्मिक शब्द का अर्थ आत्मा, परमात्मा तथा मन से सम्बन्ध रखने वाला हुआ। वस्तुतः मोक्ष और उसके निमित्त किया गया दान, तप, त्याग आदि आध्यात्मिक मूल्य स्थायी चिरन्तन एवं शाश्वत हैं। गाँधी जी मूलतः आध्यात्मिक व्यक्ति थे। इसलिये "वे मोक्ष और आत्म ज्ञान की बातें निरन्तर कहते रहे।"[4]

---

1. हिन्दू सोसाइटी एण्ड क्रास रोड्स, के0एम0 पन्निकर, पृ0 44
2. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 28
3. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 149
4. यंग इण्डिया, 3 अप्रैल 1924

सत्य, ऋत, आनन्द, अमृततत्व आदि आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य के जीवन को कल्याणकारी मार्ग प्रदान करते हैं ये उच्चतम मूल्यों की कसौटी है।

पाश्चात्य विद्वान ने सर्वप्रथम आत्मानुभूति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है-

"सम्पूर्ण आत्मानुभूति आत्मा की एक ही कर्म में सहसा अनुभूति नाम की कोई वस्तु नहीं है। जीवन एक प्रक्रिया है एवं अपने स्वभाव से ही निर्वाचनों की एक श्रंखला है। वह अनिवार्य रूप से एक मूल्य का दूसरे मूल्य के लिये बलिदान है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार मूल्य वस्तुतः जीवन की एक प्रक्रिया है जिसमें आत्मानुभूति निहित है जिससे वह कर्म करता है।

4. **भौतिक मूल्य :**

वस्तुतः बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आकर्षण और उसकी तीव्रता तथा आर्थिक विषमताओं ने भौतिक मूल्यों की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। आज के इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति सभी प्रकार के सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को तिलांजलि देकर केवल अतिवैयक्तिक और भौतिक मूल्यों को ही प्राप्त करने में लगा है।

"मूल रूप में अर्थ और उससे सम्बन्धित अभिवृत्तियां ही भौतिक मूल्य है। अर्थ के अतिरिक्त पद और यश की आकांक्षा भी भौतिकता से सम्बन्धित है। यही कारण है कि कुछ विद्वान इसे आर्थिक मूल्य कहते हैं।"[2]

---

1. There is no such things as total self realization - realization of the self all at once, or in one act, life is process by its very nature, a series of choices. It is of necessity a sacrifice of one value for another.

   Fundamentals of Ethics, W.M. Urbon
   Page -170

2. The Cultural Heritage of India, Vol.III

   M. Hirriyanna, Page-646

भौतिक मूल्यों से तात्पर्य मानव की उन अभिवृत्तियों से है जो इनको प्राप्त करने में सहायक होती है।

डॉ0 देवराज के मतानुसार-

"उपयोगिता और अधिकार प्राप्ति के साधन ही भौतिक मूल्य हैं।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भौतिक मूल्यों ने मनुष्य को इस कदर आकर्षित किया कि ईश्वर के स्थान पर मशीने और प्रेम के स्थान पर धन आ गया है। जिससे एक दूसरे का शोषण होने लगा। पारस्परिक सहयोग और सहानुभूति समाप्त हो गयी है। भौतिक मूल्यों में सृजन होता रहता है, ये स्थायी नहीं रह सकते हैं।

5. नैतिक मूल्य :

नीतिशास्त्र से उद्भूत 'नैतिक शब्द का प्रयोग हमारे जीवन में, व्यक्तित्व, चरित्र और योग्यता के अनुमान से है। नैतिक की अभिव्यक्ति एवं नैतिक का प्रयोग नीतिशास्त्र की अभिव्यक्ति एवं प्रयोग से सर्वथा भिन्न है। स्वयं 'नैतिक' शब्द बाज-बखात मूल्यात्मक अर्थ से अर्थात् एकाध निकष-अभिप्रेत के उपयोग में लाया जाता है।"[2]

आचरण से सम्बद्ध मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जाता है। इसकी पुष्टि करते हुए पाश्चात्य विद्वान ने कहा है -

---

1. "अभिप्राय यह है कि भौतिक सामग्री की अभिलाषा कुछ तो इसलिये की जाती है कि वह हमारी जरुरतों को पूरा करती है, और कुछ इसलिये भी कि उसके द्वारा हम दूसरों पर अधिकार प्राप्त करके उनके श्रम से लाभ उठा सकते हैं।"
   संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, डॉ0 देवराज, पृ0 163

2. समाजवाद : प्रेरणा व प्रक्रिया (मराठी), सं0 आनंद कुलकर्णी व बसंत देशपांडे, लेख- मार्क्सप्रणित परमात्मभाव, श्री व्यं. बोकिल, अ0 3, पृ0 35-36

"नैतिक" शब्द का अर्थ आचरण से सम्बन्धित है। नीति से नैतिक बना है। समाज, धर्म और राष्ट्र द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल निरन्तर चलते रहना ही नीति है, और उन नियमों के अनुकूल मनोवृत्तियों से सम्बन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य हैं। दया, त्याग, दाक्षिण्य, पवित्रता, धर्म, सत्य, शान्ति, आदि को नैतिक मूल्य कहा जा सकता है।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि नैतिक मूल्यों द्वारा समाज, राष्ट्र और धर्म का विकास होता है। जिसमें सभी का कल्याण निहित है।

6. सौन्दर्य मूल्य :

अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमशक्ति प्रकृति, पुरुष, इन्द्रिय, मन, आत्मा आदि से जो लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता है वही सौन्दर्य है। इसका असली रूप सत्य और मंगलमय है।

डॉ0 रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए कहा है-

"सौन्दर्य की मूर्ति ही मंगल की पूर्ण मूर्ति है, और मंगल की मूर्ति ही सौन्दर्य का पूर्ण स्वरूप है।"[2]

ये सौन्दर्य को सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति मानते हैं। यह व्यक्ति की आत्मगत अनुभूति है। **डॉ0 भरत कुमार सिंह** ने इसके तीन रूप बताये हैं।

"ऐन्द्रिय सौन्दर्य जो इन्द्रिय किसी वस्तु या व्यक्ति में सौन्दर्य भावना का प्रत्यक्ष बोध द्वारा मनोमय आनन्द भी निर्मित करता है। हमें विधानगत सौन्दर्य से अभिप्राय किसी कार्य की

---

1. Moral and aesthetic values are closely connected so closely that they have sometimes been identified. But even a little reflexion brings out differences that may not be ignored."
   Moral Values and the Idea of God, W.R.Sorley, P.31
2. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, गोविन्द त्रिगुणायत, भाग-10, पृ0 45

निर्माणात्मक व्यवस्था या प्रणाली है और अभिव्यक्तिगत सौन्दर्य बोध से विधेय का उद्देश्य में अथवा कारण का कार्य में प्रस्तुत होना है।"[1]

सौन्दर्य मूल्यों के निर्धारण में साहित्य का विशेष महत्व बताते हुए पाश्चात्य विद्वान ने कहा है -

"साहित्य सौन्दर्य की पिपासा को ही शान्त करता है, इसलिये साहित्य-विवेचन में इसका विशेष महत्व है। सौन्दर्य मूल्य भौगोलिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्मित होता है। नैतिकता भी इस मूल्य-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।"[2] साहित्य में प्रकृति सौन्दर्य, मानवीय सौन्दर्य तथा अन्तःसौन्दर्य सभी विद्यमान रहते हैं।

5. नैतिकता और मूल्य बोध :

'नीति' शब्द का सम्बन्ध संस्कृत की 'णीय्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'ले जाना' या 'पथ-प्रदर्शन करना' होता है।

डॉ0 मानसिंह वर्मा के अनुसार धात्वर्थ की दृष्टि से नीति शब्द का अर्थ इस प्रकार है- "धात्वर्थ की दृष्टि से नीति वह है जो 'आगे ले जाय'। निश्चय ही यह नीति का व्यापक अर्थ है। इसके अन्तर्गत, नीतिशास्त्र, नृतृत्व-शास्त्र, दर्शन, अध्यात्म, समाजशास्त्र एवं विज्ञान तक सभी विषय समा जाते हैं।"[3]

'हिन्दी साहित्य कोश' में नीति की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है-

"समाज को स्वस्थ एवं संतुलन पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धार्म, काम, मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति करने के लिये जिन विधि-निषेध मूलक सामाजिक, व्यवहारिक आचरण धार्मिक तथा राजनैतिक आदि नियमों का विधान देश-काल और पात्र के सम्बन्ध में

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य (खण्ड-प्रथम), डॉ0 भरत कुमार सिंह पृ0 43
2. Moral Values and the Idea of God, W.R.Sorley, P.31
3. नयी कविताः पुरातन सूत्र, डॉ0 मानसिंह वर्मा, पृ0 319

किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं।"[1]

डॉ0 या. श्री मेहेंदल ने अपने ग्रन्थ 'समाजशास्त्र का मूल तत्व मराठी, में नैतिकता के दो प्रकार बताये हैं - "रूढ़ नैतिकता और विमर्शक या वैयक्तिक नैतिकता। रूढ़ नैतिकता में आदर्श मानदण्ड या आदर्श प्रमाण का समावेश होता है और उसका स्वरूप सामाजिक होता है।

विमर्शक नैतिकता यह पूर्ण एवं वास्तविक नैतिकता की अवस्था है। वस्तुतः वास्तविक नीति का प्रारम्भ मनुष्य के मन में होता है। उस पर बाह्य चीजों की हुकूमत या नियंत्रण नहीं होना चाहिए।"[2]

उपर्युक्त कथनों के आधार पर हम कह सकते हैं कि नैतिकता समाज का विकास करती है तथा समाज को स्वस्थ एवं संतुलन पथ पर अग्रसर करती है। इसकी पुष्टि करते हुए कहा जा सकता है -

"नैतिकता मानव जीवन को अग्रसर करती है, उसकी विकास प्रक्रिया को तेज करती है तथा उसे समुन्नत भी करती है। प्रायः संगठित समाज में आचार व्यवहार सम्बन्धी कुछ नीति नियम होते हैं इनके आधार पर ही उस समाज की नैतिकता नापी जाती है। नैतिकता कर्म और शील का प्रतीक है। कौन-सा कार्य अच्छा है और कौन सा बुरा, इसका विवेक मनुष्य में नैतिकता के ही कारण पैदा होता है। नैतिकता सतसत् का निर्णय कराती है।"[3]

एक अन्य विद्वान ने भी कहा है -

"नैतिकता का सम्बन्ध मुख्यतः आचरण से है। मनुष्य का आचरण किस प्रकार का

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृ0 456-57
2. समाजशास्त्र का मूल तत्व मराठी, डॉ0 या0श्री मेहेंदल, अ0 21, पृ0 440
3. निराला-काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, डॉ0 देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी, पृ0 27

होना चाहिए, नैतिकता इस प्रश्न पर विचार करती है। यदि मनुष्य कोई ऐसा कर्म करता है जो समाज, परम्परा रीति-रिवाजों की दृष्टि से अवमान्य है, तो उसे अनैतिक कहा जायेगा। परन्तु सम्भव है कि समाज की परम्परागत नैतिकता खोखली रूढ़िवादी तथा रूग्ण हो तो ऐसी स्थिति में उसे चुनौती देना एक सचेत व्यक्ति का कर्तव्य है- नैतिकता इससे सम्बद्ध है कि 'क्या होना चाहिये' अथवा "क्या उचित है।' अन्य जीवधारियों से भिन्न मानव की यह विशेषता है कि उसमें नैतिक अनैतिक बोध या विवेक प्रचुर मात्रा में रहता है। वह अपने परिवेश की नैतिकता के अनुकूल अपने को ढालता है। इस तरह, नैतिकता अनुकूलन की सर्वाधिक सक्षम प्रणाली है।"[1]

जीवन मूल्यों का आधार नैतिकता है। नैतिकता की भावभूमि धार्मिक आस्था है इसीलिये "विश्व के प्रायः सभी धर्मो और चिन्तन धाराओं में नैतिकता को अत्यधिक महत्व दिया गया है। भारतीय चिन्तन में जिस आध्यात्मिकता को सर्वाधिक श्रेय समझा गया है, वह कभी भी नैतिकता से विच्छिन्न नहीं रही है। शुद्धाचरण के भारतीय चिन्तक बड़े ही हिमायती रहे हैं। गाँधी जी ने वैचारिक शुद्धता और आत्म परिष्कार को अपने चिन्तन में अत्यधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार व्यक्ति को मन, वचन और कर्म से शुद्ध होना चाहिये। आत्मशुद्धीकरण का अर्थ होता है, जीवन के सभी क्षेत्रों में शुद्धीकरण पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति के लिये व्यक्ति को पूरी तरह भावावेश रहित होना चाहिये, मन, वचन और कर्म से।"[2]

अज्ञेय नैतिकता के सभी मानदण्डों का स्रोत मानव विवेक को स्वीकारते हुए कहते हैं-

"नैतिकता की भावना का बदलने का पहला कारण हुआ है धर्म-भावना का अथवा ईश्वर की परिकल्पना का रूप परिवर्तन। जिसके कारण सृष्टि का या कम-से-कम मानव के उससे सम्बन्ध का केन्द्र ईश्वर न रहकर स्वयं मनुष्य हो गया है।"[3]

---

1. मानववाद और साहित्य, डॉ0 नवल किशोर, पृ0 14।
2. ट्रुथ इन गॉड, महात्मा गाँधी, पृ0 66
3. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, पृ0 19

नैतिकता का विकास मनुष्य के ही कारण सम्भव हुआ है क्योकि -

"मनुष्य जितना ही अधिक विकसित होता जायेगा नैतिकता की धारणा में उतना ही अधिक परिवर्तन होता जायेगा।"[1]

नैतिकता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि - "नैतिकता गुणात्मक मूल्यांकन स्वीकार करती है न कि परिमाणात्मक।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार कहा जा सकता है कि नैतिकता गुणात्मक मूल्यांकन स्वीकार करती है क्योंकि जीवन के विकास के साथ-साथ नैतिकता की धारणा भी परिवर्तनशील होती जाती है। जो परिमाण की अपेक्षा गुणात्मक मूल्यांकन को विशेष महत्व प्रदान करती है क्योंकि -

"मनुष्य अपने मूलभूत नित्य चैतन्य का प्रतिबिम्ब होने के कारण अपने स्वरूप में निहित सम्भावनाओं को चरितार्थ करने की ओर उद्दिष्ट होता है। मनुष्य का नैतिक जीवन उसकी आत्मनिहित पूर्णता को चरितार्थ करने की साधना है। आदर्श को संकल्पित करना नैतिकता का मर्म है।"[3]

भारतीय दृष्टिकोंण में सदैव ही मनुष्य को शील, त्याग, तप, और सेवा जैसे व्रतों के पालन के लिये प्रेरित किया गया है। परन्तु आधुनिक समय में नैतिकता को स्थिर मानना समाज की प्रगति के लिये घातक हो सकता है। हमें आवश्यकता है कि युग की परिस्थितियों के अनुरूप बदलें।

---

1. धर्मयुग, डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी, 15 अप्रैल, 1913, पृ0 22
2. नीतिशास्त्र, शांति जोशी, अ0 21, पृ0 54।
3. मूल्य मीमांसा, गोविन्दचन्द्र पाण्डेय, पृ0 179

डॉ0 नवल किशोर के अनुसार-

"नैतिकता को स्थिर मानना समाज की प्रगति को बाधित करना है। युगानुरुप नैतिकता का स्वरूप बदलता रहता है। नयी सामाजिक-चेतना और मानवीय गरिमा में आस्था और विश्वास के साथ नैतिकता के परम्परागत स्वरूप में भी बदलाव आता है। जिस तरह सामाजिक प्रतिमान और मूल्य बदलते हैं, उसके अनुरुप ही नैतिकता परिवर्तित होनी चाहिए। क्योंकि नैतिकता एक सामाजिक वस्तु है।"[1]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि नैतिकता एक ऐसा मूल्यबोध है जो युगानुरुप परिवर्तित होता रहता है। नैतिकता के कतिपय मानदण्ड सदैव अपरिवर्तित भी रहते हैं। यह भी सत्य है कि नैतिकता तथा मूल्य चेतना एक दूसरे के पूरक है। मूल्य चेतना के बिना नैतिकता तथा नैतिकता के बिना मूल्य चेतना की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।

6. समकालीनता बोध और मूल्य चर्चा :

कविता मूलतः युग सन्दर्भो की देन होती है, उसमें अतीत चित्रण और भविष्य के संकेत भी युग सन्दर्भ से जुड़कर ही आते हैं, इसलिये यह कहना उचित होगा कि प्रत्येक रचना समकालीन होती है। ऐसे में किसी युग विशेष की पहचान समकालीन कविता के रुप में सुनिश्चित करना एक जटिल प्रक्रिया होगी युग सन्दर्भो के साथ काव्य प्रवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता चला आया है, इसलिये अपनी व्यापकता में प्रत्येक रचना समकालीन है, लेखक का मत है -

"समकालीनता में परम्परा की जीवन्त धारा से विच्छेद नहीं होता बल्कि हम उसका नवीनीकरण कर समृद्ध एवं विकसित करते हैं।"[2] उपर्युक्त पंक्तियों की पुष्टि करते हुए **हुकुमचन्द राजपाल** भी कहते हैं - "समकालीनता बोध परम्परित मूल्य-चेतना को नहीं मानता।

---

1. मानववाद और साहित्य, डॉ0 नवल किशोर, पृ0 14।
2. समकालीन प्रतिनिधि कवि, अनन्त कीर्ति तिवारी, पृ0 3

नये मूल्यों की तलाश में वह जिस प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है, जिन समस्याओं में से उसे गुजरना पड़ता है- इन सबके मूल में जो कुछ उसे सही एवं सार्थक प्रतीत होता है उन्हें प्रतिमानों के रूप में घोषित करता है।"[1]

समकालीनता के संदर्भ में एक नया शब्द 'आधुनिकता' भी विचारणीय है। यह शब्द सम्पूर्ण समाज की नयी गतिविधियों की प्रक्रिया से प्रारम्भ होती है। इन गतिविधियों से नये सामाजिक मूल्य विकसित होते हैं जिन्हें आधुनिक जीवन मूल्य कहा जाता है। इन्हीं से आधुनिकता स्थापित होती है। इस प्रकार आधुनिकता मध्ययुगीन एवं पुरातन संस्कारों का परित्याग एवं नये मूल्यों की तलाश है। एक निश्चित समय के पश्चात आधुनिकता भी पुरातन हो जाती है। इसलिये आधुनिकता को निरन्तरता प्रदान करने के लिए सतत् संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। मूल्यों को समकालीन बनाये रखाना आधुनिकता का अपरिहार्य अंग है।

"धर्म और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अनास्था और वितृष्णा पैदा करने में विज्ञान की अपनी भूमिका रही है। विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने मनुष्य को भौतिक जीवन में सम्पन्नता और सुविधायें प्रदान की है। उसने अनेक सिद्धान्तों से यह सिद्ध कर दिया है कि कोई पारलौकिक सत्ता नहीं है और मनुष्य का उद्भव और विकास भौतिक स्थितियों की देन है। विज्ञान के बढ़ते प्रयोग ने मनुष्य की सोच को भौतिकवादी बनाया है। आज के व्यक्ति का चिंतन धीरे-धीरे वैज्ञानिक होता जा रहा है।"[2]

निःसन्देह मनुष्य ने असाधारण वैज्ञानिक प्रगति की है किन्तु जीवन मूल्यों के ह्रास के कारण तनाव, अशान्ति तथा बिखाराव का वातावरण उत्पन्न हो गया है, आज आत्मीयता के बंधन टूट चुके हैं, कुछ इसी तरह का भाव **डॉ0 स्वर्णलता** के शब्दों में भी मिलता है-

"आज की बदलती परिस्थितियों के दमघोटू वातावरण ने मानव के जीवन में विचित्र बिखराव उत्पन्न कर दिया है। आज जिन्दगी की कड़वाहट सबसे अधिक मध्यमवर्गीय व्यक्ति

---

1. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 4।
2. साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना, डॉ0 महावीर वत्स, पृ0 3।

को पीनी पड़ती है क्योंकि न तो वह उच्चवर्ग का अंग बन सकता है, न अपने अहं के कारण निम्न वर्ग वालों से मिल सकता है। थोथी अहमान्यता का जुआ इच्छा रहते अपनी गर्दन से नहीं निकाल पाता, वैयक्तिक मान्यताएँ जितनी तेजी से बदलीं, सामाजिक प्रतिरोधों ने उतना ही दबाव बनाने की कोशिश की ।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समकालीन युग में पूँजीवादी समाज होने के कारण व्यक्तिगत एवं सामाजिक व्यवहार में गिरावट आ गयी है। अब औद्योगिक समाज में अर्थ की प्राप्ति ही महत्वपूर्ण मूल्य बन गया है। इसलिये मनुष्य का व्यक्तित्व दोहरा जाने पर उनमें पारस्परिक विश्वास कम हो रहा है। समकालीन युग में विश्वास, श्रद्धा, ईमानदारी और सदाचार की जगह स्वार्थपरता, चालाकी और पाखण्ड का मूल्य बढ़ गया है। कार्यकुशलता, समय अब मूल्य बन गये हैं। लेकिन इनसे समाज जीवन में क्षणिक उत्तेजना भले ही पा ले किन्तु उपलब्धि का आकाश नहीं छू सकता है। यही कारण है कि -

"समकालीन मूल्य चर्चा में हम मूल्यों की स्थिति उपयोगिता के व्यावहारिक धरातल को मानते हैं। मात्र नामोल्लेख, सिद्धान्त अथवा कथनी से किसी मूल्य की परिणति नहीं मानी जा सकती। इसीलिये मूल्य प्रत्येक स्तर पर मर्यादा, विवेक, उत्सर्ग की मांग करता है- यह एक पक्षीय नहीं होना चाहिये। आज मूल्यहीनता की स्थिति इसी कारण है कि कर्तव्य की अपेक्षा अधिकार 'पर' की अपेक्षा 'निज' तक दृष्टि सीमित है।"[2]

उपर्युक्त कथन के अनुसार हम कह सकते हैं कि समकालीन चेतना की उपयोगिता वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी स्तरों पर होनी चाहिये क्योंकि मूल्यों की परिणति किसी सिद्धान्त अथवा परम्परा से नहीं होती बल्कि उसके लिये व्यापक एवं उदार दृष्टि रखनी पड़ती है।

---

1. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, डॉ0 स्वर्णलता पृ0 76
2. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 42

डॉ0 हुकुचन्द राजपाल ने ठीक ही कहा है-

"मूल्य चेतना का आधार उसकी समस्याओं एवं स्थितियों की सही पहचान से हो जाता है। सही आदमी, सही कविता एवं सही भाषा में वह प्रत्येक दृष्टि से मूल्य की प्रतिष्ठा करता है। पर वह किसी प्रकार का मूल्यों के प्रति आग्रह नहीं मानता वरन् उसे मूल्यों की तलाश करनी है। इसीलिये 'तलाश' में हम धूमिल को मूल्यों के प्रति एक जागरुक कवि मानते हैं। इस तलाश में वह सब कुछ प्रत्यक्ष या वास्तव के आधार पर जान जाता है। वह मर्यादा, दायित्व, अधिकार, सद्‌भाव, प्यार, देश-प्रेम, शांति अहिंसा, समाजवाद,. चुनाव, क्रान्ति युद्ध इत्यादि की सही स्थिति से परिचित है - इसलिये कविताओं में इन स्थितियों के प्रति उसका संशय, व्यंग्य एवं आक्रोश उसे हमारी दृष्टि में एक मूल्यान्वेषी कवि होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि समकालीन जीवन मूल्य देश काल परिस्थितियों, आवश्यकताओं, मान्यताओं और उपलब्धियों आदि के अनुरुप निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिये मूल्य चर्चा में परिवर्तनशीलता को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।

1. जीवन मूल्य और मानवतावादी चेतना :

मानवतावादी जीवन मूल्यों की चर्चा में लोकहित, विश्व-बन्धुत्व, परहित तथा स्वार्थ त्याग की भावना आदि से ही सच्ची मानवता का विकास सम्भव है। हमें इस बात का गौरव प्राप्त है कि हमारे पूर्वजों ने मानवता के ऊषाकाल से ही इन जीवन मूल्यों को आचरण में जीने की असाधारण क्षमता अपने भीतर प्रदर्शित की थी। इतिहास सिद्ध ज्ञान के प्रथम प्रकाश वेदों में ऋषियों की आप्तवाणी से स्फुरित जीवन आदर्श ही इसके जीवन-मूल्य है। हमें

---

1. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, ले0 हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 42

आश्चर्य होता है कि आज भी मानवता जिन आदर्शों को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं उसे हमारे पूर्वजों ने बड़े ही नायाब तरीके से प्रतिष्ठित कर दिया था।

लेखक का मत है - "जिससे मनुष्य की रक्षा और उन्नति हो वही धर्म है। धर्म एक कानून है, जो मानवता का पूर्ण विकास करता है। मनुष्यता का पथ-प्रदर्शक है।"[1]

वस्तुतः धर्म से ही व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण होता है तथा वह सत् कार्य करते हुए उन्नति के मार्ग पर चलता है जिससे मानवता का विकास होता है इसीलिये-

"धर्म उन नियमों को कहते हैं जिनके पालन से व्यक्ति और समाज दोनों की उन्नति और कल्याण होते हों जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख शान्ति और समाज में संतुलन और सामंजस्य और शान्ति स्थापित हो।"[2]

अतः हम कह सकते हैं कि धर्म से ही मानवतावादी जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठित किया गया है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये मानव जीवन के उद्देश्य माने गये हैं परन्तु धर्म को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। क्योंकि धर्म से ही उच्च आदर्शों को प्राप्त किया जाता है जिससे जीवन में सुख और शान्ति आती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि-

"विश्व स्तर पर परमात्मा का चिंतन-मनन ही शांति एवं कल्याण का कारण बन सकता है। इसलिये काल में और आज के इस ऐतिहासिक संक्रान्ति के काल में आध्यात्मिकता ही विश्व को शान्ति प्रदान कर सकती है। इसी शांति और अमन के चैन के लिये परमात्मा का चिंतन विश्व मानवता की रक्षा के लिये आवश्यक हो गया है।"[3]

---

1. स्वतंत्रता की ओर, हरिभाऊ उपाध्याय, पृ0 119
2. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, डॉ0 भीखनलाल आत्रेय, पृ0 619
3. श्री देवराहा बाबा दिव्य आलोक (ज्ञान कर्म एवं भक्ति की त्रमासिकी) प्रो0 अजब सिंह का आलेख, अखण्ड महामेघ, पृ0 76-77, अक्टूबर-दिसम्बर सन् 1995

निःसन्देह आध्यात्मिक मूल्यों का स्थान उच्चतम है क्योंकि यह स्थायी, चिरन्तन एवं शाश्वत है इन्हें अपनाकर ही विश्व में समस्त मानवता का कल्याण सम्भव है। मानवतावाद मानव की अन्तर्निहित शक्तियों, विकास की अनन्त सम्भावनाओं तथा दिव्य शक्ति को चरम मूल्य स्वीकारते हैं। **डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया** के शब्दों में -

"नव मानववादी दार्शनिक मानवता को विकसनशील तत्व के रुप में स्वीकृति प्रदान करते हैं। वे आज के मानव को लघु और भविष्य के मानव को एक कड़ी अथवा सेतु मानते हैं। उनके अनुसार मनुष्य का विकास पशु से हुआ है, उसी प्रकार मनुष्य भी विकसित होकर एक अतिशक्तिशाली जीव के रुप में प्रकट होगा। यह शक्ति बाह्य न होकर आन्तरिक होगी। इस शक्तिशाली मानव की उत्पत्ति के लिये जो आचार-विचार आवश्यक हों वही आदर्श है।"[1]

मानववाद का पूर्ण विकसित स्वरूप मानवतावाद है मानववादियों ने अप्रत्यक्ष सत्ता का विरोध किया है क्योंकि वह मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इसके अभाव में वे मानवता का विकास असम्भव मानते हैं। इसीलिये मनुष्य श्रेष्ठतम उपलब्धियों से सुशोभित होकर स्वत्व की चरमानुभूति पर पहुँचना ही मानवता है। मानवतावाद में स्वत्व को विराटत्व में विलीन कर दिया जाता है।

"आज के वैज्ञानिक युग में असम्भाव्य वस्तु पर भी विजय पाने के पश्चात मानव को शान्ति नहीं मिली है। वह पुनः मानवतावाद की ओर झुका है और आत्मिक शान्ति की वास्तविकता को जानना चाहता है। जीवन की भाँति ही जीवन-मूल्यों में भी गतिशीलता का क्रम रहता है और व्यक्ति अपने परिवेश के अनुसार उनके बाह्य स्वरुप में थोड़ा बहुत भेद कर लेता है। यथा देश-प्रेम या राष्ट्र-प्रेम को लिया जा सकता है। इस दृष्टि से किये गये सभी कार्य उचित समझे जाते हैं क्योंकि उनमें अपनत्व की भावना प्रबल रहती है, परन्तु इनसे भी बढ़कर है मानव-प्रेम।"[2]

---

1. हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया, पृ0 194
2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 77

आज के वैज्ञानिक युग में मनुष्य नें उत्तरोत्तर उन्नति की है और अपने सुख प्राप्ति के लिए सारी सुविधायें जुटा ली हैं, फिर भी उसे आत्मिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई हैं, क्योंकि उसमें मनुष्यता का अभाव है। वैयक्तिक मूल्य, मूल्य कहलाने के अधिकारी तभी होते हैं जब वह परहित लोकहित तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को ग्रहण कर लेते हैं। **डॉ0 मोहिनी शर्मा** ने ठीक ही कहा है -

"मानव-जीवन के सन्दर्भ में लोकहित की दृष्टि से चिंतन का यही मार्ग श्रेयस्कर जान पड़ता है। किसी भी वैयक्तिक चिन्तन प्रसूत जीवन दृष्टि को तभी मूल्य कहलाने का अधिकार प्राप्त होता है, जब वह मानवता के विकास में सहयोगी होने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। यही मूल्य-चेतना मानवीय विकास की परम शक्तिशाली अमोघ प्रेरक है, जिससे मानव जीवन सुख और कल्याण की दिशा में निरन्तर गतिशील रहता है।"[1]

उपर्युक्त कथन के अनुसार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन के कल्याण के लिये वैयक्तिक मूल्यों को महत्व प्रदान किया गया है। लेकिन उसमें मानवता की भावना का समावेश भी होना चाहिए तभी वह आन्तरिक सद्गुणों को देदीप्यमान करेगा। **डॉ0 विद्या चौहान** ने कहा है -

"आन्तरिक सद्गुणों की चरम सीमा पर देदीप्यमान यह प्रकाशपुंज ही मानवता की शुभ्र अनुभूति है। मानवता सात्विक मन की उपज है। मानवता-सम्पन्न मनुष्य का आचरण अन्तरस्थ प्रकाश की अभिव्यक्ति बन जाता है। प्रेम, करुणा, सत्य, घृति, अभय, ज्ञान, मैत्री, अहिंसा आदि समस्त वृत्तियाँ उस मानसिक प्रकाश की व्यंजनाये हैं।"[2]

आन्तरिक सद्गुणों को जब हम सेवा एवं परहित की भावना में परिवर्तित कर देते हैं, तथा मानव को मानव समझते हैं, और सभी के साथ परस्पर साम्य तथा उदार दृष्टि का समावेश कर लेते हैं, उसी समय हम सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा करते हैं।

---

1. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, मोहिनी शर्मा, पृ0 12-13
2. आधुनिक हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियाँ, डॉ0 विद्या चौहान, पृ0 162

8. मूल्याँकन-पुनर्मूल्याँकन :

मानव मूल्य और साहित्य में मूल्यों की पारस्परिक सम्बद्धता में प्रत्येक बार मूल्यांकन की अनिवार्यता रही है। यहाँ पर मूल्यांकन तथा पुनर्मूल्यांकन की चर्चा प्रासांगिक प्रतीत होती है। किसी भी रचना व रचनाकार में मूल्य-प्रतिपादन व उसके प्रति दृष्टि का आधार मूल्यांकन के आधार पर समझा जा सकता है। इसलिये रचना की कसौटी मूल्य प्रतिबद्धता है और मूल्यांकन में इसे आधार माना जाता है।

प्रत्येक युग की कृति में भी मूल्यांकन--पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।जब समाकलीन जीवन मूल्यों में परिवर्तन होता है तो पुनः उसके मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है, इसलिये किसी भी कृति के मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता बनी रहती है। उदाहरणार्थ- रामचरित मानस जिस युग परिवेश की कृति है। तत्कालीन युग में वह शाश्वत और समकालीन जीवन मूल्यों की दृष्टि से एक महान रचना सिद्ध होती है किन्तु समकालीन मूल्यों की दृष्टि से इस कृति के पुनर्मूल्यांकन की सम्भावनायें सदैव बनी रहेंगी। शाश्वत मूल्य कालजयी होते हैं, निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिये समकालीन मूल्यों की दृष्टि से पुनर्मूल्यांकन की सम्भावनायें बनी रहती हैं।

डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल कहते हैं -

"किसी भी कृति अथवा कृतिकार में मूल्य प्रतिपादन या उसके प्रति दृष्टि का आधार मूल्यांकन के द्वारा जाना जा सकता है। इसलिये रचना की कसौटी मूल्य-प्रतिबद्धता है और मूल्यांकन में इसे आधार माना जाता है। पर कृति मूल्यांकन में उसका समग्र विश्लेषण रहता है, उसके कथ्य एवं शिल्प की पहचान की जाती है- कुछ मानदण्ड समीक्षक के सम्मुख रहते हैं। वैसे प्रत्येक युग के साहित्यकार जीवन और साहित्य के मानदण्ड (मान-मूल्यों) को दृष्टि में आत्मसात् किए रहते हैं।"[1]

---

1. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 43

किसी भी कृति अथवा कृतिकार की मूल्यांकन की कसौटी उसके मूल्यों में निहित है। कुछ मूल्य रचनाकार के होते हैं। कुछ मूल्य समाज के होते हैं। अतः इन्हीं मूल्यों के आधार पर रचना का मूल्यांकन होता रहता है। इसलिये कहा जा सकता है कि -

"मूल्य ऐसा आधार है - जो मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन तक की यात्रा तय करते हैं। व्यक्ति से समाज और सम्पूर्ण विश्व की व्यापकता को आत्मसात् किए हैं- मानवतावादी मूल्य-संकल्प की भाँति समीक्षक कृति और कृतिकार की समीक्षा भी इसीलिये अनेक बार विभिन्न मानदण्डों के आधार कर सकते हैं।'[1] मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी तथा धूमिल आदि कवि भी मूल्यों को नवीन दृष्टि से देखते रहे हैं जैसे नयी कविता और समकालीन कविता के मूल्यांकन के लिए हमें नये मूल्यों की तलाश करनी पड़ी क्योंकि परम्परागत काव्य के मूल्य एवं मानदण्ड नयी कविता और समकालीन कविता के लिए अपर्याप्त सिद्ध होते हैं। इसीलिये समकालीन विद्वान समीक्षक डॉ० नामवर सिंह को 'कविता के नये प्रतिमान' जैसी पुस्तक लिखनी पड़ी। इस प्रकार प्रत्येक कृति तथा प्रत्येक रचनाकार के मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की सम्भावनायें निरन्तर बनी रहती हैं। जैसा कि डॉ० हुकुमचन्द राजपाल ने लिखा है - "वस्तुतः पुनर्मूल्यांकन (Re-evaluation) इसमें कृति अथवा कृतिकार को सर्वथा नवीन धरातलों पर परीक्षित-व्याख्यायित किया जाना समाविष्ट है। मूल्यांकन की कमियों की ओर संकेत कर मूल्य-परकता के नये पक्ष उद्घाटित किये जाते हैं, नवीन स्थापनाएं की जाती है, अनेक बार इसे 'पुनर्विचार' - 'नया मूल्यांकन' के अन्तर्गत कृति को असफल तक घोषित किया जाता है।"[2]

उपरोक्त उद्धरण के अनुसार कह सकते हैं कि कुछ मूल्य कवि के होते हैं। इसी प्रकार कुछ मूल्य समीक्षा दृष्टि में भी निहित होते हैं। इनके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समीक्षक अपने अपने वैचारिक धरातल अथवा सामाजिक चिंतन के खाँचे में भी

---

1. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 44
2. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 44

किसी रचना व रचनाकार का मूल्यांकन करता है। जैसे- समाजवादी आलोचना के आधार पर मार्क्सवादी आलोचना के आधार पर प्रगतिशील आलोचना के आधार पर, अस्तित्ववादी आलोचना के आधार पर आदि । यदि एक ओर रामचरित मानस अथवा तुलसी के काव्य के मूल्यांकन में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विशुद्ध भारती चिंतन दृष्टि का परिचय देकर तुलसी का लोकनायकत्व सिद्ध करते हैं। तो दूसरी तरफ डॉ0 राम विलास शर्मा तुलसी के काव्य में प्रगतिशील चेतना की तलाश करते दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार छायावादी काव्य विशेषतः प्रसाद तथा उनकी कामायनी का जैसा मूल्यांकन आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी अथवा अन्य परम्परावादी समीक्षकों ने किया है। मुक्तिबोध ठीक इसके विपरीत करते हैं। कृति को समग्र रुप से मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की कसौटी पर परखा जाना चाहिए। ऐसा होने से रचना एवं रचनाकार में गति अथवा विकास बना रहता है।

9. जीवन मूल्यों का प्रयोजन :

संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यो ने चतुर्वर्ग की प्राप्ति को काव्य-प्रयोजन के अन्तर्गत करके जीवन के प्रत्येक पक्ष को काव्य-प्रयोजन के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया है। आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ 'काव्य-प्रकाश' में काव्य के प्रयोजनों का निर्देशन बहुत ही सटीक रूप में किया है, यथा-

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्ता-सम्मित तयोपदेशयुजे ।।"

इन प्रयोजनों के अन्तर्गत जीवन और जगत के सभी प्रयोजन आ जाते हैं इनके दो भाग हैं- व्यक्तिगत हित साधन, सम्मान व आनन्द तथा सामाजिक हित-साधन एवं लोक-मंगल ।

श्री पी0वी0 काणे ने लिखा है कि - "धर्म से उनका अभिप्राय किसी विशेष

ईश्वरीय मत से नहीं बल्कि जीवन के एक तरीके या आचरण की एक संहिता से है जो कि स्वयं व्यक्ति के रूप में तथा समाज के सदस्य के रूप में एक व्यक्ति के कार्यो को नियमित अथवा अनियंत्रित करती है और जिसका उद्देश्य व्यक्ति में क्रमबद्ध विकास करना तथा उसे इस योग्य बनाना है, कि मानव जीवन या अस्तित्व के अन्तम लक्ष्य तक पहुँच सके।"[1]

मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। वह अपनी विवेकशक्ति के अनुसार मूल्यों को अपना कर अपने अस्तित्व की रक्षा करता है।

डॉ0 राधाकृष्णन् के मतानुसार- "अपना अस्तित्व बनाये रखना, आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है आत्म-साक्षात्कार करना।"[2]

विचारकों ने ऐसा अनुभव किया कि मानव जीवन को सम्यक सुचारू एवं संयमित जीवनयापन के लिए कुछ मापदण्ड होने चाहिए। इनकी जरुरत मनुष्य को पग-पग पर पड़ती है क्योंकि -

"बगैर मूल्य के मनुष्य, व्यक्ति या समष्टि, किसी भी रूप में एक पल भी नहीं रह सकता। मूल्य का सम्बन्ध निर्णय से है और इसकी जरुरत पग-पग पर पड़ती है। निर्णय

---

1. "The writers on Dharma Shastra meant by dharma not a creed or religion but a mode of life or a code of conduct which regulated a man's work and activities as a member of society and as an individual and was intended to bring the gradual development of a man and to enable him to reach what was deemed to be goal of human existance."
   - (P.V. Kane)

2. पूर्व-पश्चिम- भारतीय जीवन, डॉ0 राधाकृष्णन्, पृ0 9।

छोटा हो या बड़ा जान-बूझकर किया जाए या अनजाने, वह किसी मूल्य का आधार लेकर ही किया जाता है।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि जीवन मूल्यों का प्रयोजन व्यक्ति के जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है क्योंकि जीवन-मूल्यों को अपनाये बिना व्यक्ति समाज या राष्ट्र की उन्नति नहीं कर सकता है।

"मूल्यों की प्रयोजनीयता तथा जीवन में उनकी उपादेयता को लेकर किसी प्रकार का विवाद नहीं हो सकता। मानव मूल्यधर्मी प्राणी है, अतः अपने दैनिक जीवन में वह न केवल मूल्यों का सृजनकर्ता वरन् उनका भोक्ता भी है। यह प्रक्रिया निरन्तर चला करती है। वह कतिपय उच्चतर मूल्यों के लिये घटिया मूल्यों का त्याग करता है और इस प्रकार समाज में एक प्रकार की व्यवस्था का संचार होता रहता है।"[2]

वस्तुतः जीवन मूल्यों का प्रयोजन ही समाज में नयी व्यवस्था का संचार करता है ये मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से निकालकर समाज के मानवीय कल्याण के लिए और लोकमंगल की भावना से आप्लावित होकर इन्हें मानवतावादी भूमि पर प्रतिष्ठित करता है।

मनोरंजन और लोकहित को जीवन का मूलभूत प्रयोजन माना गया है। इसका उद्देश्य सत्यं शिवं और सुन्दरम् की अभिव्यक्ति है। इनसे ही मानवीय जीवन में सही व्यवस्था की तलाश होती हैं और मानव जीवन प्रकाशित हो जाता है।

10. सामाजिक यथार्थ और मानव-मूल्य :

किसी समाज में जीवन मूल्यों की रचना ऐसे ही नहीं हो जाती है इसके लिए समाज को गहरी साधना और कठोर संयम से गुजरना पड़ता है। जीवन के ऊँचे से ऊँचे आदर्शो की

---

1. साहित्य का मूल्यांकन, प्रो0 सिद्धेश्वर प्रसाद, पृ0 94
2. निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, डॉ0 देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी, पृ0 39-40

रचना करना जितना आसान है, उन्हें आचरण में रूपान्तरित करना उतना ही कठिन है। आदर्श जब आचरण में उभरते हैं तभी मूल्य बनते हैं। सत्य, प्रेम, विश्वास और त्याग आदि हमारे मानव मूल्य हैं।

आज के सामाजिक परिवेश में इन मानव मूल्यों में गिरावट आ रही है।

"प्रेम, सेवा, सद्‌भाव, सहानुभूति आदि तत्व क्षीण हो चुके हैं। व्यक्ति का व्यक्ति से स्वार्थ ही प्रमुख रह गया है। मानवीय सम्बन्धों में शिथिलता आ चुकी है।"[1]

आज के समाज में प्रेम, सेवा, सद्‌भाव, सहानुभूति आदि मानव मूल्यों का लोप होता जा रहा है उसकी जगह स्वार्थपरता, चालाकी तथा पाखण्ड के मूल्य विकसित हो रहे हैं।

"सामाजिक मूल्यों का यह ह्रास मनुष्य की संवेदना के समक्ष एक गम्भीर चुनौती है। बड़े-बड़े महानगरों से लेकर गाँवों तक इनसामाजिकमूल्यों का तीव्र ह्रास हुआ है। वह आत्मीयता, सारल्य सहानुभूति एवं सह अस्तित्व की भावना जो विलुप्त हो चुकी है और जो थोड़ी शेष है वह भी निःशेष हो रही है, को बचाना आवश्यक है।"[2]

आज आवश्यकता इस बात की है किव्यक्ति अपने को संस्कारवान बनाने की कोशिश करे जिससे मानवीय सम्बन्धों में कड़वाहट न आने पाये क्योंकि स्वस्थ व्यक्तित्व और स्वस्थ समाज से ही स्वर्णिम भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

"व्यक्ति स्वयं अपने विचारों मान्यताओं आदर्शो और रीतियों द्वारा समाज-व्यवस्था का नियमन करता है, लेकिन परिवर्तन की प्रक्रिया में एक समय में बने हुए नियम आने वाले समय में रूढ़ सिद्ध हो जाते हैं और परिस्थितिनुरुप व्यक्ति स्वयं निर्मित नियमों को तोड़कर नये आदर्शो, विचारों, मान्यताओं, रीतियों, नीतियों को बनाता है।"[3]

---

1. हिन्दी उपन्यास, समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, डॉ0 मंजुला गुप्ता, पृ0 73
2. समकालीन कवि और काव्य, कल्याणचन्द्र, पृ0 131
2. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, डॉ0 मंजुला गुप्ता, पृ0 11

आज के वैज्ञानिक युग ने समाज की व्यवस्था को ही बदल डाला है। प्राचीन काल में जो मूल्य मानव के लिए शाश्वत सार्वभौमिक और कालजयी थे वही मूल्य वर्तमान में विलुप्त हो गये हैं इनकी प्रतिष्ठा का बखान करना अब बेमानी प्रतीत होता है।

II. शाश्वत जीवन मूल्य और समकालीन जीवन मूल्य :

जीवन मूल्य दो प्रकार के होते हैं :-

1. शाश्वत मूल्य
2. समकालीन मूल्य

भारतीय दर्शन की दृष्टि से शाश्वत मूल्यों का स्थान सर्वोच्च रहा है। किसी भी साहित्य का अवलोकन करें तो प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सम्पूर्ण साहित्य शाश्वत मूल्यों से अनुप्राणित है। मानव समाज को उत्तरोत्तर गति प्रदान करने में इन मूल्यों की अहम् भूमिका रही है। इन मूल्यों के अनुसरण के कारण ही उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श कर्तव्य की दिशा में मनुष्य को अग्रगामी एवं प्रगतिशील बनने में काफी सहायता मिली है। हमको अपने अतीत की विरासत से मिले हैं। ये किसी विशेष वर्ग सम्प्रदाय के न होकर समस्त मानवता को विकसित करते हैं। **डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल** मूल्यों की शाश्वतत्ता को स्वीकारते हुए कहते हैं -

"वह 'जीवन-मूल्य' ही क्या जो परिस्थितियों के कारण नष्ट हो जाए? हाँ, इसके स्वरूप में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो सकता है। वस्तुतः जीवन मूल्य यदि वास्तविकता में वे जीवन के मूल्य हैं तो उन्हें प्राचीनता एवं नवीनता की सीमा में बांधा ही नहीं जा सकता। जीवन की तरह जीवन-मूल्य भी शाश्वत हैं।"[1]

---

1. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 33

इनके अनुसार जो मूल्य शाश्वत हैं वह सदैव ही शाश्वत रहते हैं। उनमें परिवर्तनशीलता कभी नहीं आती है, जो मूल्य परिस्थितियों के कारण नष्ट हो जाये वह मूल्य ही नहीं है ये तो सदैव कालजयी रहते हैं।

एक अन्य विद्वान ने भी कहा है -

"मानवीय समता, न्याय, श्रद्धा, प्रेम, सहानुभूति, आस्था जैसे चिरन्तन मूल्यों को लेकर चलने वाले धर्म ही वास्तविक है, अन्य प्रतीयमान और छलावा है। धर्म की धारणा एक व्यापक धारणा रही है, जिसके अन्तर्गत आर्थिक, सामाजिक, नैतिक अर्थ मात्र के मूल्य भी अंतर्भुक्त रहे हैं।"[1]

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। मनुष्य ने चाहे जितनी ही प्रगति कर ली हो। लेकिन वह ईश्वर की सत्ता को नहीं नकार सकता है क्योंकि पुरुषार्थ चतुष्टय हर समय ही समाज समाज में व्याप्त रहेगा।

"धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष अभी भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। विज्ञान की प्रमुखता होते हुए भी ईश्वर में अब भी विश्वास किया जाता है।"[2]

भारतीय चिंतन धारा के अनुसार जब मनुष्य 'स्व' के दायरे से निकलकर 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की कामना करता है तो वह सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा, समर्पण, वात्सल्य आदि शाश्वत मूल्यों की स्थापना करता है -

"भारतीय काव्यशास्त्र में व्यक्ति के संस्कारों, वृत्तियों, गुणों एवं आवश्यकताओं के संदर्भ में पुरुषार्थों (मूल्यों) की स्थिति का उल्लेख होता रहा है पर शरीर के प्रत्येक पक्ष के आधार पर यह मूल्य-चर्चा नवीन युग की देन कही जा सकती है।"[3]

---

1. साठ वर्ष और अन्य निबन्ध, सुमित्रानन्दन पन्त, पृ0 135
2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 78
3. समकालीन कविता के तीन पड़ाव, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 4।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नवीन युग हमारे शाश्वत मूल्यों में थोड़ा परिवर्तन करना चाहता है जिससे जीवन को और सुन्दर तथा सार्थक बनाया जा सके।

"शाश्वत मूल्यों की धारणा का एक अनिर्दिष्ट गोलाकार दृष्टि का परिणाम होती है। निरपेक्षता, वस्तुपरकता और शाश्वतता मूल्यों में नहीं होती बल्कि उस तन्त्र के प्रति सार्वजनिक विश्वास में होती है जिससे मूल्य जन्मते हैं। हमारे युग में विज्ञान-आधारित ज्ञान, निरपेक्ष कोटि के सार्वजनिक विश्वास का दावा करता है।"[1]

समकालीन का शाब्दिक अर्थ है अपने काल की बात करना और अपने काल की बात करते समय अतीत और भविष्य के साथ सामंजस्य रखना।

इसका अर्थ बताते हुए **डॉ0 विजेन्द्र** कहते हैं -

"समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से जो घटित हो रहा है मात्र उतना नहीं बल्कि जो कुछ क्षतिग्रस्त हैं उनकी पुनर्रचना की सृजनशील चेष्टायें और जीवन को समोन्नत तथा सुन्दर एवं मनोहारी बनाने की परिकल्पना ही उसी समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।"[2]

एक अन्य स्थान पर कहा गया है -

"समकालीनता का सीधा आशय है अपने समय के प्रति ईमानदार होना। अपने समय के प्रति व्यक्ति तभी ईमानदार होता है जब वह संकटों की परवाह किये बिना समय के क्रूर यथार्थ से अभेद सम्बन्ध स्थापित कर लेता है और उस निर्मम यथार्थ की ज्वाला में जलता हुआ, अद्भुत साहस के साथ समय को चुनौती भी देता है।"[3]

---

1. मूल्य-सन्दर्भ और सामाजिक परिवर्तन, अनु0 नन्द चतुर्वेदी, बिन्दु, मूल्य-विश्लेषण अंक, अक्तू0 1967, पृ0 41
2. पहल-37, संपादक- ज्ञानरंजन- पृ0 17
3. समकालीन प्रतिनिधि कवि, अनन्न कीर्ति तिवारी, पृ0 3

समकालीन परिवेश और परिस्थितियों ने मानव जीवन को जिस सीमा तक संवेदनहीन बनाया है। वह काफी निराशा का विषय है आज का मानव जीवन के सम्पूर्ण आदर्शो को छोड़ बैठा है जो उसके जीवन का वास्तविक श्रृंगार करते रहे हैं। आज आवश्यकता है कि:-

"समकालीन सन्दर्भो में पिछले भाव-बोध का संस्कारयुक्त प्रयोग ही समकालीन कविता का लक्ष्य है और इस दृष्टि से प्रत्येक युग का साहित्य समकालीन साहित्य कहा जा सकता है।"[1]

वर्तमान में मनुष्य के सामने सबसे बड़ा अहम् सवाल मूल्यहीनता का है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानक मूल्यों के ह्रास ने जिन्दगी को अर्थहीन बना दिया है। प्रत्येक सम्बन्ध चाहे वह माता-पिता का हो, पिता-पुत्र, भाई-बहिन, पति-पत्नी आदि निकटवर्ती रिश्तों का सभी में ह्रास हो रहा है। इससे जीवन काफी असहाय, निरीह और बेजान हो रहा है। आज हमें आपसी प्रेम की आवश्यकता है। इसीलिये हुकुमचन्द राजपाल ने व्यक्ति स्वातन्त्र्य को स्वीकारते हुये कहा है -

"उन्हें हम किसी सीमा में बाँध सकते हैं, क्योंकि देश-काल के अनुसार उन जीवन-मूल्यों में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहता है। परन्तु कुछ मूल्य ऐसे हैं जिन्हें देशकाल अथवा परिवेश की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। व्यक्ति स्वातंत्र्य ऐसा ही मूल्य है जिसे सभी स्वीकार करते हैं।"[2] इसीलिये भारती ने भी व्यक्ति-स्वातंत्र्य मानवीय गौरव और विवेक को साहित्यिक मूल्य कहा है। उन्होंने इन मानवीय मूल्यों को प्राप्त करने की कोशिश भी की है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा, आदि मूल्य शाश्वत हैं। ये शाश्वत जीवन मूल्य सदैव कालजयी होते हैं। जबकि समकालीन जीवन मूल्य देशकाल और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं।

---

1. समकालीन कवि और काव्य, कल्याणचन्द्र, पृ0 13
2. आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 77

अध्याय दो

अध्याय - दो

धर्मवीर भारती की जीवन - दृष्टि

(1) भारती का जीवन बोध और मूल्य दृष्टि

(2) मानव मूल्य और अन्तः संघर्ष

(3) सामाजिक पृष्ठभूमि और भारती

(4) राजनैतिक पृष्ठभूमि और भारती

(5) आर्थिक पृष्ठभूमि और भारती

(6) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भारती

(7) दार्शनिक पृष्ठभूमि और भारती

धर्मवीर भारती की जीवन-दृष्टि :

यों तो सभी कवियों के लेखन में जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टि हुआ करती है। परन्तु भारती के लेखन में जीवन के प्रति उनकी दृष्टि बिल्कुल साफ है। उनकी जीवन दृष्टि की तुलना किसी भी साहित्यकार से नहीं की जा सकती है। क्योंकि ये सहज कवि होने के साथ एक उपन्यासकार, कहानीकार, निबन्धकार एवं जागरुक चिंतक एवं सर्जक कलाकार हैं। जो उनकी सर्जना और चिंतन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इसी प्रकार हम भारती जी के साहित्य में मानव-मूल्य और अन्त:संघर्ष, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक पृष्ठभूमि के माध्यम से निषेधात्मक मूल्यों को भी आत्मसात करते हुए उनकी सम्यक दृष्टि का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

1. भारती का जीवन बोध और मूल्य दृष्टि :

धर्मवीर भारती जी हिन्दी के नवलेखन में समर्थ रचनाकार हैं उनका जीवन-बोध रोमानी भाव बोध से विकसित होकर यथार्थवाद, वास्तववाद तथा आदर्शवाद की ओर उन्मुख हुआ है। आपने परम्परागत लेखन के ध्वंसावशेष पर नये भाव बोध, नये मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। मूल्य बोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया मानव के अस्तित्व पर आधारित है। भारती जी ने समस्त मूल्यों का स्रोत मानव-विवेक को ही स्वीकारा है।

भारती जी पर आयु का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है इसीलिए उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में 'गुनाहों का देवता', 'ठण्डा लोहा' तथा 'दूसरा सप्तक' में संग्रहीत अधिकांश कवितायें रोमानी भावबोध को ही रूपायित करती है इसीलिये उन्होंने 'गुनाह का दूसरा गीत' में वासना को जीवन का अनिवार्य अंग स्वीकार करते हए कहा है कि -

> "किसी की गोद में सिर धार
> घटा घनघोर बिखाराकर
> अगर विश्वास सो जाये,
> धड़कते वक्ष पर मेरा अगर व्यक्तित्व खो जाये,
> न हो यह वासना
> तो जिन्दगी की माप कैसे हो?"[1]

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पादक- अज्ञेय, पृ0-174

भारती का चिंतन रोमांटिकता से प्रारम्भ होकर यथार्थ के सामाजिक धरातल को लांघकर नवीन सन्दर्भो के प्रति आश्वस्त है। डॉ0 रघुवंश ने भी इस बात को स्वीकार किया है- "जहाँ तक भारती की आरंभिक रचनाओं का सवाल है, वे मूलतः रोमानी भावबोध की हैं। भारती की नयी कविता के आधुनिक परिवेश में रोमैंटिक मूड के सर्वाधिक निकट माना जा सकता है जिसमें रूप-सौन्दर्य की तीखी आसक्ति है।"[1]

भारती के जीवन बोध और मूल्य दृष्टि की जैसी समुन्नत और महाकाव्योचित योजना प्रस्तुत की है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। साहित्यकार की चिंतन दृष्टि अपने युग बोध से प्रभावित होती है। अतः युग बोध साहित्यकार को जीवन के वर्तमान से जोड़ता है और साहित्यकार अपनी चिंतन-दृष्टि तथा रचनात्मक शक्ति के अनुसार अपने साहित्य में अभिव्यक्त कर देता है। भारती प्रगतिशील लेखक के रूप में हमारे सामने आते हैं वे एक विचारक और विचारभूमि के व्यक्ति थे, जिनके हृदय में सहस्र संवेदना, संत्रास, आत्पीड़न आदि की तरंगे उठती रहती थीं। वे रूढ़िवाद का विरोध करते थे परन्तु बुद्धिवादी थे इसलिये नए मूल्यों, नये भाव बोधों तथा उत्तम परम्परा को प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं -

"पर मैं जी रहा हूँ निडर
जैसे कमल
जैसे पन्थ
जैसे सूर्य
क्योंकि
कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेगें ।"[2]

---

1. भारती का काव्य- डॉ0 रघुवंश, पृ0 5
2. सात गीत वर्ष- डॉ0 धर्मवीर भारती, पृ0 43

इस सम्बन्ध में डॉ0 जगदीश गुप्त का यह कथन बिल्कुल सही प्रतीत होता है- "आधुनिकता का अर्थ मेरे निकट पुरातन को गाली देना नहीं है बल्कि सारग्राहिणी तत्व दृष्टि के साथ विगत सांस्कृति समृद्धि को आत्मसात् करते हुए मानव की वर्तमान नियति एवं उसके भावी विकास के प्रति अपने दायित्व का विशिष्ट एवं सक्रिय अनुभव करना है।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारती के साहित्य में जहाँ अनुभव की प्रौढ़ता है वही रचनात्मक काल्पनिक उड़ान के साथ-साथ मानवीय चेतना, परम्परा एवं काल सापेक्ष स्थिति का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

भारती के 'अंधायुग' में अनास्था, अविश्वास, अमर्यादा, प्रतिहिंसा आदि में आस्था रखते हुए इन निषेधात्मक मूल्यों से ही आस्था, विश्वास, मर्यादा आदि का उदय होता है।

गांधारी कृष्ण के सम्बन्ध में कहती है -

जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया।
वंचक है।"[2]

संयोग से भारती की दृष्टि निषेधात्मक मूल्यों को आत्मसात करती हुई जीवन को गति प्रदान करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारती की सर्जना जीवन में ऊर्जा लेकर अवतरित हुई है। इनके साहित्य का अवलोकन करने से पता चलता है कि इनके साहित्य में यथार्थपरक अभिव्यक्ति के साथ-साथ भाव प्रवणता और रचनात्मक काल्पनिक उड़ान के साथ-साथ परम्परा एवं काल सापेक्ष स्थिति की सही सटीक एवं सार्थक अभिव्यक्ति का चित्रण हुआ है इनकी कहानियों में भूख, गरीबी, समाज में नारी की स्थिति, अंधविश्वास, शोषण, समाज की बुराइयाँ, प्रेम आदि अनेक समस्यायें है।

---

1. नयी कविता- अंक 7, डॉ0 जगदीश गुप्त, पृ0 64
2. अंधायुग- धर्मवीर भारती, पृ0 24

भारतीय जी की कहानी 'कुलटा' में भारतीय विधवा नारी की दयनीय दशा का चित्रण है। इनका प्रथम कहानी संग्रह 'चाँद और टूटे हुए लोग' में आदर्शवादी कहानी हैं।

'बन्द गली का आखिरी मकान' की कहानियाँ मानवीय संवेदना को उजागर करते हुए नारी-पुरुष के दबे स्वर विरक्ति और उदासी का चित्रण हुआ है। 'गुल की बन्नो' हमारे समाज की उन तमाम नारियों की प्रतीक है जो समाज की रुढ़ियों और परम्पराओं को छोड़ नहीं पाती हैं क्योंकि ये परम्परायें और रूढ़ियाँ नस-नस में समा जाती हैं।

इसीलिये पति को देखकर गुल की आत्मीयता से कह उठती है-

"राम, राम कितने दुबरा गए हैं। हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखता। अरे, सौत तो अपने मतलब की होगी।"[1]

जबकि गुलकी का पति उसे कठोर यातना देता है फिर भी पति के प्रति नारी का स्नेह कितना सर्वोपरि है।

भारती ने अपने उपन्यासों में भी मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं और परम्परा का चित्रण किया है -

"सुधा का विवाह कितनी अच्छी जगह किया गया, मगर सुधा पीली पड़ गयी है। कितना दुःख हुआ देखकर । और विनती के साथ यह हुआ। सचमुच यह जाति, विवाह सभी परम्पराएँ बहुत ही बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी हैं। उन्हें तो काट फेकना चाहिए।"[2]

पारिवारिक जीवन मूल्यों का ह्रास भले ही हो रहा हो लेकिन उसकी उपयोगिता और आवश्यकता आज भी कम नहीं हुई है। क्योंकि परिधानों की तरह न तो संस्कार बदले जाते हैं और न ही जीवन-मूल्य। वैवाहिक बंधनों को आज भी पवित्र और अटूट माना जाता है। भारत की संस्कृति सीता, सावित्री की संस्कृति है जिसमें भारतीय जीवन मूल्यों की अमर बेल मिली है।

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 26
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 179

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारती जी की दृष्टि सदैव सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक आदि रूपों में पड़ी है। इनके व्यक्तित्व पर पिता की गहरी छाप पड़ी थी। उनके मूल्य, उनकी प्रखरता, उनकी उदार दृष्टि, उनकी देशभक्ति, उनकी समझौताविहीन ईमानदारी उनका आदर्श बन गयी थी। ये आस्थावादी कवि थे। इसीलिये वे व्यक्ति स्वातंत्र्य, उदार प्रगतिशील भावना, विवेक और मानवीय दायित्व जैसे मानव मूल्यों पर विशेष बल दिया है और प्रमुख रूप से मानवीय संवेदना को उभारने तथा ध्वस्त मानव मूल्यों के बीच नये जीवन मूल्यों की तलाश की है। वे दुःख, शोक, हानि, मरण, पराजय द्वन्द्व, कुण्ठा, संत्रास आदि निषेधात्मक मूल्यों के द्वारा ही जीवन को गति प्रदान करते हैं।

2. मानव-मूल्य और अन्तः संघर्ष :

वस्तुतः मानव-मूल्य नैतिक प्रतिमानों से जुड़े होते हैं। अस्तु वे समाज के लिये कल्याणकारी होते हैं। मानव-मूल्यों का तात्पर्य यह है कि अपने परिवेश, इतिहास क्रम और काल प्रवाह के अनुसार मनुष्य की स्थिति कैसी है और उसका महत्व क्या है? इस सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के मन्तव्य द्रष्टव्य है -

डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी के अनुसार- "जिन मान्यताओं के आधार पर अपने को अपने समाज को न केवल धारण और व्यवस्थित कर पाते हैं, बल्कि दोनों में निहित लोकमांगलिक, सम्भावनाओं को चरितार्थ भी करते हैं, मानव मूल्य कहे जाते हैं।"[1]

डॉ० रामप्रसाद मिश्र के शब्दों में - "मानव-मूल्य उन सृजनात्मक एवं शिवत्व प्रधान गुणों को कहते हैं, जो मानवता को एक अखण्ड एवं गौरव-गरिमामय रूप प्रदान करने में सहायक हुए हैं, हो रहे हैं और यथा सम्भव होते रहेंगे।"[2]

उपर्युक्त कथनों के निष्कर्ष स्वरूप हम यह कह सकते हैं कि मानव-मूल्य समाज को न

---

1. व्यक्तिगत विचार विमर्श के आधार पर ।
2. पत्र व्यवहार के आधार पर ।

केवल धारण एवं व्यवस्थित करने वाले गुण हैं बल्कि वे धारणायें मत या विश्वास हैं, जो सृजनात्मक एवं शिवत्व प्रधान होते हैं, और मानवता को अखाण्ड गौरव एवं गरिमा प्रदान करते हुए जीवन को गति प्रदान करते हैं।

इसी प्रकार हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ0 बैजनाथ सिंहल ने मूल्य और मानव-मूल्यों में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है जो सर्वाधिक उपयुक्त और समीचीन प्रतीत होता है-

"मानव-मूल्य वही धारणाएं मत या विश्वास हो सकते हैं, जो मानव-जीवन को गति प्रदान कर सकते हैं।"[1]

एक अन्य विदेशी विद्वान ने भी इसका महत्व स्वीकार करते हुए कहा है कि -

"मानव-मूल्यों की अवधारणा जन-सामान्य की विशेष रूप से, मानवीय संकल्पना के और नैतिक गरिमा के बोध के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ी हुई हैं। मेरे कहने का अर्थ यह है कि किसी भी मानवतावादी के कोई भी विशिष्ट मूल्य क्यों न हों, उनमें सामान्य रूप से यह कल्पना निहित रहती हैं कि जन-सामान्य सोद्देश्य कर्म, निर्बन्धा विकल्प और नैतिक उत्तरदायित्व में सक्षम हैं और यह है कि किसी भी मानवतावादी के कोई भी विशिष्ट मूल्य क्यों न हों, उनमें सामान्य रूप से यह कल्पना निहित रहती है कि जन-सामान्य सोद्देश्य कर्म, निर्बन्धा विकल्प और नैतिक उत्तरदायित्व में सक्षम हैं और यह कि उसके हितों का प्रत्यक्षतः समादर किया जाना चाहिए।"[2]

मानव-मूल्यों का उद्देश्य कर्म पर आधारित है जो मानव जीवन को उत्कर्ष प्रदान करता है। संस्कृत की यह उक्ति इसी उद्देश्य को व्याख्यायित करती है 'न हि मानुषात श्रेष्ठतर हि किंचित' मनुष्य वस्तुतः एक सामाजिक प्राणी है। इस दृष्टि से मानव-मूल्य समाजाभिमुख होते हैं। क्योंकि नैतिकता और समाज ही मानव-मूल्यों के आधार है। समाज के विविधा क्षेत्रों में इसका

---

1. पत्रव्यवहार के आधार पर
2. ह्यूमन वेल्यूज इन ए मेकेनिस्टिक : यूनिवर्स, मारगैरट ए0 बोडेन, पृ0 136

मूल्यांकन किया जा सकता है। आस्तिक विद्वानों ने धर्म को ही समस्त मानवीय मूल्यों का केन्द्र बिन्दु माना है। जबकि दूसरी तरफ नास्तिक विद्वानों ने अर्थ को ही प्रधानता दी है क्योंकि इससे व्यवहार अनुकूलन को दिशा प्राप्त होती है। इन सब बातों से परे भारती जी ने विवेकपूर्ण दायित्व को स्वीकार किया है।जिसे डॉ0 देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी ने भी कुछ इन शब्दों में व्यक्त किया है-

"मानवीय मूल्य मानवीय समता और एकता पर बहुत बल देते हैं। मानवीय गरिमा और गौरव की इनमें सहज स्वीकृति रहती है। किसी अप्राकृतिक या दैवीय शक्ति को अवांछित महत्व न देकर मनुष्य को दायित्वपूर्ण तथा स्वयं निर्णय लेने में सक्षम मानना, मानव-मूल्यों की स्थापना की पहली शर्त है। मानव-मूल्यों की दृष्टि से बड़ा-छोटा होने का प्रश्न नहीं इनमें मानव की सार्वभौम संवेदना को स्वीकार किया जाता है।"[1]

इस प्रकार हम मानव-मूल्यों के सन्दर्भ में कह सकते हैं-

"विशेष अर्थ में मानव-मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है, जो मानव के आंतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं। उनकी विशेषता इसी में है कि मानवीय संवेदनाओं की उनमें मुक्त और उदार स्वीकृति है। जीवन में उन मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ मानवता एवं मानवीयता की प्रतिष्ठा है।"[2]

'मानव मूल्य और साहित्य' में भारती जी ने वर्तमान परिवेश में विघटित मानव-मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने का सार्थक प्रयास किया है लेखक ने स्वीकार किया है कि मध्यकाल में सम्पूर्ण सृष्टि और इतिहासक्रम का नियन्ता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को ही माना जाता था। उस काल में समस्त मानव-मूल्यों का स्रोत एक मात्र सृष्टि नियन्ता ईश्वर ही था। लेकिन आज विज्ञान के विकास के कारण मनुष्य की भावना की जगह बुद्धि और ज्ञान ने ले लिया है इसी कारण हमारी अन्तरात्मा में जीवन के बाह्य यथार्थ से कोई सम्बन्ध न होने के कारण ही संघर्ष

---

1. निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, डॉ0 देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी, पृ0 63
2. निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन, डॉ0 देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी, पृ0 62

की स्थिति उत्पन्न हो गयी है- लेकिन फिर भी मानवीय मूल्य जीवन की सार्थकता के लिये अनिवार्य हैं। क्योंकि जब तक इस सृष्टि में सजग मनुष्य विद्यमान रहेंगे, वह किसी न किसी 'जीवन-मूल्य' को अपनाये बिना नहीं रह सकते हैं।

मानव-मूल्य अन्तः संघर्ष मानव सभ्यता के उद्‌भव से लेकर आज तक मनुष्य के हृदय में अन्तःसंघर्ष किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। रीति, नीति, आचार-विचार, परम्पराएं आदि सैकड़ों विषयों के सन्दर्भ में मनुष्य व्यवस्था के क्रम में चिन्तन करता रहा है। इस हेतु उसके मानस में शिव और अशिव का निरन्तर संघर्ष चलता रहा है। जहाँ एक ओर मन का शिव पक्ष हमें स्व की सीमित परिधि से निकालकर समष्टि के कल्याण की भावना में लीन करता है। वहीं शिव स्व के संकीर्ण घेरे में कैद कर हमें सिर्फ अपने और अपने परिवार तक सोचने को विवश करता है।

वैदिक युग से लेकर आज तक ये शिव और अशिव का संघर्ष अन्तः संघर्ष के रूप में मनुष्य में आज तक विद्यमान है। समकालीन परिवेश और परिस्थितियों में विशेषतः व्यापक दृष्टि से विचार करें तो लगभग विगत एक सौ वर्षो से सम्पूर्ण विश्व अन्तः संघर्ष से किसी न किसी रूप में अवश्य ग्रस्त हुआ है। जिसके प्रमुख कारण वैज्ञानिकीकरण, औद्योगिकीकरण, महानगरीकरण यांत्रिकता का विकास एक नई सभ्यता का उदय अन्तर्राष्ट्रीय रूचि का विस्तार धर्म और नीति के नये मानदण्डों का आगमन लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा मानव केन्द्रित चिन्तन तथा उनके परिवर्तनों से उत्पन्न अर्थ प्रधान संस्कृति धन का महत्व, उपभोक्तावादी संस्कृति, बेरोजगारी, कुण्ठा, घुटन, निराशा, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, क्षणवादिता, लघुमानववाद आदि अनेक न जाने कितने भाव सृष्टि के प्रत्येक समाज और साहित्य में समाहित हैं।

मानव-मूल्यों का अन्तःसंघर्ष से सीदा-सम्बन्ध है अन्तः संघर्ष की यह अनिवार्य पहचान है कि शिव और अशिव का द्वन्द्व समाज के शिव भाव मानव-मूल्यों के सहायक एवं उत्प्रेरक होते हैं तो दूसरी ओर मानव-मूल्यों के विरोधी होते हैं। इसलिये अन्तःसंघर्ष का सीधा सा प्रभाव समाज के मानव मूल्यों पर अवश्य पड़ता है। इस सन्दर्भ में विश्व साहित्य में व्याप्त एडिथ

सिटबल ने अपनी कविताओं के माध्यम से अधिक यथार्थ ढंग से व्यक्त किया है एडिथ सिटवेल ने अणुबम पर तीन कवितायें की ये पंक्तियाँ अन्त:संघर्ष को ही उजागर करती हैं -

"अपने हृदय पर कीलों से ठुकी हुई जैसे सलीब पर चोर मैं लटक रही हूँ बीचों-बीच जीसस के और उस खाई के जहाँ इस संसार का अन्त हो गया है......... जीवित अन्धे और दृष्टा मुर्दे एक साथ पड़े हुए हैं जैसे - प्रेमी...... और न अब नफरत रही है और न प्रेम है। लुप्त हो गया है मनुष्य का हृदय।"[1]

इन पंक्तियों में बेचैनी, विषाद, निराशा, दुश्चिन्ता आदि का संघर्ष विद्यमान है। प्राचीनकाल में धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मूल्य स्वीकार किया जाता है क्योंकि उस समय ईश्वर ही सर्वप्रधान और सर्वगुण सम्पन्न था लेकिन वैज्ञानिक युग ने ईश्वर की सत्ता का पूर्ण निषेध कर दिया है और उसने विवेक को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया जिसे हरिवंश पाण्डेय ने भी इन शब्दों में व्यक्त किया है -

"विज्ञान ने मनुष्य की भावनाओं को अपदस्थ कर उसके विवेक को स्थापित किया। उसने माना कि विवेक अन्तरात्मा के सहायक तत्वों में सबसे प्रमुख और विश्वसनीय है। मानवीय गौरव और उसका विवेकपूर्ण दायित्व ही महत्वपूर्ण है।"[2]

भारती जी यही स्वीकार करते हुए कहते हैं कि -

"विज्ञान के उदय ने पुरानी मान्यताओं के समक्ष गहरे प्रश्न चिह्न लगा दिये थे और मनुष्य पहले जिन धर्मग्रन्थों में प्रणीत नियमों या आचार विधानों को अन्तरात्मा की आधार-भूमि मानता था, वे धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध हो चुके थे।"[3]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 13
2. धर्मवीर भारती चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 205
3. मानव-मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 14

'जाड़े की शाम' कविता में भारती जी ने वासना और धार्मिकता का समन्वय कर अन्तस्संघर्ष की स्थिति का चित्रण किया है -

> "जिस दिन तुमने मेरी साँसों को चूमा, ये
> भगवान राम के मन्त्र बाण-सी ।
> सात सितारों से जाकर टकरायी थी ;
> पर आज पर-कटे तीरों-सी मेरी साँसे,
> हर कदम-कदम पर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाती हैं।
> कुछ इतना था पराजित सा लगता हूँ मैं ।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारती जी के साहित्य में अन्त:संघर्ष कई रूपों में ध्वनित हुआ है। यह मनुष्य के जीवन में इस कारण उत्पन्न हुआ कि वह न तो ईश्वर की सत्ता को पूर्ण रूप से स्वीकार कर पा रहा था और न ही उसका निषेध कर पा रहा था।

3. सामाजिक पृष्ठभूमि और भारती :

वस्तुतः समाज से लेखक, लेखक से साहित्य और साहित्य में पुनः समाज विकसित होता है तथा मूल्यों का विकास समाज में ही होता है, क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसीलिए मनुष्य की प्रतिभा का स्रोत और क्षेत्र समाज से ही प्रारम्भ होता है। सामाजिक संरचना एक निरंतर परिवर्तनशील प्रक्रिया है अतः यह स्वाभाविक है कि कोई भी समाज स्थिर नहीं रह सकता है।

अज्ञेय ने ठीक ही कहा है -

"ये सांस्कृतिक मूल्य सामाजिक मूल्य होते हैं और हमारे चेतना सम्पन्न जीवन को विस्तार देते हैं। व्यक्ति समाज में ही रहकर इन मूल्यों को ग्रहण करता है और समाज में ही युगानुरूप इन सांस्कृतिक मूल्यों में विकास और बदलाव होता रहता है। संस्कृति पहले भारतीय

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पादक- अज्ञेय, पृ0 184

परम्परा में धर्माश्रित थी, लेकिन उन्नीसवीं शती से क्रमशः स्पष्टतर होती हुई सामाजिक शक्तियों के घात-प्रतिघात में जब भारतीय सामाजिक आचरण के मानदण्ड लौकिक अथवा मानवीय आधारों पर बनने लगे तब उसकी संस्कृति लौकिक आधारों पर आश्रित जीवन-परिपाटी बन गयी।"[1]

भारतीय संस्कृति के आधार पर यहाँ जिस समाज का संगठन किया गया था उसमें वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करते हुए यहाँ के ऋषियों एवं मनीषियों ने उसे इतना सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित बनाने की चेष्टा की थी कि जिससे मनुष्यों को किसी प्रकार के संकटों का सामना न करना पड़े और सभी सुख और समृद्धिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

"परम्परा और परिस्थिति की पृष्ठभूमि में उसकी वह अदम्य जिजीविषा सक्रिय रूप में प्रतिफलित होती है किन्तु यह प्रक्रिया निरर्थक या यान्त्रिक नहीं है, वह सार्थक है और लक्ष्ययुक्त है। उसका लक्ष्य अपने अस्तित्व और चेतना की ऊपरी पर्तो के नीचे बहुत गहरे में निहित अपने वास्तविक भाव को खोजना, खोजकर अपनी अगणित वाह्य प्रक्रियाओं, आचरणों और सामाजिक सम्बन्धों में उससे तादात्म्य स्थापित करना, और अपने समस्त जीवन व्यापार में निरन्तर यह प्रयास करना कि आत्मोपलब्धि के इस सत्य का एक अंश, जिस पर उसकी खोज, उसकी विजय, उसकी महत्ता की छाप है; ऐसा एक अंश वह किसी-न-किसी रूप में प्रवहमान सामाजिक जीवन को दे जाय।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण के समर्थन में हम कह सकते हैं कि मनुष्य में जीवन धारण करने की सामर्थ्य सामाजिक परम्परा और परिस्थितियों में प्रतिफलित होती है। चारो वर्णो एवं वर्गो के निर्माण का रहस्य भी यही था कि समाज सभी से मर्यादित बना रहे तथा सद्भाव व सौमनस्य की स्थापना हो और सभी व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार समाज की सेवा करते रहे और पारस्परिक सम्बन्ध मधुर हो और इन सबसे निर्मित होने वाला मानव व्यक्तित्व अपरिमित सम्भावनाओं को छिपाये रहता है इसीलिये भारती जी ने कहा है -

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य- अज्ञेय, पृ0 34
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 116

"मनुष्य और मनुष्य का रागात्मक अथवा सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य का निरपेक्ष सत्य, मर्यादा, मूल्य या किसी अरुप भावात्मक अथवा आदर्शात्मक सत्ता से सम्बन्ध, इन सम्बन्धों की विविधता और इनका वैचित्र्य तथा इन सबके जटिल प्रभाव से निर्मित होने वाला मानव व्यक्तित्व अपनी असंख्य विविधताओं में अपरिमित सम्भावनाओं को छिपाये रहता है।"[1]

भारती मूलतः एक मूल्यान्वेषी सर्जक कलाकार हैं जिनमें परम्परा और युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक् निर्वाह हो सका है। इसीलिए उन्होंने समाज में व्याप्त विषमताओं को विवेक के माध्यम से ही स्वीकार किया है और समाज में व्याप्त कुरीतियों को छोड़ने के लिये कहते हैं क्योंकि ये कुरीतियाँ और विषमतायें ही मनुष्य को विकलांग बनाती हैं इसीलिये-

"पुराने मूल्य अब मिथ्या पड़ने लगे हैं। ऐसी श्रद्धा और आस्था जो हमें नरबलि तक के लिये विवश करे और वह करुणा जो दान-दया के द्वारा व्यक्त हो पर समाज के वैषम्य को विधि का विधान मानकर स्वीकार कर ले- इस प्रकार की श्रद्धा और करुणा अमानवीय वृत्तियों को जन्म देते हैं। वे मानवीय गौरव को प्रतिष्ठित करने की बजाय विकलांग बनाते हैं।"[2]

भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के बाद भारती जी पूर्णतः उपनिषद और भारतीय दर्शन से प्रभावित थे क्योंकि उनका आत्मचिंतन, आत्मोपलब्धि, सामाजिक चिंतन और सामाजिक उपलब्धि आदि उसमें विद्यमान थे। इसीलिये वे शाश्वत मूल्यों को अपनाकर समाज में स्थायित्व लाना चाहते थे जिससे सामाजिक व्यवस्था सुचारु ढंग से चल सके। भारती जी सभी धर्मो को समान मानते थे। इसीलिये वे कहते हैं -

"अगर हमारा धर्म हमें यह सिखाता है कि इनसानियत और हमदर्दी और भाईचारा सब अपने ही धर्मवालों के लिये हैं, उस दायरे के बाहर जितने लोग हैं सभी गैर हैं और उन्हें जिन्दा रहने का कोई हक नहीं तो मैं उस धर्म से अलग होकर विधर्मी होना ज्यादा पसन्द करूँगा।"[3]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 116
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 14
3. कहनी-अनकहनी, ले0 धर्मवीर भारती, पृ0 97

'डोले का गीत' शीर्षक में भारती जी प्रेम के स्थान पर सामाजिक मर्यादा को प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं -

"प्रीत ही सब-कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी, बोलना रुंधते गले से-। ले चलो। जल्दी चलो। पी के नगर ।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती जी आधुनिकता में रूढ़िवादिता का विरोध करते दिखाई देते हैं परन्तु सम्पूर्ण परम्परा का विरोध नहीं करते हैं यदि हम भारती जी के कथा साहित्य का अवलोकन करते हैं तो हमें सामाजिक यथार्थ का रेशा-रेशा उजागर एवं जीवित दिखाई देता है, जिसमें मध्यवर्गीय समाज की विषमताओं तथा रुढ़ियों का यथार्थ चित्रण हुआ है जिसमें भारतीय नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया गया है -

"हाय। हमें काहे को छोड़ दियौ। तुम्हारे सिवा हमारा लोक- परलोक और कौन है। अरे हमरे मरै कौन चुल्लू भर पानी चढ़ायी......"[2]

हमारे प्राचीन परम्परा की जड़े इतनी मजबूत हैं कि हम उन्हें काटकार रातों-रात बुहार नहीं सकते हैं इसीलिये पति चाहे मारे चाहे काटे पर पत्नी उसे छोड़ नहीं सकती और हर समय उसे पति का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। प्राचीन काल में नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे और नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था मध्यकाल से नारी को उपेक्षित किया गया है। सदियों से पुरुष के शोषण का शिकार होती हुई भारतीय नारी आज अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिये संघर्षरत है और वह सभी क्षेत्रों में पुरुषों से अधिक दक्षता, कुशलता और सफलता पा रही है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सामाजिक मूल्यों का केन्द्र जनकल्याण की धारणा होती है क्योंकि मानव समाज में ही मूल्यों का संगठन एवं संकलन है। मूल्यों के द्वारा ही मानव

---

1. ठण्डा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 11

2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 24

अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं आदर्शो को प्राप्त करता है इनका विकास समाज के द्वारा ही सम्भव है। भारती जी सामाजिक सम्बन्धों की पवित्रता बनाये रखने के लिये मर्यादा को स्वीकारते हैं।

4. राजनैतिक पृष्ठभूमि और भारती :

राजनीति ने समाज को सदैव प्रभावित किया है। यहाँ तक कि किसी किसी काल में तो हम तद्‌युगीन राजनीति से परिचालित तक हुए हैं। प्रत्येक युग का साहित्यकार कवि या कलाकार अपने युग की राजनीति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, वस्तुतः राजनीति यहाँ सिर्फ राजनैतिक गतिविधियों तक सीमित न रहकर समाज के माध्यम से हमारी चेतना को गहरे तक प्रभावित करती है इसीलिये भारती जी ने कहा है - "भारत में सदा से राजनीति को चिन्तन से अनुशासित एवं मूल्यों से अनुप्रेरित रखा गया था। जिस-जिस ने जिस भी काल में इस मर्यादा को निभाया वह राजा या उसका राज्य-काल स्मरणीय रहे और देश के इतिहास को सही दिशा में मोड़ते रहे।"[1]

भारतीय संस्कृति में तो अति प्राचीन काल से ही राजा की महत्ता को स्वीकार किया जाता रहा है। वह सभी आदर्शो से सम्पन्न प्रजा का रक्षक एवं पालक होता था। मध्य युगीन राजनीति में धर्म और नैतिकता दोनों एक दूसरे में समाहित थी। धर्म सनातन है, असीम है, अपरिमित है। सत्य का आनन्द का, प्रकाश का स्रोत है। जो नैतिकता के आवरण में ढक गया है। हमारे देश में गाँधी जी ने जब स्वराज्य की परिभाषा की थी तब उन्होंने 'राम-राज्य' शब्द का व्यवहार किया था राजनीति में इन्हीं नैतिक प्रतिमानों को समाहित कर विशेष उपलब्धि प्राप्त की थी -

"हमारे देश में महात्मा गाँधी ने राजनीति को नैतिक प्रतिमानों से सम्बद्ध कर जो एक नया प्रयोग किया उसकी अपनी विशेष उपलब्धियाँ भी थीं।"[2] गाँधी जी सच्चे अर्थो में राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते प्रतीत होते हैं। परन्तु आधुनिकता ने समस्त संसार में राजनीति को

---

1. धर्मवीर भारती से साक्षात्कार, संकलन-सम्पादक, पुष्पा भारती, पृ0 16।
2. मानव मूल्य और साहित्य, डॉ० धर्मवीर भारती, पृ0 5।

प्रभावित किया है। आज प्रजातन्त्र, लोकतन्त्र, समाजवाद, पूँजीवाद आदि को विशेष महत्व दिया जाता है कि ये मानव मुक्ति को लक्ष्य बनाकर चल रही हैं, ये मुक्ति व्यक्ति को वाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों में मिलनी चाहिये इसीलिये -

"मानव-नियति के सन्दर्भ में राष्ट्र के नव-निर्माण के प्रति अपना दायित्व अनुभव करता है, उसके लिये सबसे प्रमुख चिन्ता हो जाती है - 'सामान्य जन की मुक्ति'। भारत की स्वतन्त्रता तब तक सार्थक नहीं है जब तक सामान्य जन स्वतन्त्र नहीं है। सामान्य जन के स्वतन्त्र होने का अर्थ यही नहीं है कि उसे भरपेट भोजन, जरूरत के मुताबिक कपड़ा मिल जाय। यह भी है तथा इसके अलावा और बहुत कुछ भी हैं। उसके मानस में जो अन्धा रूढ़ियाँ है, कुण्ठाएँ है, अविवेक है, मूर्च्छना है, मृत परम्पराएँ आदि प्रवृत्तियाँ हैं, जिनके कारण वह युग-युग से दास बनता चला आया है- उसे भी उसे मुक्त कराना है।"[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ दिनों बाद ही देश की राजनीतिक मर्यादा भंग होने लगी और जो आदर्श निर्धारित किये गये थे उनका अवमूल्यन होता चला गया चारो तरफ स्वार्थ की राजनीति होने लगी और अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिये अनुचित तरीकों का भी प्रयोग होने लगा।

विदेशी यात्राओं में निहित स्वार्थो वाली राजनीति पर करारा व्यंग्य करते हुये - अपनी 'मुनादी' कविता में भारती जी ने लिखा है -

"आखिर क्या दुश्मनी है तुम्हारी उन लोगों से
जो भले मानुसों की तरह अपनी कुरसी पर चुपचाप
बैठे-बैठे मुल्क की भलाई के लिये
रात-रात जागते हैं,
और गाँव की नाली की मरम्मत के लिए
मास्को, न्यूयार्क, टोकियो, लन्दन की खाक
छानते फकीरों की तरह भटकते रहते है.....।"[1]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 51; 52
2. सपना अभी भी, धर्मवीर भारती, पृ0 73

भारती जी नेताओं के झूठे भाषणों के खिलाफ आवाज उठाते हैं-

"वे सब बीमार हैं
वे जो उन्मादग्रस्त रोगी - से
मंचो पर जाकर चिल्लते हैं
बकते हैं
भीड़ में भटकते हैं"[1]

ऐसा लगता है सभी नेता मानसिक रुप से बीमार हैं तभी वह विक्षिप्त की तरह चिल्लाते हैं। वस्तुतः देश में कुछ ऐसे गद्दार होते हैं, जो कई बार खरीद लिये जाते हैं पर सभी को खरीद पाना सम्भव नहीं है इसीलिये चेतावनी देते हुये कवि कहता है-

"चेक बुक हो पीली या लाल,
दाम सिक्के हों या शोहरत-
कह दो उनसे
जो खरीदने आये हों तुम्हें
हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता है।"[2]

जब व्यक्ति स्वार्थ की परिधि को त्याग देता है तो उसमें स्वाभिमान और आत्मसम्मान जग जाता है और फिर उसे किसी भी कीमत पर खरीदा नहीं जा सकता है क्योंकि उसे सत्य की पहचान हो जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारती ने अपने साहित्य में राजनैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा विशेष रूप से की है ये गाँधी जी के विचारों एवं आदर्शों से प्रभावित थे लेकिन स्वतन्त्रता के पहले जिन विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिये सोचा गया था उसमें एक भी पूर्ण नहीं हुआ।

---

1. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 46
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 49

इस सन्दर्भ में भारती जी के विचार दृष्टव्य है -

"पिछले पच्चीस वर्षों में विश्व के राजनीतिक जीवन में जो-जो आदर्श उपस्थित किये गये उनमें से एक को भी अभी तक पूर्ण विकास का अवसर नहीं मिल सका।"[1]

राजनीतिक दृष्टि में आज किसी प्रकार की मर्यादा, शालीनता, एवं देशहित आदि को स्थान नहीं मिल रहा है वरन् सभी तरफ आपा-धापी है। अधिकार लिप्सा, मँहगाई, भ्रष्टाचार एवं चोर बाजारी का साम्राज्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, नेता लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये निरपराध लोगों की बलि चढ़ा देते हैं उनके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए भारती जी कहते हैं -

"जीप अगर बाश्शा की है तो
उसे बच्चे के पेट पर से गुजरने का हक क्यों नहीं?
आखिर सड़क भी तो बाश्शा ने बनवायी है।
बुड्ढे के पीछे दौड़ पड़ने वाले
अहसान फरामोशों! क्या तुम भूल गये कि बाश्शा ने
एक खूबसूरत माहौल दिया है जहाँ
भूख से ही सही, दिन में तुम्हें तारे नजर आते हैं।"[2]

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं राजनीतिक मूल्यहीनता के रूप में सबसे बड़ा कारण नेताओं के व्यक्तित्व का दोहराव है उनकी चरित्रहीनता तथा स्वार्थ के कारण ही देश की यह स्थिति है। भारती प्रजातन्त्र के मूल्यों में विश्वास क्योंकि प्रजातन्त्र के द्वारा ही समाज और राष्ट्र का कल्याण सम्भव है, जिससे देश विकास की ओर अग्रसर होता है।

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 185
2. सपना अभी भी, धर्मवीर भारती, पृ0 73

5. आर्थिक पृष्ठभूमि और भारती :

भारतीय चिन्तनधारा के अनुसार पुरुषार्थो (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में अर्थ को द्वितीय स्थान प्राप्त हैं। अर्थ का सामान्य अभिप्राय भौतिक सुखों व आवश्यकताओं की पूर्ति है। डॉ0 गोपाल ने अर्थ की परिभाषा बड़े सरल ढंग से प्रस्तुत की है-

"अर्थ शब्द धन, सम्पत्ति या मुद्रा का पर्यायवाची नहीं है। यह भौतिक सुखों की सभी आवश्यकताओं और साधनों का द्योतक है। अर्थ मनुष्य की शक्ति एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा के लिए प्रयुक्त हुआ है।"[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जनता ने अपने लिए जो सुनहले सपने संजोये थे वे शीघ्र ही टूटते चले गये और आज आम आदमी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी है क्योंकि-

"आर्थिक विषमता दिन, प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसका स्वाभाविक परिणाम हो रहा था- गरीबी का दिन-पर-दिन बढ़ते जाना। फलतः किसान, मजदूर और मध्यम वर्ग में अपने आर्थिक वैमनस्य को दूर करने के संघर्ष आरम्भ हुए, जिन्होंने बढ़ते-बढ़ते संघठित संघर्षो का रूप ग्रहण कर लिया, 'जो एक ओर तो विदेशी शासक अंग्रेजी साम्राज्य के विरूद्ध था। इस तरह विदेशी दासता से मुक्ति-संघर्ष का अंग था और दूसरी ओर अपने देशी शोषकों बड़े जमींदारों और पूँजीपतियों के विरुद्ध था।"[2]

भारतीय जनता पूँजीवादी, सामन्ती और विदेशी सभी के शोषण का शिकार बन रही है। इन सभी विचार धाराओं के कारण व्यक्ति स्वार्थी हो गया है, तथा पारस्परिक सम्बन्धों को भी भुला बैठा है क्योंकि वह अर्थ को ही जीवन की धुरी मान बैठा है इसीलिये भारती जी ने कहा है-

"जीवन-संघर्ष ने उन्हें स्वार्थी और खूँख्वार बना दिया है। यह प्रतिहिंसा, विकृति निर्माता, स्वार्थ और पाशविकता, सभी पूँजीवादी शोषण की प्रतिक्रियाएँ थीं। पूँजीवाद ने मानवीय सम्बन्धों का

---

1. भारतीय सामाजिक संस्थाएं, डॉ0 गोपाल, पृ0 94-95
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य, डॉ0 राम गोपाल सिंह चौहान पृ0-7

आधार पारस्परिक प्रेम और सहयोग नहीं रहने दिया। उसने धन संचय को ही प्रमुख स्थान दिया।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार हम कह सकते हैं कि पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति स्वार्थी और खूँखार हो गया है इसीलिये वह शोषण करने में भी नहीं हिचकता है और आपस में सहयोग और सहानुभूति भी नष्ट हो चुकी है इसकी पुष्टि करते हुये भारती जी ने कहा है -

"उस व्यवस्था के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच सहज इनसानी रिश्ता नहीं कायम हो पाता। अगर शासक और शासित का भेद मिटा दिया जाये तो कोई कारण नहीं कि एक ही देश में विविध जाति, विविध सम्प्रदाय और विविध रंग के लोग मिलकर न रह सकें।"[2]

इसीलिये भारती का हृदय पूँजीपतियों द्वारा इस विश्व में फैलाये अत्याचारों को देखकर द्रवित हो उठता। पूँजीपति गरीब वर्ग का शोषण करने के लिये नित्य नये तरीके खोज लेता है और सामान्य जनता निरन्तर पिसती चली जाती है-

"आर्थिक स्तर पर एक वर्ग का व्यक्ति अपना श्रम बेचने को 'विवश' है, दूसरा उसे खरीदने को 'स्वतन्त्र', एक व्यक्ति पिसने को 'विवश' है और दूसरा पीसने को 'स्वतन्त्र'। - -[3]

इसीलिए अर्थ प्राप्ति के लिए हर प्रकार का संघर्ष जायज हो गया है। मजदूर किसान एवं मध्यमवर्गीय परिवार भूख एवं गरीबी के कारण मर चुके हैं लेकिन यह सब होने के बावजूद भी श्रम के महत्व को सर्वोपरि माना गया है। श्रम के द्वारा ही व्यक्ति स्वर्ग को प्राप्त सकता है -

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0-28
2. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0-150
3. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0-86

"आदमी इतना नहीं कमज़ोर है
पलक के जल और माथे के पसीने से
सींचता आया सदा जो स्वर्ग की भी नींव
× × × × ×
नये मनु के नये युग का जगमगाता गान
भूख, लाचारी, गरीबी हो, मगर
आदमी के सृजन की ताकत
इन सबों की शक्ति के ऊपर ; "[1]

कार्लमार्क्स ने सामाजिक समानता के सिद्धान्त को प्राथमिक मान्यता प्रदान करते हुये स्पष्ट कहा है -

"यह सारा दोष वस्तुतः इस व्यवस्था का है जिसमें वर्ग-वैषम्य के कारण प्रत्येक मूल्य मिथ्या सिद्ध हो रहा है। स्वातन्त्र्य, गौरव, करुणा, सौन्दर्य और सुख, ये शब्द निरर्थक हैं, असंगतियों से भरे हुए हैं और केवल तभी इनमें अर्थ की प्रतिष्ठा हो सकती है। जब समाज का वैषम्य दूर हो जाय और वर्ग-वर्ग का भेद मिट जाय।"[2]

मार्क्स ने सामाजिक समानता के सिद्धान्त को मान्यता तो प्रदान की थी, परन्तु वाह्य इतिहास की द्वन्द्वात्मक गति की अनिवार्यता को स्थापित कर मनुष्य की अन्तरात्मा को व्यर्थ सिद्ध कर दिया था लेकिन भारती जी ने मनुष्य में विवेक को स्थापित कर अन्तरात्मा को अधिक महत्व दिया।

वर्तमान में अर्थ के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर और धर्म को भी प्राप्त करना हो तो सबसे पहले अर्थ की पूजा करनी होगी आज अर्थ ही सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता है।

---

1. दूसरा सप्तक, संकलनकर्ता एवं सम्पादक, अज्ञेय, पृ0-188
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0-19

भारतीय दर्शन में अर्थ को मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है परन्तु अर्थ की प्राप्ति करते समय हम किसी दूसरे का अहित न करें बल्कि धर्मानुसार अर्थ की प्राप्ति करें। भारती जी ने पूँजीवाद के समानान्तर विकास की पुष्टि की है तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप ईश्वर तथा प्रेम का स्थान मशीनों ने ले लिया इसीलिये वह पूँजीवाद में विश्वास नहीं करते थे -

"मानव के आत्म-विश्वास की, विद्रोह की, निर्माण की और सपनों की रीढ़ टूट चुकी थी। एक अजब-सी अपराध-चेतना, किसी आने वाली भयानक विपत्ति की आशंका, अन्दर का भयानक खोखलापन, पूँजीवाद की विकृतियों द्वारा उभारी गयीं हिंसक पाशविकता- ये सभी किसी भयानक विस्फोट की बाट जोह रही थी ।"[1]

इस पूँजीवादी संस्कृति ने मनुष्य को इस कदर पागल बना दिया कि वह अपने अस्तित्व को ही भूल गया हमारी संस्कृति का ढाँचा ही बदल गया था सारे आदर्श बिल्कुल खोखले तथा बेमानी साबित हुए।

6. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और भारती :

नयी कविता के कवि होने के बावजूद भारती जी भारतीय धर्म, संस्कृति एवं कलाओं के गहरे पारखी थे। उन्होंने वेदों, उपनिषदों आदि से लेकर पाश्चात्य दार्शनिकों तक के ग्रन्थों का अध्ययन किया था। संस्कृति के सन्दर्भ में उनकी सोच बहुत ही मूल्यवान तथा भारतीय समाज के लिये प्रासांगिक है। यही कारण है कि इनकी कविताओं एवं उपन्यासों, कहानियों आदि में रुमानियत के साथ-साथ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सुन्दर निर्वाह हुआ है जिसे हम 'ठण्डा लोहा' में डोले का गीत शीर्षक के अन्तर्गत देखते हैं। भारती ने आधुनिक वैज्ञानिक संस्कृति को आत्मघाती कहा है-

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0-30

"आत्महत्या होगी प्रतिध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में, धर्म में, कलाओं में
शासन-व्यवस्था में
आत्मघात होगा बस अन्तिम लक्ष्य मानव का ।"[1]

भारती मूलतः आस्थावादी चिंतक हैं इसीलिये अंधायुग में उन्होंने सांस्कृतिक विकृतियों की अभिशप्त भूमि पर नयी आस्था की प्रतिष्ठा की है तथा इसे पुनः प्रतिष्ठित करने का नया दायित्व ग्रहण किया है।

भारतीय अस्मिता एवं सांस्कृतिक संपन्नता के कवि भारती का कथन है कि भारतीय संस्कृति को महान बनाने का श्रेय मनुष्य को है क्योंकि मनुष्य विचारशील प्राणी है और संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञाता है। यह सांस्कृतिक ज्ञान उसे बचपन से ही मिलना प्रारम्भ होता है और वह उसे ग्रहण करता है। अतः भारती जी ने अपने साहित्य में मानव को हर जगह उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है, क्योंकि संस्कृति का जन्म मानव समाज में ही होता है समाज के बाहर कोई संस्कृति नहीं पनपती। संस्कृति का प्रधान कारण धर्म ही है सभी धर्मो में सामंजस्य और विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास होता है -

"जिन धर्म ग्रन्थों में प्रणीत नियमों या आचार-विधानों को अन्तरात्मा की आधार-भूमि मानता था, वे धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी।"[2]

भारतीय संस्कृति इन्हीं धर्मो के संरक्षकत्व में अपनी विकास यात्रा पर निरन्तर आगे बढ़ रही है इसका प्रधान कारण इसमें निहित जीवन मूल्य ही हैं। जीवन मूल्य धर्म का ही दूसरा रुप

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0-112
2. मानव मूल्य और साहित्य, - धर्मवीर भारती, पृ0-14

है, और वे एक दूसरे के पूरक हैं धर्म से ही जीवन मूल्यों का जन्म हुआ है और जीवन मूल्य ही धर्म को मानने के लिये प्रेरित करते हैं -

"मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिल्कुल मेरा ही वैयक्तिक था ।
उसमें नैतिकता का कोई बाह्य मापदंड था ही नहीं
कौरव जो मेरी मांसलता से उपजे थे
वे ही थे अन्तिम सत्य
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी,
मर्यादा थी ।"[1]

उपर्युक्त कथनों के निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक संस्कृति के कारण भावना के स्थान पर बुद्धि को महत्व दिया गया है। इसीलिये इसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृत्तियों से है। इसके विकास के साथ समाज और संस्कृति का विकास होता है। डॉ0 हरिवंश पाण्डेय ने भी कहा है -

"संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, स्वभाव और मनोवृत्तियों से है। इनके विकास के साथ-साथ सांस्कृतिक चेतना का भी विकास होता जाता है। इसी अर्थ में आज की संस्कृति आधुनिक संस्कृति कहलाती है। संस्कृति सामाजिक चेतना है और अपने कल्याणकारी रूप में ही आनन्ददायी है।"[2]

काल यास्पर्स भी कुछ इसी तरह का भाव व्यक्त करते हुए "पश्यन्ती" पुस्तक की भूमिका में कहते हैं -

"सांस्कृतिक स्वाधीनता तभी बनी रह सकती है जब विवेकयुक्त स्वतंत्र मानस से निर्णीत कार्य

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0-20
2. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0-112

सांस्कृतिक अभियानों को उचित दिशाएँ देते रहें। आन्तरिक स्वातन्त्र्य की अनिवार्य शर्त है दायित्व भावना, दायित्वपूर्ण सांस्कृतिक स्वातन्त्र्य आवश्यक है लेकिन कोई व्यक्ति या कोई सत्ता उसे दायित्वपूर्ण होने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।"[1]

मनुष्य ने अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना आवश्यक समझा है क्योंकि इस वैयक्तिक स्वतंत्रता के विकास से समाज और संस्कृति का विकास होता है। भौतिक साधनों से मनुष्य का बाह्य विकास तो हो सकता है आन्तरिक विकास नहीं, जिससे मनुष्य जाति का कल्याण सम्भव है भारती उसे ही प्रतिष्ठित करने को कहते हैं -

"धरती को फिर से सँवारो
क्यारी में बीज नये डालो
पसीने के, आँसू के
प्यार के, हमदर्दी के
मेंड़ें मत बाँधो
भूमि सबकी,
दर्द सबका है।"[2]

आज की परिस्थितियों में पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण के कारण ही आत्मविश्वास खोते जा रहे हैं। आज जरुरत है कि मनुष्य अपनी बुद्धि और विवेक का प्रयोग करें-

"जब बाहर से चारों तरफ व्यवस्था और मूल्यों में उथल-पुथल हो गयी है उस समय भी मन के अन्दर का कोई बहुत बड़ा विश्वास जागा है और साहित्य के रूप में, कला के रूप में दर्शन के रूप में मनुष्य ने फिर वह विन्दु खोजा जिस पर वह निर्भीक अपना पांव जमा सके।"[3]

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, भूमिका
2. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 45-46
3. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0-136

भारती जी ने एक अन्य स्थान पर मानवीयता को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार करते हुए कहा है-

"बड़ी से बड़ी संस्कृति भौतिक और वैज्ञानिक उन्नति मात्र पर आधारित होकर नहीं विकास कर सकी- वह विकास तभी कर सकी जब मानवीयता के प्रति उसका सही दृष्टिकोण विकसित हो सका।"[1]

भारती जी ने भारतीय संस्कृति में सर्वाधिक बल पारिवारिक जीवन पर दिया है क्योंकि परिवार ही समाज व राष्ट्र की इकाई है क्योंकि इससे ही मनुष्य का विकास सम्भव है। जब परिवार सुगठित होंगे तब राष्ट्र भी सुगठित हो जायेगा, किन्तु दुर्भाग्य है कि आजकल अपने देश भारत में ही नहीं, अपितु समस्त संसार के देशों में संयुक्त परिवार, प्रणाली का ह्रास हो रहा है। वैयक्तिकता अधिक जाग्रत हो रही है और प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से नहीं अपितु व्यक्तिगत रूप से अपने विकास की ओर अग्रगामी है। इससे सर्वत्र विघटन की भावना को बल मिल रहा है और समस्त संयुक्त परिवार व्यवस्था टूटती जा रही है। इसीलिए भारती जी ने जोर देकर कहा है-

"हमारी संस्कृति की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं जैसे वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय के बावजूद गाँव, मुहल्ला, पास-पड़ोस की मानवीय आत्मीयता, अपनापन, इनसानियत के स्तर पर बड़े छोटे का भेद-भाव न कर एक पारिवारिकता की मधुरता- उन्हें अगर हमने नष्ट हो जाने दिया तो फिर वह कमी कभी पूरी न हो सकेगी। धन की दरिद्रता तो कभी अमेरिका, कभी सोवियत रूस से धन या मशीन माँगकर दूर की जा सकती है, पर वह आदमीयत जो हमारी हजारों वर्ष की परम्परा की देन है, उसे हम फिर किसी दूसरे से उधार नहीं माँग सकेंगे।"[2]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि परम्परा, शाश्वतता एवं सार्वभौमिकता हमारी भारतीय संस्कृति का आधार है इसीलिए भारती जी ने लोक संस्कृति को अधिक महत्व दिया है जो आस्थावादी चिंतक है इसीलिये मूल्यों के विघटन की व्यापक चर्चा के बाद व्यक्ति स्वातंत्र्य, विवेक, नयी मर्यादा, नए मूल्यों आदि को पुनः प्रतिष्ठित करते हुए नये दायित्व का वहन करते

---

1. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0-106
2. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0-28

हैं। साथ ही परम्परा और युग सापेक्ष दृष्टि का समन्वय, भारतीयता के प्रति गौरव, भारतीय संस्कृति आदि के प्रति उनकी गहरी आस्था रही है।

7. दार्शनिक पृष्ठभूमि और भारती :

मानव जीवन के लिए दर्शन का बड़ा महत्व है। जीवन और जगत की समस्त व्याख्या दर्शन का विषय है, विशेषत: सृष्टि के रहस्य और परमात्मा, प्रकृति सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान दर्शन के अन्तर्गत आ जाता है। फिर जीवन मूल्य तो स्वयमेव दर्शन से प्रस्फुटित हुए हैं। भारती जी का दर्शन सामाजिक अधिक है दार्शनिक कम। वे भारतीय चिन्तन की मानववादी परम्परा के पूर्ण समर्थक रहे हैं उनकी दर्शनाभिव्यक्ति में ब्रह्म, जगत, माया, आत्मा-परमात्मा आदि शब्दों का प्रयोग नाममात्र ही हुआ है और शून्य की कल्पना जीवन रहस्य एवं दार्शनिकता का संकेत मात्र छोड़ जाती है। इसके बावजूद उनका 'शून्य' अपनी एक अलग ही चेतना का दर्शन प्रस्तुत करता है। उनकी कविता 'उसी ने रचा है' से उद्धृत है -

> "वह भी नहीं
> जिसके लिए पंख बाँध-बाँध सूर्य तक उड़ा मैं,
> गिरा-गिर गिर कर टूटा हूँ बार-बार
> नहीं- बल्कि वह जो अथाह नीले शून्य-सा फैला रहा
> मुझसे निरपेक्ष, जिन में असम्पृक्त, निर्विकार।"[1]

भारती जी शस्त्र और ईमान छीनने वालों से संघर्ष नहीं करना चाहते हैं यह लघु मानव का दुर्भाग्य ही रहा जो विवश और लाचार बनाने वाली शक्तियों के प्रति आक्रोश न व्यक्त कर पराजय को ही अपनी नियति और मजबूरी मान लेता है इसीलिए लघु मानव का व्यक्तित्व बौना हो गया है। भारती जी की कविता 'घाटी का बादल' इसी लघु या बौने बने रहने में दर्शन दिखाई देने लगता है-

---

1. सपना अभी भी, धर्मवीर भारती, पृ0-10

"हर मनुष्य बौना है
मैं बौनों में बौना ही बनकर रहता हूँ
हारो मत साहस मत छोड़ों
इससे भी अथाह शून्य में
बौनों ने ही तीन पगों में धरती नापी।"[1]

भारती जी ने लघु मानव के चित्रण को महत्व दिया है वे लघुमानव के प्रति आत्मीयता नहीं दिखलाते हैं क्योंकि लघुमानव प्रत्येक क्षण के यथार्थ को जागरुक चेता प्राणी के रूप में है आत्मनिष्ठता से उद्भूत होता है और निराशावादी स्थितियों में भी वह व्यक्ति मानव की विशिष्टता को ही प्रस्तुत करता है। भारती जी ने इसी लघु मानव को सामान्य जन की संज्ञा प्रदान की है जो युग-यथार्थ पर खड़ा हुआ संघर्ष करता है -

"मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत ।
क्या जाने कब
इस दुरुह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय।"[2]

भारती जी संवेदनशील कवि हैं। इसीलिये उनमें तत्कालीन संवेदनाओं का प्रभुत्व ज्यादा है, इसके बावजूद वे बौद्ध के करुणावाद और दुःखवाद से प्रभावित थे इस सम्बन्ध में डॉ0 सुभद्रा पैठणकर कहती हैं -

"मानव जाति के दुःख- सुख, राग-विराग की अनुभूतियों, जन्म-मरण, पाप-पुण्य आदि

---

1. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0-85
2. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0-54

धारणाओं ईश्वर नियति इत्यादि गहन सत्ताओं के प्रति संवेदना भी रहती है, उसकी यही व्यापक संवेदनशीलता उसे कालक्रम में जीवन और जगत के प्रति निजी दृष्टिकोण दे देती है। ये मान्यताएं दृष्टिकोण ही एक सुनिश्चित अनुबंध प्राप्त कर साहित्यकार के जीवन दर्शन की संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं, साहित्यकार का अनुभव क्षेत्र जितना ही व्यापक होगा, उसकी अनुभूति क्षमता जितनी ही तीव्र एवं परिष्कृत होगी, जीवन के विविध सम्बन्धों एवं धारणाओं का उसके द्वारा आकलन उतना ही प्रामाणिक होगा अर्थात् उसका जीवन-दर्शन उतना ही प्रौढ़ एवं स्थायी होगा।"[1]

भारती दुःखवाद से प्रभावित होकर 'सात गीत वर्ष' में प्रमथ्यु मनुष्य मात्र के दुःख को दूर करने के लिए स्वर्ग से अग्नि चुराकर लाता है तथा अनन्त पीड़ा को भोगने के लिए सहर्ष स्वीकार कर लेता है। 'प्रमथ्यु गाथा' शीर्षक की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

"मेरे कन्धों पर बैठ
नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदयपिण्ड
फिर भी मेरा मस्तक नत है .....
इसलिये नहीं कि हूँ पराजित मैं
इसलिये कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ
उनमें नहीं है साहस या संवेदना
जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का।"[2]

भारती जी ने 'कनुप्रिया' में राधा के परम्परागत चरित्र को दार्शनिक भूमिका प्रदान की है। इसमें जीव की दो गतियाँ हैं एक धारा एक राधा। जब जीव वासनात्मक धारा में फँस जाता है। तब अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा से कट जाता है। तत्व ज्ञान के द्वारा मन व इन्द्रियों को विपरीत दिशा में मोड़ने लगता है। इसमें चिन्तन के स्तर पर क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारती का अधिकांश साहित्य उनके विशेष चिन्तन से अनुप्राणित है जिसका अपना दार्शनिक महत्व भी कम नहीं है।

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य : युगीन सन्दर्भ, डॉ0 सुभद्रा पैठणकर, पृ0-249
2. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 7-8

अध्याय तीन

अध्याय - तीन

धर्मवीर भारती का काव्य साहित्य : मूल्य दृष्टि

1. भारती के काव्य का विकास
2. दूसरा सप्तक और कवि भारती
3. भारती के गीति-काव्य में जीवन मूल्य
4. ठंडा लोहा : प्रणयानुभूति और मूल्य दृष्टि
5. सात गीत वर्ष : मानव आस्था और मूल्य बोध
6. अंधा युग : वैयक्तिक मूल्य और सामाजिक मूल्यों का टकराव
7. कनुप्रिया : अस्तित्ववादी चिन्तन और संवेदनात्मक मूल्य

1. भारती के काव्य का विकास :

डॉ0 धर्मवीर भारती आधुनिक साहित्य के प्रतिभा सम्पन्न कवि, विचारक, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, पत्रकार आदि के रूप में विख्यात हैं। यद्यपि इनकी लेखनी अनेक विधाओं पर चली है। परन्तु वे मूलतः रोमैंटिक कवि है। नये कवियों में भारती जी ही ऐसे कवि हैं जिनकी कृतियों में एक साथ परम्परा एवं युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक् निर्वाह हुआ है। "मानव मूल्य और साहित्य' में लेखक ने युग-बोध के आधुनिक सन्दर्भों की विस्तृत चर्चा की है। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास भारती के रचनाकाल की प्रथम उपलब्धि है। भारती की काव्ययात्रा का शुभारम्भ प्रमुखतः (1951) 'दूसरा सप्तक' से ही हुआ है। इस समय छायावाद का बोलबाला था। इसलिये कवि का भावुक मन उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका यही कारण है कि प्रारम्भ की उनकी कविताओं में प्रणयानुभूति एवं रोमानी स्वभाव का वर्णन हुआ है।

भारती की कवितायें (1951) 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित की गयी है इसमें "वक्तव्य' के अलावा बारह कवितायें संकलित हैं जो इस प्रकार हैं :-

थके हुए कलाकार से, कवि और कल्पना, गुनाह का गीत, गुनाह का दूसरा गीत, तुम्हारे पाँव मेरी गोद में, उदास तुम, सुभाष की मृत्यु पर, एक फैंटेसी, बरसाती झौंका, यह दर्द, चुम्बन, जाड़े की शाम, कविता की मौत। इनमें से कुछ कवितायें 'ठण्डा लोहा' में प्रकाशित हैं। इसका प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था। 'ठण्डा लोहा' में छः वर्षो की रचनाओं से चुनी हुई कवितायें संकलित हैं। इनमें 39 कवितायें हैं जिनमें अधिकांश गीत जो निम्न प्रकार हैं- ठंडा लोहा, तुम्हारे चरण, प्रार्थना की कड़ी, उदास-तुम, उदास मैं, डोले का गीत, फागुन की शाम, बादलों की पांत, बेला महका, फीरोजी होंठ, बसन्ती दिन, गुनाह का गीत, कच्ची सांसों का इसरार, मुग्धा, तुम, जागरण, पावस-गीत, कोहरे भरी सुबह, मुक्तक बोवाई का गीत, एक पत्र, दूसरा पत्र, कविता की मौत, सुभाष की मृत्यु पर, निराला के प्रति, थके हुए कलाकार से, कवि और अनजान पगध्वनियां, यक्ष का निवेदन, फूलों की मौत, घबराहट की शाम, दो आवाजें, यह आत्मा की खूंखार की प्यास, प्रतिध्वनि, प्रथम प्रणय, बातचीत का एक टुकड़ा, झील के किनारे,

मेरी परछांही, फूल मोमबत्तियां सपने, निवेदन । इनमें कवि रूमानियत के साथ तीव्र प्रणयानुभूति, दर्द, उदासी, निराशा, कुण्ठा आदि को देखा जा सकता है। इसमें भारती ने परम्पराओं तथा मान्यताओं का निर्वाह करते हुए सम्यक दृष्टि का परिचय दिया है। 'ठण्डा लोहा' के बाद 'सात गीत वर्ष' प्रकाश में आया, इसमें 1952 से 1958 तक की कुल 51 कवितायें संकलित हैं। जो इस प्रकार हैं -

प्रमुथ्यु गाथा, नया-रस, नवम्बर की दोपहर, फागुन के दिन की एक अनुभूति, उत्तर नहीं है, जिज्ञासा, संक्रान्ति, पराजित पीढ़ी का गीत, कौन चरण?, इनका अर्थ, गैरिक वाणी, केवल तन का रिश्ता, मेघ दुपहरी, प्लेट फार्म, इतने दिन बाद, कस्बे की शाम, धूल भरी आँधी का गीत, आँगन, अवशिष्ट, उपलब्धि, स्वयं को दुहरायेगा, साबुन आइने, रात अंधियारी : हवा तेज, आस्था, निर्माण-योजना, गुलाम बनाने वाले, एक वाक्य, बाणभट्ट, बृहन्नला, टूटा पहिया, एक अवतार में, दानः प्रभु के नाम, अर्द्धस्वप्न का नृत्य, बातें सांझ के बादल, यह ढलता दिन, धुंधली नदी में, शामः दो मनःस्थितियाँ, अंधेरे का फूल, यादों का दिन, आँगन बेली, ढीठ चाँदनी, दिन ढले की बारिश, शामः एक थकी लड़की, अन्तहीन यात्री, एक छवि, चैत का एक दिन, फूल, सागर, सीपी, दूसरे दिन सुबह, अंजुरी भर धूप, घाटी का बादल । सन् 1954 में गीत नाट्य 'अंधायुग' प्रकाशित हुआ अगला पड़ाव 'कनुप्रिया' है। यह सन् 1959 ई0 में प्रकाश में आया। इसके अतिरिक्त समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनायें प्रकाशित करते रहे। हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्रिका 'कल्पना' में इनकी कविताएं 'मुनादी' (अगस्त 1951), 'वह जो' (नवम्बर 1959) तथा दो कविताएं (कल्पना सितम्बर 1953) प्रकाशित है। धर्मयुग पत्रिका के दीपावली विशेषांक अक्टूबर 1979 में इनकी प्रकाशित कविता 'कदम पोखर' भारती के कवि रूप की निरन्तरता की द्योतक है। इस प्रकार भारती के काव्य का विकास मूल्यों की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

2. दूसरा सप्तक और कवि भारती

भारती ने जब काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय छायावाद अपने चरम पर

था तो स्वाभाविक है कि वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। यही कारण है कि 'दूसरा सप्तक' में संग्रहीत अधिकांश कविताओं में उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत ही मिलते हैं। कहीं-कहीं प्रेम की मादक सूक्ष्मता के साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना और निश्छल मन की यथार्थवादी अनुभूति भी विद्यमान है इनका रोमानी भाव बोध जीवन के संघर्षो से प्रस्फुटित होकर आज की चेतना को ग्रहण करने में समर्थ हुआ है।

भारती जी ने 'दूसरा सप्तक' में कहा है -

"वह जीवन और अनुभूति की आन्तरिक लय से मेल खाता हो। लेकिन ऊपर से कुछ भी थोपना-लादना भारती प्रतिभा की पराजय मानता है....... नये आन्दोलन और नयी विचारधारा में मानवता की मुक्ति का क्षीण से क्षीण आलोक-कण है, सच्चे, स्वस्थ और ईमानदार कलाकार की आत्मा उसे ग्रहण किये बिना चैन ही नहीं पाती ऐसा उसका दृढ़ विश्वास है।"[1]

भारती के मन में रोमानी भावबोध और नयी कविता की बौद्धिकता का अन्तर्द्वन्द्व निरन्तर बना रहता है। डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी ने स्वीकार किया है कि-

- "भारती की अधिकांश कविताओं में भावुकता का आग्रह तथा समस्या के प्रति इन्टलैक्चुअल एप्रोच दोनों ही एक साथ दिखाई देते हैं। इस प्रकार की कवितायें उनकी मौलिक काव्य प्रवृत्ति की वास्तविक प्रतिनिधि है।"[2] भारती के मन में इस अर्न्तद्वन्द्व को उनकी कविता 'जाड़े की शाम' में देखा जा सकता है। इसमें अर्न्तद्वन्द्व की स्थिति का मर्म घोषित किया है। विरह का दर्द उनके व्यक्तित्व की सही पहचान है। इसी कारण उन्हें वियोग के क्षणों में अत्यधिक उदासी और बेचैनी महसूस होती है -

"लेकिन फिर भी मजबूरी है
तुम दूर कहीं, खाली-खाली भारी मन से,
घुप-घुप करती-सी ढिबरी के नीचे बैठी
कुछ घर का काम-काज धन्धा करती होगी,

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पा. अज्ञेय, पृ0 167
2. हिन्दी नवलेखन, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 58

यह शाम मुझे इस तरह निगलती जाती है,

कोहरे की पाँखो फैलाती, नर-भक्षिणि

यम की चिड़िया - सी

यह जाड़े की मनहूस शाम मँडराती है।"[1]

इसी कारण आज के साहित्यकार का दायित्व बड़ा ही चुनौती पूर्ण एवं संघर्षमय है। भारती जी ने भी 'कवि और कल्पना' कविता में कल्पना का मानवीयकरण कर उसे उदासिनी कहकर उसे दायित्व का बोध कराते हुए कहते हैं -

"लौट बन्धन तोड़कर

बेड़ियाँ झँझोड़ कर

नवीन राष्ट्र को नवीन कल्पना सँवारता

स्वतंत्र क्रान्ति ज्वाल में निडर बनों सुकेशिनी

विनाश की सजीव नग्नता ढँको सुतेशिनी

विनाश से डरो नहीं

विकास से डरो नहीं ।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने आस्था, विश्वास, राष्ट्रीयता, क्रान्ति, विकास तथा दायित्व बोध का निर्वाह बखूबी किया है। 'सुभाष की मृत्यु पर' भारती जी की एक मात्र ऐसी कविता है जो राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। इसमें देश-प्रेम पर मर मिटने वाले देश-प्रेमी की मृत्यु पर देवताओं को भी गर्व होता है और वह उनका अभिषेक भी करता है -

"और देवताओं ने लेकर ध्रुव तारों की टेक-

छिड़के होंगे तुम पर तरुनाई के खूनी फूल

खुद ईश्वर ने चीर अँगूठा अपनी सत्ता भूल

उठकर स्वयं किया होगा विद्रोही का अभिषेक।"[3]

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 185
2. दूसरा सप्तक, सम्पाद0 अज्ञेय, पृ0 171
3. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 179

उपर्युक्त कविता में राष्ट्रीय नेता के व्यक्तित्व की ऊंचाई को पूजा और सराहा गया है। वस्तुतः भारती के विद्रोही स्वर में भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना निहित है इसीलिये युगीन यथार्थ में भी अनास्थाओं से लोहा लेने में समर्थ है। इसीलिए भारतीय ने 'कविता की मौत' शीर्षक में कहा है -

"क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज बाकी है
हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा
आदमियत का अभी आगाज़ बाकी है
लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ
नया इतिहास देती हूँ।"[1]

भूख, लाचारी, गरीबी तथा ध्वंस के बीच से गुजरकर नवीन मानवता का नूतन संदेश दिया है-

"प्रलय से निराशा तुझे हो गयी
इसी ध्वंस में मूर्च्छिता हो कहीं
पड़ी हो, नयी जिन्दगी, क्या पता ?
सृजन की थकन भूल जा देवता ।"[2]

इस कविता में भारती मानसिक संघर्ष के बीच से निकलकर अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिये मनुष्य को आस्था बनाये रखने के लिये कहा है -

"वह जीवन और अनुभूति की आन्तरिक लय से मेल खाता हो। लेकिन ऊपर से कुछ भी थोपना लादना भारती प्रतिभा की पराजय मानता है..........

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 188
2. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 169

नये आन्दोलन और नयी विचारधारा में मानवता की मुक्ति का क्षीण से क्षीण आलोक-कण है, सच्चे, स्वस्थ और ईमानदार कलाकार की आत्मा उसे ग्रहण किये बिना चैन ही नहीं पाती ऐसा उसका दृढ़ विश्वास है।"[1]

भारती के कवि मन पर रोमांटिक कल्पना और चिंतन दोनों का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। इनकी आरम्भिक रचनाओं का मुख्य विषय प्रिय का रूप और यौवन रहा है चाहे वह मानव रूप रहा हो या प्रकृति रूप ।

'गुनाह का गीत' और गुनाह का दूसरा गीत, में कवि "कायिक प्रेम' को ही आवश्यक मानता है। उनके विचार में यह पाप नहीं बल्कि प्रेम है क्योंकि यह जीवन के लिये अनिवार्य है इसके बिना जीवन निरर्थक हो जायेगा। इसीलिये भारती ने कायिक प्रेम का वर्णन "गुनाह का गीत' शीर्षक में निःसंकोच करते हैं -

"मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद ।"[2]

भारती ने प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण सहज रूप में किया है। इनको अगर प्रेमिका के चरण प्यारे लगते हैं तो उन पर अनगिनत उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं। कहीं वे शरद के चाँद से उजले धुले लगते हैं। कभी सोन जुही की पांखुरियों पर पले दो पैरों को धारण करता है। कहीं रश्मि पंखों के रुप में वरदान मानता है। कहीं पर वह प्रेमिका के पैरों की आराधना भी करते हैं-

"ये बड़े सुकुमार
इनसे प्यार क्या?
ये महज आराधना के वास्ते
जिस तरह भटकी सुबह को रास्ते

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 167
2. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 172

हरदम बताये शुक्र के नभ फूलने
ये चरण मुझको न दें
अपनी दिशाएं भूलने।"[1]

'उदास तुम' कविता में प्रिया के उदास हो जाने पर उसके रूप सौन्दर्य मेंऔर भी निखार आने लगता है और उसके रुप सौन्दर्य पर चार चाँद लग जाते हैं तथा कवि अपनी प्रेमिका पर मुग्ध होकर कहता है -

"तुम कितनी सुन्दर लगती हो,
जब तुम हो जाती हो उदास !
ज्यों किसी गुलाबी दुनियां में,
सूने खँडहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो।"[2]

'एक फैण्टेसी' कविता में कवि आकाश पर धुआँ देखता है वहाँ पर चाँद और तारों को अकुलाहट हो रही थी। आघात की गहराई को वह महसूस करता है इसीलिये उसे बादलों के सीने से खून के उबलने का आभास होता है। कवि फैंटेसी के माध्यम से असम्भव स्थिति का बोध कराता है-

"सांझ के झुटपुटे में,
जबकि दूर आस्माँ पर एक धुआँ-सा छा रहा था,
तारे अकुला रहे थे, चाँद थर्रा रहा था।
चोट इतनी गहरी थी,
कि बादलों के सीने से खून उबला आ रहा था।"[3]

---

1. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 177
2. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 178
3. दूसरा सप्तक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 180

'बरसाती झोंका' कविता में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया गया है। अषाढ़ की पहली घटा ने हृदय में व्याप्त वासना को और भी प्रज्ज्वलित कर दिया है। 'यह दर्द' कविता में कवि ने सहनशीलता का परिचय दिया है। 'यह दर्द' कविता में कवि ने सहनशीलता का परिचय दिया है। 'चुम्बन' में बांसुरी तथा आरती का संदर्भ स्थिति को बदलता है।

3. भारती के गीति-काव्य में जीवन मूल्य :

भारती का गीति काव्य जीवन मूल्यों पर आधारित है। इनका अधिकांश गीत साहित्य शाश्वत एवं समकालीन जीवन मूल्य बोध पर आधारित है। इनके गीतों में जो मूल्य चेतना प्राप्त होती है, उसमें विशेषतः प्रणय सम्बन्धी मूल्य दृष्टि, सामाजिक चेतना सम्बन्धी मूल्य दृष्टि, भारतीय संस्कृति सम्बन्धी मूल्य दृष्टि, परोपकार और आदर्श आदि से सम्बन्धित मूल्य दृष्टि प्राप्त होती है।

भारती के गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने गीतों में जहाँ परम्परागत जीवन मूल्यों का प्रशास्तिगान किया है वहीं दूसरी ओर समकालीन परिदृश्य में मूल्यों की जड़ता का विरोध किया है तथा युगानुरुप मूल्यों की सापेक्षता पर वे सचेत रहे हैं, भारती के प्रणयगीत जीवन की आशा-निराशा के गीत हैं इनको 'डोले का गीत' फीरोजी होंठ और गुनाह का गीत में देखा जा सकता है -

"अगर मैंने किसी के होंठ के पाटल कभी चूमे
अगर मैने किसी के नैन के बादल कभी चूमे
महज़ इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो?
न हो यह वासना तो जिन्दगी की माप कैसे हो?
किसी के रुप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो? (आदि)[1]

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 22

कवि गुनाहों को स्वीकार करता है तथा वैयक्तिक चेतना का सम्यक निरुपण करता हुआ कहता है कि -

"गुनाहों से कभी मैली पड़ी बेदाग तरुनाई -
सितारों की जलन से बादलों पर आंच कब आयी ?
न चन्दा को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई
बड़ा मासूम होता है गुनाहों का समर्पन भी
हमेशा आदमी
मजबूर होकर लौट आता है
जहाँ हर मुक्ति के, हर त्याग के, हर साधना के बाद
मेरी जिन्दगी बरबाद"।[1]

ठंडा लोहा की 'तुम्हारे चरण' प्रार्थना की कड़ी, उदास तुम, फागुन की शाम, बादलों की पांत, बेला महका, डोले का गीत आदि में रोमानी भाव बोध अधिक दिखाई देता है। 'डोले का गीत' में कर्तव्य को प्रेम से प्रधान बताकर प्रिया को समझाते हैं-

"है कसम तुमको, तुम्हारे कोंपलों से नैन में आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले । सुनसान पाकर ।
प्रीत ही सब-कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
बोलना रुंधते गले से । ले चलो! जल्दी चलो! पी के नगर ।"[2]

भारती ने कामवासना को सामाजिक मर्यादा के अन्तर्गत रखा है वे कभी भी अपनी मूल चेतना तथा संस्कृति को नहीं भूले हैं 'बोवाई का गीत' लोकगीत की श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि इसमें लोक व्यवहार के सूत्र को पंक्तिबद्ध किया गया है -

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 19
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 11

"हम बोयेंगी हरी चुनरियां, कजरी, मेंहदी-
राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज
बदरा पानी दे ।"[1]

भारती के गीतों की रचना भूमि बिल्कुल नये ढंग की है। अत्यधिक गेयता और संगीत प्रचुरता के स्थान पर पाठ्यतत्व से समन्वित है। इनके गीतों की यह विशेषता है कि उनमें परम्परागत उपमानों के साथ नये भी हैं। ये स्वरों, ध्वनियों तथा शिल्पगत विशेषताओं से पूर्ण हैं। 'घाटी का बादल' कवि मानस की श्रृंगारिक भावनाओं का मांसलतापूर्ण वर्णन है-

"प्रात धूप की जरतारी ओढ़नी लपेटे
अभी-अभी जागी, खुमार से भरी
नितांत कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघधूम के
औचक आलिंगन में पिसकर,
रतिश्रान्ता-सी मलिन हो गयी।"[2]

किशोरावस्था की प्रीति, रूपासक्ति, और आकुल निराशा आदि का यथार्थ चित्रण कवि ने किया है। 'प्रमथ्यु गाथा' में अनुभूति की तीव्रता है इसमें व्यापक सच्चाई की ज्योति और बलिदान की भावना है -

"साहस था मेरा
किन्तु धुपितर के महलों की गुप्त राह
इसने बतायी मुझे-
गुरुजन हैं।
सच है यह
मेरे कन्धों पर बैठ
नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदय पिण्ड

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 34
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 8।

फिर भी मेरा मस्तक नत है
होंठों को भींचे निश्शब्द सह रहा हूँ मैं
क्योंकि यह बूढ़ा गृद्ध गुणी है, ज्ञाता है।"[1]

इसमें परोपकार एवं आदर्श की भावना कूट-कूट कर भरी है। वर्ग वैषम्य की चेतना भारती में नहीं है। इसीलिये व्यक्ति स्वातन्त्र्य को महत्व अधिक दिया है-

"अपनी वैयक्तिकता हार
क्या पायेंगे
प्रभु,
हम क्या पायेंगे?
लेकिन इन दोनों के बीच
मेरे तीखे पर एकाकी स्वर
केवल सच्चाई का आश्रय लेकर
गूँजेंगे, या रव में खो जायेंगे
या ये स्वर पहुँचेंगे जन-जन के द्वार।।"[2]

इसीलिये भारती को किसी पर विश्वास नहीं है वे केवल अपने आप में विश्वास करते हैं-

"आश्रय देंगे हमको अपने
जर्जर पर अपराजेय चरण
आखिर होंगे वे यही चरण
जिसमें इस लक्ष्य भ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण।"[3]

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 7
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 18
3. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 24

भारती सच्चे अर्थो में गीतकार हैं इसीलिये उन्होंने अपनी निजी ऊब, अकुलाहट, दर्द भावना आदि कमजोरियों को बेझिझक स्वीकार करते हैं -

"हम सबके दामन पर दाग
हम सबकी आत्मा में झूठ
हम सबके माथे पर शर्म
हम सबके हाथों में टूटी तलवारों की मूठ ।"[1]

भारती के गीतों में विशेषता है कि वह लोक संस्कृति के प्रति सदैव उदार दिखाई देते हैं -

"भोर फूटे, भाभियाँ, जब गोद भर आशीष दे दें
ले बिदा अमराइयों से
चल पड़े डोला हुमचकर
है कसम तुमको, तुम्हारे कोपलों से नैन में आँसू न आयें
राह में पाकड़ तले
सुनसान पाकर ।"[2]

इस प्रकार सांस्कृतिक मूल्य हमारे जीवन को परिष्कृत, उदार और संघर्षशील बनाते हैं।

4. ठण्डा लोहा : प्रण्यानुभूति और मूल्य दृष्टि :

नयी कविता जिस आधुनिक बोध को काव्य के धरातल पर उतार रही है। उसमें पुराने प्रसंगों को नये भाव-बोध के अनुरुप प्रकाशित किया गया है। उसके समर्थ कवियों में भारती का नाम भी सादर लिया जाता है। ठंडा लोहा की अधिकतर रचनाओं में उद्दाम यौवन

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 20
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 ।।

के प्रणयगीत ही है जिनमें कवि प्रेमिका के अनेक रुपों को निहारता है। **डॉ0 रघुवंश** ने भी कहा है -

"जहाँ तक भारती की आरम्भिक रचनाओं का सवाल है, वे मूलतः रोमानी भावबोध की हैं। भारती की नयी कविता के आधुनिक परिवेश में रोमैंटिक मूड के सर्वाधिक निकट माना जा सकता है जिसमें रुप सौन्दर्य की तीखी आसक्ति है।"[1]

इस प्रकार हम निःसन्देह कह सकते हैं कि भारती का मुख्य स्वर प्रणयानुभूति और मूल्य दृष्टि का रहा है।

कवि ने 'ठंडा लोहा' की भूमिका में लिखा है -

"किशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा से एक पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज मेरी इस छंदयात्रा के यही प्रमुख मोड़ रहे हैं।"[2]

भारती ने इस बात को स्वीकार किया है कि उन पर किशोर कल्पना का काफी प्रभाव पड़ा था क्योंकि उस समय छायावाद का युग था इसलिये वह उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके इसीलिये-

"भारती के कवि मन पर इस किशोर-कल्पना का काफी प्रभाव पड़ा अचेतन रुप से। जब उसकी चेतना ने पंख पसारे, तब छायावाद का बोलबाला था। उसे लगा कि कविता की शहजादी इन अपार्थिव कल्पनाओं, टेढ़े-मेढ़े शब्दजालों, अस्पष्ट रुप को और उलझे हुए जीवन-दर्शन की शिलाओं से बँधी उदास जल परी की तरह कैद है और भारती को चाहिए कि वह उसे उन्मुक्त कर सर्वथा मानवीय धरातल पर उतार लावें ताकि वह फैली-फैली चाँदी की

---

1. भारती का काव्य- डॉ0 रघुवंश, पृ0 5
2. ठंडा लोहा, भूमिका

बालू पर आदम की संतानों के साथ बेहिचक आँख मिचौनी खेल सके, उनके सीधे-सादे सुख-दुःख, वासनाओं-कामनाओं को समझ सके, उन्हीं की बोली में बोल सके। इसलिये भारती ने सबसे पहले लिखो सरलतम भाषा में रंग बिरंगी चित्रात्मकता से समन्वित साहसपूर्ण उन्मुक्त रुपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत ही लिखो जो न तो मन की प्यास को झुठलाएँ और न उसके प्रति कोई कुंठा प्रकट करें।"[1]

'गुनाहों का देवता' की सुधा निरन्तर प्रणय-व्यथा के भार को सहन नहीं कर पायी थी इसीलिये वह मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। कवि उसकी पीड़ा से अभिभूत होकर 'ठंडा लोहा' तक उसे भूल नहीं पाया है। परिणामतः 'डोले का गीत' उदास तुम, फागुन की शाम, बादलों की पांत, उदास मैं, आदि कविताओं में अपने मन की पीड़ा को व्यक्त करता है।

भारती के प्रणयारम्भ की आलम्बन मुग्धा किशोरी है। किशोरी का प्रणय अपने सहचर से अचानक एक घटना के माध्यम से होता है -

"इस सीढ़ी पर यहीं जहाँ पर लगी हुई है काई,
फिसल पड़ी थी मैं, फिर बाहों में कितना शरमाई।"[2]

भारती की प्रणयानुभूति में संयोग वर्णन की रुमानियत है। किशोर युवक किशोरी को प्यार न करने की सलाह देता है और स्वयं उसी से प्यार करने लगता है। पहले तो वह प्रेम में वासना को नहीं आने देता और उस किशोरी के रुप की पूजा करता प्रतीत होता है-

"पूजा - सा तुम्हारा रुप
जी सकूंगा सौ जनम अंधियारों में, यदि मुझे मिलती रहे
काले तमस की छांह में
ज्योति की यह एक अति पावन घड़ी ।"[3]

---

1. दूसरा सम्पादक, सम्पा0 अज्ञेय, पृ0 165
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 12
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 5

वासनाहीन पवित्र प्रेम व्यक्ति में मानसिक कुंठा उत्पन्न कर देता है जिससे वह अपने कर्तव्यों का सही ढंग से निर्वाह नहीं कर पाता है पवित्र आध्यात्मिक प्रेम मनुष्य के लिये हानिकर होता है। इसीलिये भारती जी शारीरिक प्रेम में विश्वास करते हैं तभी तो वासना को अनिवार्य बताते हैं -

"न हो यह वासना तो जिंदगी की माप कैसे हो ?
किसी के रुप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?"[1]

उपर्युक्त कविता के आधार पर कह सकते हैं कि वासना जीवन के लिए अनिवार्य है क्योंकि वासना के बिना जिन्दगी निरर्थक है। भारती जी के विचार में वासना पाप नहीं है, प्रेम है और वह अपने जीवन साथी से सम्बन्धित और मर्यादित होकर अमृत हो जाती है -

"मुझे तो वासना का
विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो, तुम्हारे रूप में आबाद।"[2]

भारती के मन में वासना और पूजा के प्रति अन्तर्द्वन्द्व चल रहा है कि क्या सच है? वह प्रेम मार्ग में इन दोनों के सम्मिलित रूप को लेकर संतुलन रखते हुए यह कहता है -

"प्रार्थना की एक अनदेखी कड़ी
बाँध देती है
तुम्हारा मन हमारा मन
फिर किसी अनजान आशीर्वाद में
डूबकर
मिलती मुझे राहत बड़ी ।

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 22
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 18

प्रातः सद्य स्नात्

कन्धों पर बिखरे केश

आँसुओं में ज्यों

धुला वैराग्य का संदेश

चूमती रह-रह

बदन को अर्चना की धूप।"[1]

भारतीय प्रेमी-प्रेमिका का विवाह बंधन होने से पहले ही प्रेमिका की सगाई अन्यत्र हो जाती है और उनका सारा जीवन नष्ट हो जाता है, इस प्रकार प्रेमी अपनी प्रेमिका के रुप सौन्दर्य का रसपान भी नहीं कर पाया था कि भारतीय परम्परा के अनुसार उसका डोला कोई और ले जाता है। इस विपरीत स्थिति में प्रेमी अपनी प्रेमिका के आँसू रोकने के लिये तसल्ली देता है। साथ में कुछ व्यावहारिक सलाहें भी देता है -

"अगर डोला कभी इस राह में गुजरे कुबेला

यहां अम्बवा तरे रुक

एक पल विश्राम कर लेना

मिलो जब गाँव भर से, बात कहना, बात सुनना

भूल कर मेरा

न हरगिज नाम लेना

अगर कोई सखी जिक्र मेरा छेड़ बैठे

हँसी में बात टाल देना

आँसू थाम लेना।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रेमी प्रेमिका को उपदेश देता प्रतीत होता है इसमें छिपा मर्मभाव

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 5
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 10

वेदनापूर्ण है। वियोग के क्षणों में जब प्रेमी को एक पत्र मिलता है तो उसे ऐसा लगता है जैसे नवजीवन दान मिल गया हो वह कह उठता है -

> 'तुम्हारी पाती मिली अबोध, तुम्हारी पाती मिली अजान,
> तुम्हारी पाती मिली अजान, कि जैसे मृदु नवजीवन दान ।
> कि जैसे पानी की दो बूँद, धधकता भीषण रेगिस्तान,
> कि जैसे घिरी घटा के बीच, चपल बिजली की मृदु मुस्कान।"[1]

वियोग के क्षणों में प्रेमी को जब प्रेमिका का पत्र मिलता है तो उसे कुछ सान्त्वना मिलती है जैसे धधकते रेगिस्तान में पानी की दो बूँद पड़ गयी हो कवि ने अपने से बाहर जीवन के विराट सत्य को पहचानने का प्रयास किया है -

> "इन दोनों से ज्यादा विराट
> कोई तीसरा सत्य है
> जिसको आत्मसात् कर पाने को/मेरी आत्मा
> धीरे-धीरे/जीवन की यज्ञ शिखाओं में पकती जाती।"[2]

भारती ने प्रेम के स्थान पर सामाजिक मर्यादा का महत्व प्रतिष्ठित किया है। प्रेमी अपनी प्रेमिका की व्यथा को सहन कर उसके सुख की कामना करता हुआ प्रेमिका से कहता है कि प्रेम ही सब कुछ नहीं है लोक की मर्यादा सबसे बड़ी है। इस भावना को डोले का गीत शीर्षक में व्यक्त किया गया है-

> "है कसम तुमको, तुम्हारे कोंपलों-से नैन में आँसू न आयें
> राह में पाकड़ तले
> सुनसान पाकर

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 35
2. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 89

प्रीत ही सब कुछ नहीं है, लोक की मरजाद है सबसे बड़ी
बोलना रुँधते गले से
ले चलो । जल्दी चलो । पी के नगर ।"[1]

उपर्युक्त कविताओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारती मूलत: रोमैंटिक कवि हैं इसीलिये इनकी कविताओं में प्रणयानुभूति सम्बन्धी, रूपवर्णन प्रधान, विरह एवं निराशा से भरी हुई नारी और पुरुष के प्रेम की स्वाभाविक भावना का चित्रण हुआ है। भारतीय चिंतन की मानववादी परम्परा इनके चिंतन का मूल आधार थी इसलिए इन्होंने सामाजिक मर्यादा की महत्ता को स्वीकार किया है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में परम्परा के प्रति आसक्ति एवं विरक्ति दोनों स्थितियों का चित्रण हुआ है इसीलिए इनकी वैयक्तिक चेतना में रुमानियत के साथ ही संस्कारगत निखार एवं दायित्व की भावना को सर्वोपरि माना है।

डॉ ब्रजमोहन शर्मा ने कहा है - "एक जीवन भोक्ता की जिजीविषा है, एक भावाकुल मन का निर्द्वन्द्व प्रणय है, एक सौन्दर्य खोजी की रूपतृषा है और मिलन-विरह समर्पण नैराश्य जैसी विविध भावभूमियों का संक्रमण करते हुए व्यक्ति की जीवन सत्य को उपलब्ध करने की ललक है।"[2]

भारती ने अपनी कविताओं में वासना और प्रणय में जीवन के अर्थ खोजे हैं। अत: इन्हें मानवीय धरातल पर उतारने का प्रयास भी किया है। प्रणय और प्रेम की एक अनुभूति के सामने सोने का स्वर्ग भी व्यर्थ प्रतीत होता है -

"अगर सच पूछो मेरी प्राण ।
व्यर्थ है, स्वर्ग नरक अनुमान
तुम्हारी मुसकाहट में स्वर्ग
तुम्हारे आँसू में भगवान ।"[3]

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 11
2. डॉ0 ब्रजमोहन शर्मा, धर्मवीर भारती : कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ, पृ0 136
3. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 28

इस स्वर्ग प्राप्ति के बाद प्रेमियों को संसार की यथार्थता का ज्ञान होता है तब उसे यहाँ व्याप्त रूढ़ियों और नैतिकता का शिकार होना पड़ता है इसीलिये प्रेमिका अपने प्रेमी को संसार की वास्तविकता से परिचय कराती है -

"तुमको मैं अपनी
मजबूरी, लाचारी की
अपने कमजोर, पराजित विश्वासों की
कसम दिलाती हूँ
मेरी बस इतनी-सी बिनती स्वीकार करो,
इन मुरदा सपनों को
सीने से चिपकाकर रखने-भर से ही क्या होगा।"[1]

भारती ने विरह-भावना को यथार्थ धरातल पर महसूस किया है। इस विरह की अन्तिम परिणति अपने प्रेम पात्र के प्रति कल्याणमयी भावना में है। इसीलिये वह अपनी पुरानी प्रीति को भूल जाने के लिये आग्रह करती है।

भारती के काव्य की दूसरी प्रवृत्ति जनवादी है इनकी कविताओं को कर्तव्यनिष्ठता के दायरे को लाँघकर समष्टि की ओर उन्मुख हुए हैं और जनकल्याण की ध्वनि इनमें प्रधान हो गयी है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रथमतः भारती की कवितायें प्रणयानुभूति सम्बन्धी, रूपवर्णन प्रधान, विरह एवं निराशा से भरी हुई हैं बाद में निषेधात्मक मूल्यों अविश्वास, अनास्था और निराशा के बीच आस्था और आशा के मूल्यों की खोज करती है।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारती की कविता की मूलभूत विशेषता यह है कि वह रोमानी भाव बोध और समस्याओं के प्रति बौद्धिक दृष्टि का समन्वय कर मानव मूल्यों की स्थापना की है।

---

1. ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, पृ0 4।

5. सात गीत-वर्ष : मानव आस्था और मूल्य बोध :

भारती के प्रस्तुत काव्य संग्रह में मानव आस्था और मूल्य बोध का स्वर प्रबल रहा है। कवि एक सामाजिक प्राणी होता है। वह अपने निजी अनुभवों तथा परिवेश को जिस रूप में देखता है उसे काव्य में उतार देता है। निस्सन्देह भारती की प्रमथ्यु गाथा, संक्रांति, पराजित पीढ़ी का गीत, कौन चरण, आस्था, निर्माण योजना, गुलाम बनाने वाले, एक वाक्य, बाणभट्ट, टूटा पहिया, एक अवतार आदि कविताएँ किसी न किसी महत्वपूर्ण बिन्दु को उद्घाटित करती है। इन कविताओं में भारती ने अपनी समूची कल्पनाशीलता, भाव प्रवणता, आस्थावादिता एवं मानवतावादी धारणा को साकार रूप दिया है और रूमानी अन्दाज के साथ जन साधारण की कृतघ्न शुद्ध स्वार्थमयी दृष्टि का चित्रण यथार्थ धरातल पर किया है। भारती व्यक्तिगत हितों को सामाजिकता की चादर उढ़ाकर जनहित की आग जलाते हैं और युग पथ पर जन-जन के साथ कदम मिलाकर चलते हैं। वह समाजोन्मुख सामूहिक गीत गाते हुए जन-जन में साहस और बलिदान के मूल्य की प्रतिष्ठा करता है और इस साहस को जगाने में कभी न समाप्त होने वाली वेदना को भी झेलता है। 'प्रमथ्यु गाथा' का प्रमथ्यु जनता के मन में सोये हुए प्रमथ्यु को जगाने की अदम्य इच्छा से प्रेरित है। वह साहस और विश्वास के साथ ही दासता, कायरता आदि के अंधकार को चुनौती देता हुआ जीवन की ज्योति को हृदय में निरन्तर जगाये रखते हुए कहता है -

"ये जो जन हैं, साधारण जन हैं
उनमें से एक-एक के अन्दर
मूर्च्छित प्रमथ्यु कहीं बंदी है।
अवसर जिसे मिला नहीं साहस कर पाने का
कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे में पीड़ा-सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे ।

उस दिन

हाँ, उस दिन

अकेला मैं रहूँगा नहीं

सबके हृदयों में मैं जागूँगा ।"[1]

'प्रमथ्यु' मनुष्य मात्र के दुःख को दूर करने के लिये स्वर्ग से अग्नि चुराकर लाता है और अनन्त पीड़ा को सहर्ष स्वीकार कर लेता है -

"मेरे कन्धों पर बैठ

नोच-नोच खाता है यह मेरा हृदयपिण्ड

मस्तक नत है मेरा,

इसलिये नहीं कि हूँ पराजित मैं

इसलिये कि जिनके हित अग्नि जीत लाया हूँ

उनमें नहीं है साहस या संवेदना

जिसमें नहीं है साहस प्रमथ्यु बनने का ।"[2]

इसमें मानववाद की स्थापना हुयी है कवि आस्था और विश्वास का दीप जलाकर सभी पराजितों को आशा और विश्वास में जीवन बिताने के लिये उत्साहित करता है तथा ईश्वर के अस्तित्व को महत्ता न प्रदान कर मनुष्य की सामूहिक शक्ति को श्रेष्ठता प्रदान करता है -

"चलना तो हमको ही होगा,

चलने में ही हम टूटों और अधूरों का

शायद कुछ होगा नया गठन

आश्रय देंगे हमको अपने

जर्जर पर अपराजेय चरण।"[3]

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 10
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 7-8
3. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 24

आज के संदर्भ में वैयक्तिक स्वातन्त्र्य का अर्थ है दायित्व की भावना जिसमें मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है। मनुष्य के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास से ही आज के अधूरे व्यक्तित्व कल सम्पूर्ण बनेंगे और हमारी टूटती जिन्दगी नये ढंग से गठित एवं विकसित होगी जिससे समाज और संस्कृति का विकास होगा। इसीलिये कवि कर्म की आवश्यकता पर बल देता हुआ कहता है -

"धरती को फिर से सँवारो
क्यारी में बीज नये डालो
पसीने के, आँसू के
प्यार के, हमदर्दी के
मेंड़ें मत बाँधो
भूमि सबकी,
दर्द सबका है।"[1]

व्यक्ति कर्म में आस्था रखते हुए अपनी पौरुषमयी शक्ति से ही जीवन में सफल होता है इसीलिये कवि ने आस्था तथा विश्वास का दीप जलाकर मानव को हर परिस्थितियों में आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करते हैं क्योंकि न तो वह पलायन में विश्वास करते हैं और न निराश होकर जिन्दगी से दूर जाना चाहते हैं बल्कि वह जिन्दगी की असलियत को भोगना चाहते हैं क्योंकि भोगना बेईमानी नहीं है बल्कि आशा और आस्था है। **मुहम्मद इम्तियाज खाँ** ने कहा है -

"कवि ने आस्था तथा विश्वास का दीप जलाकर सभी हसोन्मुख मानव में आस्था एवं विश्वास की छाँह में जीवन व्यतीत करने का आह्वान किया है। कवि का दृढ़ विश्वास है कि आज के अपूर्ण व्यक्तित्व कल सम्पूर्ण बनेंगे तथा हमारा जीवन घुटन-टूटन एवं अनास्था से परे नवीन रूप से गठित एवं विकसित होगी ।"[2]

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 46
2. स्वच्छन्दतावाद और धर्मवीर भारती का काव्य, मुहम्मद इम्तियाज खाँ, पृ0 88

भारती का व्यक्तित्व जीवन की विषम परिस्थितियों से होकर निर्मित हुआ है। इन्हीं विषमताओं के होते हुए भी कवि ने स्वतन्त्रता, स्वाभिमान और आत्मसम्मान एवं देश-प्रेम की महत्ता का वर्णन किया। कवि एक जागरुक नागरिक की भाँति अपने परिवेश से परिचित है। भारत को गुलाम बनाने वाले लोगों के प्रति सचेत रहने को कहते हैं क्योंकि ये लोग अनेक बार अनेक रुपों में केवल गुलामी की जंजीरे ही लाये हैं। गुलाम बनाने वाले कविता में संकट बोध की संवेदना को उद्घाटित किया गया है -

"रोटी और पैम्फ्लेट के ढेरों में ढँक-ढँककर आयी है
दूर किसी नगरी में ढली हुई जंजीरे।
ढंग है नया लेकिन बात यह पुरानी है :
घोड़ों पर रखाकर, या थैली में भरकर,
या रोटी से ढँककर, या फिल्मों में रंगकर
वे जंजीरे, केवल जंजीरे ही लाये हैं।"[1]

कवि ने देश-प्रेम को उन्मुक्त भाव से व्यंजित किया है। भारती ने कुछ कवितायें ऐसी लिखी हैं जिनमें मानव की शक्ति, सीमा और महिमा का यशोगान हुआ है। ये जीवन के यथार्थ और समसामयिक संघर्ष को उसके असली रूप में भोगने के पक्षपाती हैं। भारती भाग्यवादी नहीं, आस्थामय कर्मवादी हैं। इसीलिये उन्होंने कहा है -

"वैयक्तिक सीमाएँ तोड़
इतिहासों के संग गति मोड़
जिस दिन हम युग-पथ पर जन-जन के साथ
बढ़ते होंगे फिर दृढ़ पग, उन्नत-माथ
हम सबके होठों पर सामूहिक गीत
गतियों की वल्गा जन-नायक के हाथ।"[2]

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 47-48
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 18

यह स्वर जनता का है, आम आदमी या लघु मानव का है, जो मानवतावाद की स्थापना कर सकता है, क्योंकि उपेक्षित तिरस्कृत की जाने वाली वस्तु या मानव भी अपने आप में महत्वपूर्ण होता है।उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इस संदर्भ में यह कविता अवलोकनीय है-

"इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले।"[1]

भारती का 'रथ का टूटा पहिया' शीर्षक कविता में समाज की सामूहिकता और अठारह अक्षौहिणी सेनाओं के बीच अकेला अपने अस्तित्व को कायम रखाने का प्रयत्न करता है-

"मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुरुह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय।"[2]

व्यक्ति स्वातंत्र्य का इतना तीखा बोध इसलिये है कि वह अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करता है। वह अपनी पौरुषमयी शक्ति से ही जीवन में सफल होता है और मंजिल को प्राप्त करता है। इस मंजिल को प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और मानव अपने अनुभव और पौरुष का प्रयोग कर अपने को सँवारता भी है।

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 54
2. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 54

भारती ने अपने काव्य में व्यक्ति स्वातन्त्र्य, विवेक और दायित्व, जैसे मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। 'कौन चरण' शीर्षक कविता में यही भाव व्याप्त है-

"पर तुम तो केवल पथ हो
चलना तो हमको ही होगा
हिम की ठण्डी चट्टानों पर
गलना तो हमको ही होगा
तुम भी केवल निष्क्रिय पथ हो
आखिर होंगे वे यही चरण
जिसमें इस लक्ष्य भ्रष्ट मन को
मिल पायेगी अन्त में शरण ।"[1]

भारती की कविताओं में संघर्ष और तनाव के दौर में भी उज्जवल भविष्य के लिये मानव आस्था में विश्वास बना रहता है। मूल्यों के संकट के बीच आस्था की खोज भारती की कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारती ने मानव मूल्यों की चर्चा में मानव की आस्था पर अधिक जोर दिया है। ये अवतारवाद, भाग्यवाद जैसी परम्परित स्थितियों में भी पूर्ण आस्था रखते हैं। 'प्रमथ्यु गाथा' का प्रमथ्यु धरती को अंधेरे से मुक्त करने के लिये स्वर्ग से जो अग्नि लाने का साहस किया है वह उसका स्वतंत्र निर्णय है। इसी कारण वह बदले में जो अमानवीय दण्ड भोगता है कि साधारण जन के भीतर छिपे हुए साहस को जगाता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि एक न एक दिन वह उसे अवश्य स्वीकार करेंगे। इसीलिये भारती को परिवेश के प्रति सजग तथा आस्थावान कवि मानना उचित है क्योंकि इन्होंने परम्परा तथा युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक निर्वाह किया है।

---

1. सात गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 23-24

6. अंधायुग : वैयक्तिक मूल्य और सामाजिक मूल्यों का टकराव :

भारती के 'अंधायुग' की कथा महाभारत की कथा से ली गयी है। उन्होंने पौराणिक कथानकों को आधुनिग युग के परिप्रेक्ष्य में उठाया है। इस कृति की यह विशेषता है कि महाभारत काल के विनाशकारी युद्ध को आज के विश्व युद्धों के परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है। जिस प्रकार महाभारत काल में धृतराष्ट्र के पुत्र मोह से उत्पन्न दम्भ और अहंकार तथा दुर्योधन के व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और अहंकार ने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध की भूमिका रची थी। उसी प्रकार आज भी कुछ राष्ट्राध्यक्षों या व्यक्तियों के व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के कारण सारे विश्व को संत्रास झेलना पड़ रहा है।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि आज जबकि विश्व की लगभग आधी आबादी रोटी, कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताओं से जूझ रही है। हमारे समाज और राष्ट्र के कर्णधार सारे विश्व को बारुदी सुरंगों में ढकेलने का कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार अंधायुग कृति अपनी मूल्य चेतना में समकालीन परिवेश को दर्पण दिखाती है।

भारती ने कहा है कि -

"आधुनिक दृष्टि सामाजिक सन्दर्भो से जुड़ी हुई है। आधुनिक युग में पूर्व और पश्चिम का विभाजन मिथ्या है, कारण यह है कि सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य की नियति एक है। विज्ञान ने पश्चिम एवं पूर्व की जीवन पद्धतियों को समान रूप से प्रभावित किया है। आज का युग अपने आधुनिक होने में कहीं अधिक सजग है तथा वर्तमान के प्रति अधिक सतर्क और जागरुक है।"[1] भारती जी का समर्थन करते हुए डॉ0 रामदरश मिश्र ने भी लिखा है कि-

"भारती ने महाभारत के ख्यात कथानक का उसकी ऐतिहासिक चेतना को अक्षुण्ण रखते हुए, ऐसा विकास किया है कि वह आज के युगबोध को, युद्ध से उत्पन्न मूल्य संकट को झंकृत कर सके इसीलिये महाभारत का युद्ध अपने अंधेपन की स्थिति का परिचायक मात्र न रहकर एक प्रतीक भी बन गया- आधुनिक युग के अंधेपन का प्रतीक।"[2]

---

1. कल्पना, 118, फरवरी, 1961, पृ0 65
2. हिन्दी कविताः तीन दशक - डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 173

'अंधायुग' शीर्षक महाभारत की घटना के आधार पर आज के विश्वयुद्धों से विघटित मानव मूल्यों को अभिव्यक्त किया है। वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध के बाद पनपे हुए मानवीय संकट की कथा है -

"युद्धोपरांत
यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्मायें सब विकृत हैं।"[1]

प्रारम्भ से ही महाभारत का युद्ध अनीति, अमर्यादा, कुंठा, निराशा, प्रतिशोध, हिंसा, रक्तपात, अर्द्धसत्य व अदूरदर्शिता से व्याप्त था। सारा समाज ही वैयक्तिक स्वार्थों से अंधा हो गया था इसीलिये भारती कहते हैं -

"टुकड़े-टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसके दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
पाण्डव ने कुछ कम कौरव ने कुछ ज्यादा ।।"[2]

महाभारत का युद्ध अन्धों का युद्ध है। जहाँ कौरवों और पाण्डवों दोनों ने अपने-अपने स्वार्थ पूर्ति के लिये मर्यादा का अतिक्रमण किया है। यह युद्ध व्यक्तिगत स्वार्थ के ही कारण हुआ है। धृतराष्ट अपने अंधेपन के कारण अपनी संतान के प्रति इतना ममतामयी है कि उसे नैतिक मर्यादा दृष्टिगत ही नहीं होती है इसीलिये वह कहते हैं -

"मैंने अपने ही वैयक्तिक सम्वेदन से जो जाना था
केवल उतना ही था मेरे लिये वस्तु-जगत
मेरी सब वृत्तियाँ उसी से परिचालित थीं ।
मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिल्कुल मेरा ही वैयक्तिक था।"[3]

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 12
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 13
3. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 19-20

अंधायुग के चरित्रों में अश्वत्थामा सबसे प्रभावशाली है क्योंकि भटके हुए अश्वत्थामा ने टूटे हुए जीवन मूल्यों को नयी दिशा प्रदान की है।

"मेरा दायित्व वह स्थित रहेगा
हर मानव-मन के उस वृत्त में
जिसके सहारे वह
सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए
नूतन निर्माण करेगा पिछले ध्वंसो पर ।
मर्यादायुक्त आचरण में
नित नूतन सृजन में
निर्भयता के
साहस के
ममता के
रस के
क्षण में
जीवित और सक्रिय हो उठूँगा मैं बार-बार ।"[1]

युद्ध के दाँव-पेचों में धर्म, मर्यादा आदि केवल आडम्बर बनकर रह जाते हैं फिर भी जीवन का जो परमतत्व है वह कभी नष्ट नहीं होता है बल्कि नयी नैतिकता की सृजन भूमि में रूपान्तरण हो जाता है -

"मरण नहीं है ओ व्याध !
मात्र रूपान्तर है वह ।"[2]

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 129-130
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 129

अंधायुग में गांधारी के चरित्र में उनके पत्नीत्व एवं मातृत्व स्वरूप का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है वह अंधी पुत्र ममता का प्रतीक है इसीलिये उसे नीति, धर्म, मर्यादा आदि आडम्बर मात्र लगते हैं। वह श्रीकृष्ण को 'वंचक' कहती है। क्योंकि दोनों ही पक्षों में धर्म, नीति, मर्यादा का उल्लंघन देखकर बड़ी दुःखी होती है। इस अंधी ममता में वह विवेकशून्य हो गयी है इसीलिये मर्यादाहीन पुत्र दुर्योधन को जीतने की आशा लगाये रहती हुई वह कहती है -

"होगी,
अवश्य होगी जय ।
मेरी यह आशा
यदि अंधी है तो हो
पर जीतेगा दुर्योधन जीतेगा ।"[1]

धर्म, नीति और मर्यादा जब अपने सत्य को खो देते हैं तब वे गांधारी के लिये आडम्बर प्रतीत होने लगते हैं -

"लेकिन अन्धी नहीं थी मैं ।
मैंने यह बाहर का वस्तु-जगत्, अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब हैं केवल आडम्बर मात्र,
मैंने यह बार-बार देखा था।"[2]

युद्ध के कारण ही सत्य की मर्यादा को कोई भी अपना नहीं पाता है। दोनों तरफ ही विवेक हारा है। ऐसे वातावरण में सत्य की खोज करने वाले व्यक्ति के मन को गहरी पीड़ा भोगनी पड़ती है। इसका जीता जागता सबूत युयुत्सु है, युयुत्सु सत्य का साथ देता है तो उसे अपने परिवार से घृणा मिली। माता गांधारी ने व्यंग्य भरे शब्दों में कहा-

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 27
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 23

"बेटा

भुजाएँ ये तुम्हारी

पराक्रम भरी

थकी तो नहीं

अपने बन्धुजनों का

वध करते-करते ? "[1]

वह गहरी वेदना, घुटन एवं कटुता को सहन करता है और अपने को गलत धुरी में लगा हुआ कहता है -

"मैं हूँ युयुत्सु,

मैं उस पहिये की तरह हूँ

जो पूरे युद्ध के दौरान रथ में लगा था

पर जिसे अब लगता है कि वह गलत धुरी में लगा था,

और मैं अपनी उस धुरी से उतर गया हूँ।"[2]

युयुत्सु अपने आचरण पर पश्चाताप करता हुआ दिखाई देता है। ऐसे ही अनेक पात्र हैं। जैसे- गांधारी, धृतराष्ट, संजय, विदुर, अश्वत्थामा, आदि को समकालीन परिवेश में चित्रित करके भारती जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। इसमें वर्तमान समाज की मर्यादाहीनता, अनास्था, घुटन, दर्द और शंकाओं पर गहरी चोट की गयी है, इसमें युगानुकूल नए आदर्शों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया हैअंधायुग में वैज्ञानिक द्रृष्टिकोण से ईश्वर की बदलती हुयी विचारधारा को युयुत्सु के माध्यम से चित्रित किया गया है, क्योंकि युयुत्सु का चरित्र वैज्ञानिक मूल्यों को स्पष्ट करने में अधिक सक्षम है, अणुशक्ति का आविष्कार सृजन एवं विनाश दोनों रूपों में हुआ है। लेकिन इसका प्रयोग विनाश के लिये ही अधिक किया

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 57
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 76

गया है जिसका सबूत द्वितीय विश्वयुद्ध है। अणुबम के भयानक परिणामों से मानवता आज भी झुलसी हुयी है। युद्ध की विभिषिका को चित्रित करते हुए कवि ने मानव-वंश को चेतावनी दी है कि यदि तीसरा विश्वयुद्ध होगा तो -

"ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का ।
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ हो नरपशु ।
तो आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुण्ठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी ।"[1]

द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिका ने हिरोशिमा पर जो अणुबम गिराया था, उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। एक व्यक्ति के स्वार्थ के कारण सारा समाज ही उससे प्रभावित हो जाता है। पर व्यक्ति की अपेक्षा समाज को प्रमुख होना चाहिये। धृतराष्ट्र ने कहा है -

"आज मुझे भान हुआ,
मेरी वैयक्तिक सीमाओं के बाहर भी
सत्य हुआ करता है।"[2]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के नेताओं में नैतिक पतन हुआ, चन्द नेताओं ने अपने स्वार्थ के कारण जनता की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसीलिये भारती व्यंग्य भरे शब्दों में कहते हैं -

"शान्त रहो कृतवर्मा
योद्धा नामधारियों में
किसने क्या नहीं
किया है
अब तक?"[3]

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 94-95
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 21
3. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 47

क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर उठकर आज भी मनुष्य-मनुष्य जाति के लिये सोच नहीं पा रहा है। युगीन परिस्थितियों की जटिलता से मनुष्य, पशुता की ओर कदम बढ़ा रहा है। धर्म, मर्यादा सब आडम्बर मात्र रह गये हैं आधुनिक मानव की पीड़ादायक ध्वंसात्मक प्रवृत्ति का अश्वत्थामा सच्चा प्रतिनिधि है। अश्वत्थामा अपने पिता की क्रूर मृत्यु से दुःखी है। अन्ततः वह प्रतिशोध की भावना में उत्तरा के गर्भस्थ शिशु की हत्या कर देता है। युद्ध की विभीषिका से ग्रस्त मानवता को भारती ने परखा था। इस संदर्भ में डॉ0 सुरेश गौतम ने कहा है-

"द्वितीय विश्वयुद्ध के लोमहर्षक परिणामो ने राजनीति और साहित्य के आकाश को अन्धकार से आच्छादित कर दिया। विशेषतः पश्चिम के साहित्यकार को द्वितीय महायुद्ध ने ग्रास लिया, जिसका प्रतीक वह अन्धायुग बना।"[1]

'अंधायुग' में मूल कथा प्रसंगों के बीच से आधुनिक जीवन-बोध को प्रस्तुत किया गया है। गांधारी आधुनिक नारी की निराशा और आस्था का प्रतीक है। गाँधारी के पुत्र मोह के कारण ही धर्म नीति और मर्यादा जब अपने सत्य को खो देते हैं तब वे गांधारी के लिये आडम्बर मात्र रह जाते -

"लेकिन अन्धी नहीं थी मैं
मैंने बाहर का वस्तु जगत अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा, यह सब केवल आडम्बर मात्र
मैंने यह बार-बार देखा था ।"[2]

गाँधारी की निगाह में सत्य के पक्षधर कृष्ण ने भी मर्यादा तोड़ी है फिर वह महसूस करते हैं कि -

"मर्यादा मत तोड़ो
तोड़ी हुई मर्यादा

---

1. अन्धायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि, डॉ0 सुरेश गौतम, पृ0 67-68
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 23

कुचले अजगर - सी

गुंजलिका में कौरव-वंश को लपेट कर

सूखी लकड़ी-सा तोड़ डालेगी ।"[1]

हमारे जीवन में नैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का महत्व सर्वोपरि है। इसमें सत्य और मर्यादा का विशिष्ट स्थान है वैसे नैतिक मूल्यों में सत्यं शिवं सुन्दरम् को सर्वोच्चता प्रदान की जाती है। भारती जी ने भी सत्य के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है -

"मेरा अपराध सिर्फ इतना है

सत्य पर रहा मैं दृढ़

× × × ×

मैं भी हूँ कौरव

पर सत्य बड़ा है कौरव-वंश से ।"[2]

युयुत्सु सत्य की व्यापकता को स्वीकार करता है। संजय के निम्न शब्दों में भी कवि ने सत्य की महत्ता को स्थापित किया है -

"सत्य कितना कटु हो

कटु से यदि कटुतर हो

कटुतर से कटुतम हो

फिर भी कहूँगा मैं ।"[3]

हम कह सकते हैं कि 'अंधायुग' में मर्यादा, सत्य, प्रेम, दया, न्याय, देशप्रेम आदि सामाजिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया गया है।

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 19
2. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 55
3. अंधायुग, धर्मवीर भारती, पृ0 39

अंधायुग के सम्बन्ध में डॉ0 हरिवंश पाण्डेय का कथन है -

" 'अंधायुग' में भारती का लक्ष्य राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर अपनाई गई युद्ध नीति से, अमर्यादित आचरण से उत्पन्न मानवीय मूल्यों का विघटन दिखाना तो है ही किन्तु उनका लक्ष्य यह भी स्थापित करना है कि जीवन के हर क्षेत्र में प्रगति का आधार मनुष्य द्वारा किया गया मर्यादित आचरण है जिसे विवेकपूर्ण और दायित्वपूर्ण होना चाहिये।"[1]

निष्कर्ष रुप में हम कह सकते हैं कि अंधायुग की रचना का मुख्य उद्देश्य आज के जीवन में युद्ध से उत्पन्न मानवीय मूल्यों का विघटन दिखाना है। युद्ध के कारण टूटे हुए मानव-मूल्यों की अभिव्यक्ति अंधायुग के विभिन्न पात्रों के माध्यम से हुई है। ये सभी पात्र जैसे- धृतराष्ट, गाँधारी, युयुत्सु, अश्वत्थामा, संजय, विदुर, आदि युद्ध के प्रारम्भ से ही अनीति अमर्यादा, निराशा, हिंसा, प्रतिशोध, कुंठा रक्तपात, अर्द्धसत्य व अदूरदर्शिता से व्याप्त थे आज की परिस्थिति में ये सभी भ्रमित दिखाई पड़ते हैं। इसमें कृष्ण के चरित्र का भी अवमूल्यन हो गया है। इससे उबरने का एकमात्र उपाय मर्यादित आचरण है जो व्यक्ति के विवेकपूर्ण निर्णय से संभव है।

7. कनुप्रिया : अस्तित्ववादी चिन्तन और संवेदनात्मक मूल्य

भारती की कनुप्रिया एक ऐसी कृति है जिसमें अस्तित्ववादी चिंतन और संवेदनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है। इस कृति का महत्व इस बात में भी है कि इसमें राधा और कृष्ण के चरित्र को अति आधुनिक परिदृश्य में लौकिक धरातल पर अंकित किया गया है।

अभी तक कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में महाकवि सूर एवं अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा वर्णित प्रणयनी राधा का स्वरूप यह स्पष्ट होता था जिसमें राधा के चरित्र की महत्ता, उसके प्रणय के बलिदान, त्याग, करुणा की प्रतिमूर्ति, वियोगिनी, नायिका आदि की

---

1. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 106

द्रष्टि से महत्वपूर्ण था। हरिऔध के प्रिय-प्रवास में पहली बार राधा का युगानुरुप समाजसेवी आदर्श चरित्र प्रस्तुत हुआ जो आधुनिक समाज के अधिक अनुकूल था किन्तु भारती पहली बार राधा के चरित्र को समकालीन जीवन के यथार्थ के निकट लाने का प्रयास किया। कनुप्रिया की राधा समकालीन जीवन के अस्तित्व से परिचित है। अतः वह अपने जीवन के प्रत्येक पल को प्रेम में जीती हुई भी प्रेम के उत्सर्ग के महत्व को भी समझती है। राधा-कृष्ण के प्रेम को नूतन धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। राधा के कण-कण में कनु की झंकार है। इसीलिये कृष्ण राधा का प्रणाम स्वीकार नहीं करते -

"इस सम्पूर्ण के लोभी तुम
भला उस प्रणाम मात्र को क्यों स्वीकारते ?
और मुझ पगली को देखो कि मैं
तुम्हें समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो कितने निर्लिप्त।"[1]

कनुप्रिया की मूल संवेदना रोमांटिक प्रेम है। राधा स्वयं को कृष्ण की जन्म-जन्मान्तर की रहस्यमयी लीला की एकांत संगिनी मानती है जिसे अब जिस्म की लाज के साथ ही मन की लाज भी होने लगी है वह चकित होकर पूछती है -

"आज मेरे जिस्म के सितार के
एक-एक तार में तुम झंकार उठे हो-
सच बतलाना मेरे स्वर्णिम संगीत
तुम कबसे मुझमें छिपे सो रहे थे ।"[2]

किशोरावस्था में नायिका के अपने जिस्म के सितार के एक-एक तार में झंकृत हो उठने वाले काम के स्वर्णिम संगीत सुनाई पड़ने लगते हैं। विवश नायिका राधा अपने कनु से मिलने नहीं जा पाती तब कृष्ण वंशी बजाकर उसे बुला लेते हैं तो वह कहती है -

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 14-15
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 13

"अक्सर जब तुमने वंशी बजाकर मुझे बुलाया है
और मैं मोहित मृगी-सी भागती चली आयी हूँ
और तुमने मुझे अपनी बाँहो में कस लिया है
तो मैंने डूबकर कहा है :
'कनु मेरा लक्ष्य है, मेरा आराध्य, मेरा गन्तव्य।"[1]

'कनुप्रिया' में जीव की दो गतियाँ है- एक धारा, एक राधा। जब जीव वासनात्मक धारा में फंस जाता है तब अपने वास्तविक स्वरूप को भूलने लगता है। त्याग, समर्पण और भक्ति का भाव है राधा। राधा के प्रेम को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। भारती की राधा क्षण को अतुलनीय महत्व प्रदान करती है और प्रत्येक क्षण का अनुभव करती है। इसीलिये राधा प्रेम की चरम तन्मयता के क्षणों में डूबकर सार्थकता का अनुभव करती है। राधा तन्यमता के गहरे क्षणों का अर्थ केवल स्वयं को मानती हुई कहती है -

"कौन था वह
जिसके चरम साक्षात्कार का एक गहरा क्षण,
सारे इतिहास से बड़ा था, सशक्त था। "[2]

कृष्ण की प्रिया कैशोर्य-सुलभ मनःस्थितियों में जीती है। इसीलिये वह विवेक से अधिक तन्मयता, ऐतिहासिक उपलब्धियों से अधिक सहज जीवन में अपने अस्तित्व को तलाशती दिखाई देती है और वह जीवन की तन्मयता में जिए गये क्षणों को धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय वाले लम्बे युद्ध से अधिक सार्थक और मूल्यवान समझती हुई 'कनु' से कहती है।

"मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण
रँगे हुए, अर्थहीन, आकर्षक शब्द थे-
तो सार्थक फिर क्या है कनु ?"[3]

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 34
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 58
3. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 69

राधा के व्यक्तितव में जो भावाकुल तन्मयता है उसे लेखक ने स्वयं भूमिका में स्वीकार किया है -

"कनुप्रिया अपने अनजाने में ही प्रश्न के ऐसे संदर्भ उद्‌घाटित करती है जो पूरक सिद्ध होते हैं। पर यह सब उसके अनजान में होता है क्योंकि उसकी मूल वृत्ति संशय या जिज्ञासा नहीं भावाकुल तन्मयता है।"[1]

एक ओर जहाँ राधा की भावाकुल तन्मयता है। दूसरी ओर अनजाने में ही उसके द्वारा उठाये गये प्रश्न हैं। इस प्रकार राधा ने भावाकुल एवं सहज मन से जीवन जिया है जो उसके अनुरुप भी है। तन्मयता के क्षणों में डूबकर ही उसे सार्थकता मिली है। इस मंतव्य का स्पष्टीकरण स्वयं भारती के इस वक्तव्य में मिल जाता है-

"ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब जो बाहर का उद्वेग है- महत्व उसका नहीं है महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है- चरम तन्यमता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है- इस तरह कि समस्त बाह्य - अतीत, वर्तमान और भविष्य सिमटकर उस क्षण में पूँजीभूत हो गया है, और हम हम नहीं रहे।"[2]

कनुप्रिया में राधा और कृष्ण के चरित्र को आधुनिक धरातल पर देखने का प्रयास किया गया है उन्हें मानवीय धरातल पर लाकर मानव के मानसिक द्वन्द्व, युद्ध की सार्थकता एवं अस्मिता के संकट को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार- "राधा भारतीय संस्कृति की मूल रागात्मक प्रवृत्ति के प्रतीक रूप में आधुनिक परिवेश के बीच भावी युग-निर्माण में अपनी सार्थकता का महत्व बलपूर्वक स्थापित कर देना चाहती है।"[3]

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, भूमिका
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, भूमिका
3. गिरिजा कुमार माथुर, नई कविता, संयुक्तांक 5 तथा 6 पृ0 5।

कनुप्रिया में एक ओर राग सम्बन्धों की वैचारिक परिणति है। दूसरे ओर उठाये गये उनके प्रश्न हैं राधा परम्परा का निर्वाह करने के साथ-साथ आधुनिक नारी चेतना का प्रतिनिधित्व भी करती है -

"और जन्मान्तरों की पगडण्डी के
कठिनम मोड़ पर खड़ी होकर
तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ
कि, इस बार इतिहास बनाते समय
तुम अकेले न छूट जाओ।"[1]

इसीलिये कनुप्रिया मानवीय धरातल पर ही कनु को अपना अन्तरंग सखा, रक्षक, बन्धु, अराध्य, गन्तव्य, सहोदर कहती है और कभी दिव्य शिशु भी मानती है और स्वयं को माँ, राधिका, बन्धु, सखी व सहचरी कहती है इन पारस्परिक सम्बन्धों को आधुनिक भाव बोधा के स्तर पर मानवतावादी दृष्टि को चित्रित किया गया है। अन्ततः युग निर्माण के लिये राधा कृष्ण के प्रेम को नयी दृष्टि मिली है, राधा के मन में सेक्स को लेकर कोई कुंठा नहीं है वह सांसारिक मोह मर्यादा को ठुकराकर अपने को कृष्ण के प्रति समर्पित कर देती है। वह कृष्ण को खुला निमन्त्रण देती है ऐसा लगता है जैसे मन की लज्जा को महत्व देने वाली राधा शरीर की लज्जा को भुला बैठी है तभी तो कहती है -

"मैंने कसकर तुम्हें जकड़ लिया है
और जकड़ती जा रही हूँ
और निकट, और निकट
और तुम्हारे कन्धों पर, बाँहो पर, होंठों पर
नागवधू की शुभ्र दन्त-पंक्तियों के नीले-नीले चिह्न
उभर आये हैं।"[2]

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 78
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 5।

भारती ने कामवासना को जीवन का सहज सत्य स्वीकार किया है। पूर्वराग के प्रसंग में राधा यमुना के जल में घंटो निरवस्त्र स्नान करती है और कृष्ण के 'श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन' की इच्छा भी करती है और वह यहाँ तक कहती है कि -

"तुम्हारे चंदन कसाव के बिना मेरी देहलता के
बड़े-बड़े गुलाब धीरे-धीरे टीस रहे हैं।"[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारती की राधा प्रणय-विलासिनी, मानिनी और नटखट होने के साथ-साथ चंचल-शोख नादानियों का सम्मिलित पुंज है किन्तु यहाँ पर भारतीय संस्कृति के आधार पर राधा का चित्रण मूल्यहीनता को प्राप्त हो रहा है। परम्परागत काव्य में ऐसे चरित्र को महत्व नहीं दिया गया है।

भारती ने राधा मे परम्परागत चरित्र का विकास न दिखाकर समकालीन परिदृश्य में जीने वाली नारी के व्यक्तित्व का संकट दिखाया है जो कृष्ण के प्रति समर्पित तो है लेकिन उसे अपने अस्तित्व की चेतना भी है। अपने अस्तित्व की पहचान होने पर ही मनुष्य में व्यक्ति स्वातन्त्र्य की भावना पैदा हो जाती है इसीलिये कनुप्रिया की राधा महाभारत के युद्ध में लिये गये सारे निर्णयों को झूठा सिद्ध करती है क्योंकि वे विवेकपूर्ण निर्णय नहीं थे इसीलिए वह कृष्ण के स्वधर्म निर्णय पर व्यंग्य करते हुऐ कहती है -

"और तुम्हे कोई भी कसौटी नही मिलती
और जुए के पाँसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म ......।"[2]

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 30
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 75

ये सारे निर्णय व्यक्तित्व की निजता से शून्य थे इसमें वह गरिमा नहीं थी जिससे जीवन का विश्वास टिका हो इसीलिये राधा का मन इस ध्वंस और विनाश को देखकर प्रश्नाकुल हो उठता है क्योंकि उसे लगता है कि उसके समर्पण का, उसकी तन्मयता का महत्व इस इतिहास निर्माण में खो गया है। सम्भवतः इसीलिए राधा अपने कनु से यह प्रश्न कर रही है-

"हारी हुई सेनाएँ, जीती हुई सेनाएँ
नभ को कँपाते हुए, युद्ध-घोष, क्रन्दन-स्वर,
भागे हुए सैनिकों से सुनी हुई
अकल्पनीय अमानुषिक घटनाएँ युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं? "[1]

राधा अपने तर्कों से कृष्ण के आदर्शवादी व्यक्तित्व की धज्जियाँ उड़ा देती हैं। उसकी रागात्मकता में कर्म, स्वधर्म, निर्णय आदि बड़े-बड़े शब्द विलीन हो जाते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता है-

"बिना मेरे कोई भी अर्थ कैसे निकल पाता
तुम्हारे इतिहास का
शब्द, शब्द, शब्द ......
राधा के बिना
सब
रक्त के प्यासे
अर्थहीन शब्द ।"[2]

राधा को अपने समर्पण पर अडिग आस्था है और अपने अस्तित्व की पहचान भी है इसीलिए युद्ध में थके हारे कृष्ण को आस्था और जीवन पुनः देती हुई कहती हैं-

---

1. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 68
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0 79

"सुनो मेरे प्यारे !
तुम्हें मेरी जरुरत थी न, लो मैं सब छोड़कर आ गयी हूँ
ताकि कोई यह न कहे
कि तुम्हारी अन्तरंग केलिसखी
केवल तुम्हारे साँवरे तन के नशीले संगीत की
लय बनकर रह गयी ......।"[1]

भारती की राधा की यह चेतना आधुनिक नारी की चेतना है। डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा का यह कथन है कि -

" 'कनुप्रिया' की राधा का व्यक्तित्व इतिहास की मृत घटनाओं का अनुचर नहीं बनता। उसका व्यक्तित्व इतिहास की कुत्सित स्मृति से मुक्ति निर्जीव इतिहास को भुलाने की क्षमता (कैपेसिटी टु अनलर्न द लर्ण्ट) से सम्पन्न है जिसमें मानव सभ्यता के नये विकास की अपार संभावनायें निहित हैं।"[2]

कनुप्रिया में वर्णित मूल संवेदना प्रेम है जिसमें राग-विराग, सुख-दुःख, सौन्दर्य-असौन्दर्य को नवीन धरातल पर चित्रित किया गया है।

"सुख-दुख, राग-विराग, सौन्दर्य-असौन्दर्य की संवेदना प्राचीन है और चिर नवीन है। इन संवेदनाओं को जाग्रत रखने वाले उपादान बदलते रहते हैं और सामाजिक सम्बन्धों की जटिलता के अनुसार संवेदनाओं में जटिलता आती रहती है। एक का दूसरे में संक्रमण होता रहता है। आज की संवेदनाएँ उलझी हुई हैं, क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध उलझे हुए हैं, मूल्य उलझे हुए हैं। इन संवेदनाओं को उनकी समस्त गहनता, सच्चाई और तीव्रता में पकड़कर उन्हें चित्रित करना सर्जक का मूल धर्म है।"[3]

---

1. कनुप्रिया।, धर्मवीर भारती, पृ0 79
2. नए प्रतिमान : पुराने निकष, लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ0 57
3. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि, डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 24

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि 'कनुप्रिया' में अस्तित्ववादी चिंतन और संवेदनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गई है। कनुप्रिया एक ओर तो पारम्परिक आदर्शो से अनुरंजित है तो दूसरी ओर युगीन संवेदनाओं से अनुप्राणित है। कृष्ण अपनी नजर में नूतन इतिहास का निर्माण करते हैं लेकिन राधा की नजर में वह अपूर्ण है। क्योंकि राधा ने अपने स्वातन्त्र्य व्यक्तित्व के बल से ही कृष्ण के व्यक्तित्व की रक्षा की थी। यही भावना कनुप्रिया में व्याप्त है।

भारती ने पारम्परिक, भावाकुल, प्रणयाकांक्षी और विरहाकुल आदि रूपों को प्रस्तुत करते हुए उसके चरम तन्मयता के क्षणों में सार्थकता की तलाश की है। यह तन्मयता ही सहज मानवीयता की उपज है। इस कृति में यह विशेषता है कि तन्मयकारी सहज भावाकुल क्षणों में भी सार्थकता को प्रतिष्ठित किया गया है।

अस्तु हम कह सकते हैं कि कनुप्रिया में भारती ने राधा-कृष्ण के जीवन चरित्रों में पारम्परिक मूल्यों की गरिमामय प्रस्तुति के अतिरिक्त कतिपय नवीन मूल्यों की भी प्रतिष्ठा की है। ये नवीन मूल्य राधा-कृष्ण को समकालीन समाज में अत्यन्त प्रासंगिक बना देते हैं और वे कोई पौराणिक कथापात्र न होकर हमारे बीच के आदर्श कथा पात्र बन जाते हैं।

अध्याय चार

अध्याय - चार

भारती का कहानी साहित्य : जीवन मूल्य

1. यथार्थ बोध के कहानीकार भारती
2. आस्था-अनास्था के बीच मूल्य बोध
3. भारती की कहानियों का चिन्तन बोध
4. भारती की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प

1. यथार्थ बोध के कहानीकार भारती :

डॉ0 धर्मवीर भारती ने ग्रामीण और नगरीय धरातल पर प्राप्त निम्न-मध्यवर्ग के यथार्थ को अपनी अनेक कहानियों में चित्रित किया है। इनके दो कहानी संग्रह छपे हैं। 'चाँद और टूटे हुए लोग' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान'। 'चाँद और टूटे हुए लोग' सन् 1955 में प्रकाशित हुआ। इसके प्रथम और द्वितीय खण्ड में कुल सोलह कहानियाँ हैं। इनमें यथार्थ धरातल पर यथार्थ को ही देखने, भोगने तथा परखने की क्रिया को चित्रित किया गया है।

'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह की सभी कहानियों में इलाहाबादी गली-मुहल्लों के मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ, मानसिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक आदि सभी स्तरों पर रेशा-रेशा उजागर एवं जीवित हो उठा है। भारती की कहानियों के सम्बन्ध में डॉ0 सूबेदार राय लिखते हैं -

"भारती की कहानियों के पात्र जीवन के यथार्थ से लिये गये हैं और उनका चित्रण यथार्थ और संवेदनशील आधार पर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से हुआ है। ये यथार्थ और मानव-संघर्षों के प्रतीक हैं साथ ही ये पात्र उनके व्यक्तित्व की आस्था और उनकी विद्रोह-भावना स्पष्ट है।"[1]

भारती की कहानियों में सामाजिक यथार्थ का समष्टि-चिंतन ही प्रमुख है। इन्होंने समाज के कटु यथार्थ को बहुत नजदीक से देखा तथा झेला है। उनके मन पर इसकी गहरी छाप है। इनकी कहानियों में वह गुणात्मक रुप से पोषित और प्रवर्तित है।

'हरिनाकुस और उसका बेटा में देशभक्ति को विषय बनाया गया है। इसमें हृदय-परिवर्तन का सायास मोड़ है। कहानी के आरम्भ में हम हरिनाकुस जल्लाद से परिचित होते हैं जिसकी कुरुपता, क्रूरता, निर्दयता की धाक बिरादरी में जमी हुई है। वह अपने बेटे

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास, डॉ0 सूबेदार राय, पृ0 14।

बिस्सू को भी अपने जैसा बनाना चाहता है। उसका बेटा शरारती है। चूहों को मारकर उनके साथ खेलता है तो चौधरी को अपने खानदानी जल्लाद होने का गर्व महसूस होता है। एक दिन बिस्सू ने फाँसी की क्रिया देखी। इसमें जल्लाद उसका बाप था। फाँसी के दृश्य से उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उसने अपने बाप की जल्लाद कहकर भर्त्सना की। उत्तर में क्रुद्ध चौधरी बोला-

"जबान सम्भाल के बोल रे। मैं जल्लाद हूँ? कोई रस्सी में गाँठ लगाने से जल्लाद हो जाता है? जिसने आग लगायी वह कप्तान, जिसने फांसी चढ़ाई वह जेलर और मैंने गाँठ लगा दी तो मैं जल्लाद हो गया। जो बचे वो अफसर हो गये, जो कप्तान था सुपरडण्ड हो गया और मैं जल्लाद हो गया।"[1]

बाप और बेटे के बीच का यथार्थ यहाँ स्पष्ट द्रष्टव्य है।

'कुलटा' कहानी में मातृत्व की पीड़ा व्यक्त हुई है। लेखक ने इसमें नारी की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है। नन्दराम और उसकी बीबी के साथ पड़ोसी किस ढंग से व्यवहार करते हैं, इस स्थिति को बड़े ही स्वाभाविक ढंग से उपस्थित किया गया है।

लाली नाम की एक औरत नन्दराम के घर रहती थी, जो लेखक के घर काम पड़ने पर आ जाया करती थी। लेखक तथा उसके भाई का इसी बात पर विवाद रहता था। लेखक के भाई ने लाली के वहाँ आने पर विरोध प्रकट किया और लेखक को समझाया कि वह कुलटा है, दुबारा ब्याही गयी है। भाई को शक था कि शायद लाली ने अपने पहले पति को जहर देकर मार दिया है। एक बार वह इनके घर अपने नाम का आया लिफाफा (चिट्ठी) पूछने के बहाने आयी तो नंदराम ने भी उसको बुरी तरह फटकारा। कुछ देर बाद लेखक और उसके भाई ने देखा कि लाली अपने घर पकवान बनाकर एक-एक वस्तु का स्वाद ले रही थी। ऐसी स्थिति में नन्दराम ने उसे दुश्चरित्र, नीच तथा जानवर आदि की उपाधि दी। नन्दराम कहता है -

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 18

"हरामजादी, अपनी संतान को तो खाए जाती है, दूसरे के पेट की क्या ममता होगी? मुझे तो समाज के मंत्री जी ने अच्छा फंसा दिया। कहाँ बुढ़ापे में यह पाप गले पड़ा मेरे।"[1]

इस कहानी में मध्यमवर्गीय नारी की दयनीय स्थिति का यथार्थ जीवन्त रूप में उभरता प्रतीत होता है। डॉ0 हरिवंश पाण्डेय ने 'कुलटा' कहानी पर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं -

"कुलटा में भारतीय विधवा नारी की उस यातना का चित्रण है जो पहली जिंदगी की शेष ममता और दूसरी जिन्दगी जीने की मजबूरी के द्वन्द्व से उत्पन्न है। और इस नारकीय यातना को वह आजीवन झेलती रहती है। जले पर नमक यह कि जिस पुत्र के लिए वह दूसरी मजबूर जिन्दगी जीती है रोज बदजात, कमीनी, कुतिया, कुलटा जैसे शब्दों के कड़वे घूट पीती रहती है, उससे भी वह तिरस्कृत और लांछित होती रहती है।"[2]

'मरीज नम्बर सात' यह कहानी इलाहाबाद अस्पताल के एक वार्ड से शुरु होती है जिसमें मरीज नम्बर सात भर्ती है। उसे देखने कोई नहीं आता है। घर वालों का व्यवहार उसके प्रति रुखा है। सिर्फ नौकर दोनों समय दूध और खाना लाता था। यहीं उसके बगल में एक रोगिणी और उसके बच्चों का वर्णन किया गया है। मरीज नम्बर सात का मन वह दृश्य देखकर बेचैन हो उठा क्योंकि पास वाले अन्य मरीज उस रोगिणी औरत के मरने का इंतजार करने लगे। मरीज नम्बर सात की आँखों के सामने उस रोगी औरत का दृश्य साकार होने लगा। उस रोगिणी औरत से सभी लोग ऊब चुके थे। अब मरीज भी अपने को संज्ञाहीन महसूस करने लगा था। इस हाल तथा हालत से उत्पन्न भावनाओं को कहानी में सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत किया गया है - "वह जिंदगी से तटस्थ हो चुका था। जीवन और मौत एक सी है, उसका दर्द और औरत का दर्द एक है। किसी न किसी गहराई में उतर कर तमाम जिंदगी एक है अगर वह मर जाय तो औरत को और औरत मर जाय तो उसको अपने दर्द से छुटकारा मिल जाय।"[3]

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 26
2. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 159
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 36

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारती की कहानियों में यथार्थ जीवन का संघर्ष क्षणों में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन में परिलक्षित होता है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह में निम्न मध्यवर्गीय लोगों के मानसिक, आर्थिक, सामाजिक परिवेश का यथार्थ चित्रण हुआ है। 'गुलकी बन्नो' हमारे समाज की उन तमाम नारियों का प्रतीक है जो अज्ञानता और रूढ़िवादिता के कारण जिन्दगी का नरक भोगती हैं। लेखक का मन्तव्य उपेक्षिता गुलकी तथा उसके सामाजिक परिवेश को यथार्थ रूप में उद्घाटित करना रहा है। इस प्रसंग में डॉ0 रामदरश मिश्र लिखते हैं -

"'गुलकी बन्नो' भारती की गहरी अनुभवशील प्रकृति और सारी रचनात्मक शक्ति की पहली प्रौढ़ अभिव्यक्ति है। इसलिये वह रचनात्मकस्तर पर तो उपलब्धि प्राप्त करती ही है, ऐतिहासिक दृष्टि से भी विशिष्ट हो उठी है। बाद की कहानियों में "गुलकी बन्नो' का भारतीपन ही अपने को किसी न किसी रूप में दुहराता है।"[1]

डॉ0 चन्द्रकान्ता बंसल भी भारती की कहानी-कला पर अपना मत व्यक्त करती हैं-

" 'गुलकी बन्नो', 'सावित्री नम्बर दो', उग्र चेतना से उत्पन्न संवेगों में यथा-कुण्ठा, मृत्यु भय, निराशा, अवसाद, अकेला व परायापन आदि में जीते सांस लेते, अपने परिवेश और समय के भीतर कसमसाते मानव से साक्षात्कार कराती हैं जो कि अन्य मानव को भी अंदर-बाहर से झकझोड़ कर रख देता है। अप्रत्यक्षतः आधुनिकता ने मानव सम्बन्धों को इन रूपों में विघटित किया है।"[2]

गुलकी का चरित्र ही इस कहानी में सर्वस्व है। क्योंकि गुलकी पति और समाज से उपेक्षिता नारी है। सामाजिक परिवेश और व्यक्ति के आन्तरिक एवं वाह्य दोहराव के कारण ही गुलकी की स्थिति अत्यंत दयनीय है। गुलकी छब्बीस साल की है और वह पति से तिरस्कृत होकर मैके लौट आयी है। यहीं पर अपना गुजर बसर करने के लिये सब्जी की दुकान खोल

---

1. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि, डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 173
2. सातवें दशक की हिन्दी कहानी में मानवीय सम्बन्ध विशेष सन्दर्भ: मोहन राकेश, चन्द्रकान्ता बंसल, पृ0 47

लेती है। साथ ही मिरवा तथा मटकी विक्षिप्त, विकलांग और रोगग्रस्त बच्चों को गुलकी स्नेह करती है। वह दु:खी है और उसकी वेदना सीमातीत है। उसकी दशा का चित्रण यों किया जा सकता है।

'गुलकी' परिवेश की विसंगत मूल्य स्थितियों के कारण निरन्तर जीवन संघर्षो से जूझती टकराती है। सब्जी की दुकान पर कोई बिक्री नहीं होती। मुहल्ले में उससे कोई कुछ लेता ही नहीं और ऊपर से मुहल्ले भर के बच्चे उसे परेशान करते हैं। बुआ उसकी दुकान तहस नहस कर डालती है। गुलकी के चारों तरफ स्वार्थ का संसार फल-फूल रहा है। स्वार्थ के चक्रव्यूह में फंसी गुलकी के भीतर एक दिन इस अमानवीयता के प्रति विद्रोह भड़कता है। तभी वह बुआ से यह कहने का साहस जुटा पाती है -

"पाँच महीने का दस रूपया नहीं दिया बेशक, पर हमारे घर की धन्नी निकाल के बसन्तू के हाथ किसने बेचा? तुमने । पच्छिम ओर का दरवाजा चिरवा के किसने जलवाया? तुमने ।"[1]

इस स्वार्थी परिवेश से तंग आकर गुलकी अपने पति के दासत्व और सौत के राज को सहर्ष स्वीकार कर लेती है।

इसी प्रकार 'सावित्री नम्बर दो' की पीड़ा कितनी विषम और अमानवीय है। उसकी लम्बी बीमारी के बाद उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। वह जीवन और मौत दोनों से अस्वीकृत होकर पति द्वारा उपेक्षित होती है। छोटी बहन सित्तो की सेवाओं को स्वीकारते हुए भी उसी के द्वारा अपनी जिन्दगी बरबाद होने की अशंका से वह ग्रस्त है। माँ की ममता की अस्वीकृति और पारस्परिक सम्बन्धों की निरर्थकता से उसे असह्य पीड़ा होती है। पीड़ा को महसूस करती हुयी वह कहती है -

---

1. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 20

"कल रात को माँ ने बैठकर लिस्ट बनायी थी कि मेरे पास कौन से जेवर हैं जो सित्तो के काम आ सकेंगे और आज सुबह .... मेरे चारो ओर लोग चुपचाप इन्तजार में खड़े हैं कि मेरी मृत्यु की घड़ी टलती क्यों जा रही है। सबके चेहरे पर शोक भी है, इन्तजार भी, अधीरता भी; सब चुप हैं......... मेरे लिये किसी का कुछ अर्थ नहीं रहा। न मैं माँ की बेटी रही, न सित्तो की बहन, न इनकी पत्नी........ सिर्फ यह खिड़की मेरे लिए एक चौकोर दुनिया हैं।"[1] भारती ने एक मध्यमवर्गीय परिवार की वास्तविक स्थिति को मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया है। वर्तमान स्थितियों में पति, माँ, बहन, आदि के पारस्परिक सम्बन्धों का लोप हो रहा है। इस तथ्य की ओर लेखक ने ध्यान दिलाया है।

'यह मेरे लिए नहीं' में दीनू आजीवन अपनी माँ के रूढ़िवादी संस्कारों से संघर्ष करता है और अन्त में अपने माँ के विचारों से सहमत हो जाता है। यह संघर्ष समकालीन बोध तथा परम्परा बोध के कारण होता है। दीनू तथा उसकी माँ में इसी कारण टकराहट पैदा होती है। वह पुराने मूल्यों व संस्कारों को पूरी तरह तोड़ भी नहीं पा रहा है और नये मूल्यों को अपनाने के लिये छटपटा भी रहा है। डॉ0 राजपाल भारती की एक और विशेषता बताते हैं-

"नयी पीढ़ी अपने पर शासन करने के पक्ष में नहीं है- स्वयं निर्णय ले सकने की क्षमता आज की पीढ़ी में है। भारती की विशेषता इस बात में है कि वे समकालीन बोध के पक्षपाती होते हुए परम्परा का विरोध कहीं नहीं करते।"[2]

'बन्द गली का आखिरी मकान' में मुंशी जी कभी जाति-बिरादरी तथा धार्मिक रूढ़ियों के मध्य टूटते दिखाई देते हैं, कभी गरीबी से ऊबते डूबते हैं। गरीबी और भूख से पीड़ित व्यक्तियों की दीन-हीन असह्य स्थिति का मार्मिक चित्रण 'कफन चोर' में हुआ है "कफन चोर' का गरीब बाप अपनी बेटी को ठंड से बचाने के लिये कफन चुराने को विवश है। यही उसके जीवन की विडम्बना है। दुःख में भरकर वह कहता है -

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 51-52
2. धर्मवीर भारती साहित्य के विविध आयाम, हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 129

"आदमी चाहे मर जाय, कब्र खोदकर कफन चुराने नहीं दिया जायेगा।"[1]

'भूखा ईश्वर' कहानी में अकाल पीड़ितों, भूखे मनुष्यों की आर्थिक विपन्नता को दर्शाया गया है। गरीबी और अभाव के चक्रव्यूह से जूझते हुए तथा जूझ-जूझ कर टूटते मनुष्य की जीवन लीला की सही सही तस्वीर यहाँ प्रस्तुत की गयी है।

"भूखा से घुट-घुटकर मिट जाने वाले।"[2]

यह आदमी-आदमी नहीं रहे हैं - सब अपने-अपने कंधो पर अपनी मौत को ढो रहे हैं। आर्थिक विषमता के कारण भूखा से चाहे मौत हो जाये पर शोषण व्यवस्था पर पूँजीवादी शोषक मूल्य संस्कृति फलती-फूलती रहती है।

"तो कहीं धर्म के तथाकथित सच्चे साधक अर्थ का अनर्थ कर जनता को भ्रमित कर अपना स्वार्थ साध रहे हैं।"[3]

धर्म के नाम पर मिथ्या आडम्बर और अंधविश्वास धर्मात्मा निरीह जनता को ठग रहे हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारती की कहानियों में भूखा, गरीबी, शोषण, अंधविश्वास को, समाज में नारी की स्थिति, बंगाल के अकाल के समय भूखा से व्याकुल होकर मरते हुए मनुष्यों आदि की समसामयिक स्थितियों को गहरे रूप से स्पर्श किया गया है। वास्तविक जीवन मूल्यों को तलाशकर हरपरिस्थितियों में उन्हें प्रस्थापित करने का प्रयास किया गया है।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 116
2. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 104
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 55

उनमें युग सन्दर्भों के अनुकूल जीवन सत्य की पकड़ है, उर्ध्वगामी चेतना है और अमानवीय हालातों से टकराने की ताकत है।

2. **आस्था-अनास्था के बीच मूल्यबोध :**

समकालीन भारतीय परिवेश में अनेक विसंगतियाँ और विद्रूपतायें है। समकालीन व्यक्ति अनेक कुंठाओं से जूझ रहा है। महानगरीय संक्रान्ति के कारण व्यवस्था के प्रति विद्रोह है। इन सबके बीच मूल्य बोध तलाशने का काम भारती के साहित्य में किया गया है। यहाँ अनास्था-बोधक मूल्यबोध है। जबकि दूसरी तरफ समाज के स्वस्थ एवं सरस वातावरण का चित्रण भी हुआ है। जैसे- प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण, समाज के लोकमंगल का स्वरूप आदि। इस प्रकार की आशा और आस्थावादी भावनाओं के बीच भारती ने मूल्यबोध तलाशे हैं। आज के युग में संक्रमणकारी व्यक्ति दोहरा व्यक्तित्व जी रहा है। फलस्वरूप समाज में एक नया मूल्य बोध पैदा हुआ है, जिस पर भारती ने विशेष दृष्टि डाली है।

डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ठीक ही लिखा है -

"भारती ने प्रगतिशील आधार पर आधुनिक जीवन की करुणा, व्यथा एवं विसंगतियों का अनूठा चित्रण किया है। भारती की कहानियों में नैराश्य एवं कुंठा की सतही दीवारों की पृष्ठभूमि में जीवन जीने की अदम्य आकांक्षा, अपूर्व जिजीविषा आस्था एवं संकल्प का संबल प्राप्त होता है।"[1]

वस्तुतः भारती के अधिकांश कथ्य पौराणिक सन्दर्भो से लिये गये हैं, जिसमें भाग्यवाद, अवतारवाद आदि जैसी रूढ़िगत स्थितियों पर पूर्ण आस्था रखते हुए थके-हारे, विवश, उदास, कुंठित और टूटे हुए मनुष्यों को आशा और विश्वास की छाँह में जीवन व्यतीत करने के लिये प्रेरित किया गया है क्योंकि मनुष्य कितनी ही उदासी, निराशा और घुटन को

---

1. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ0 175

सहन कर ले, फिर भी अन्त में उसे आस्था से ही बल मिलता है इसीलिये भारती मानवीय मूल्यों के प्रति सदैव प्रतिबद्ध रहे हैं।

इनके साहित्य में जहाँ अनुभव की प्रौढ़ता है, वहीं रचनात्मक काल्पनिक उड़ान के साथ-साथ परम्परा एवं काल सापेक्ष स्थिति के प्रति विश्वास भी है। इन्होंने भूखा और गरीबी, अत्याचार और शोषण से जूझते दीन-हीन, पीड़ित, दलित संघर्षशील जनों में सकारात्मक मूल्यों को ही स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती की दृष्टि नैतिक आस्थाओं और मानवीय मूल्यों पर दृढ़ है। उनके भीतर दया, करुणा, प्रेम और सहानुभूति का अजस्र स्रोत विद्यमान है। दीनू, गुलकी, मुंशी, सावित्री, हरिनाकुस का बेटा आदि ऐसे ही पात्र हैं।

भारती को विश्वास है कि क्रूर से क्रूर कर्म करने वाले व्यक्ति के हृदय में कहीं-न-कहीं मनुष्यता का उज्जवल अंश जरुर होता है। जब वह जीवन की किसी विषम परिस्थिति में पड़ जाता है, तो वह बीज प्रस्फुटित हो जाता है। भारती की आदर्शवादी कहानी 'हरिनाकुस का बेटा' आस्था की भूमि पर लिखित है।

'हरिनाकुस का बेटा' में जिन्दगी भर जल्लाद का कर्म करते-करते चौधरी क्रूर बन गया है, उसकी मनुष्यता मर गयी है, किन्तु एक सुन्दर निरपराध देशप्रेमी बालक को फांसी के तख्ते पर लटकाने की क्रिया ने उसके मन में इस क्रूर कर्म के प्रति घृणा पैदा कर दी। परिणामस्वरूप वह अपने बेटे बिसुआ को जो, उसकी सूरत से भी डरता था, स्कूल भेजने लगा और स्वयं भी जल्लाद की नौकरी छोड़ दी है। चौधरी कहता है -

"हरिनाकुस का बेटा प्रहलाद था, मेरा बेटा बिसुआ है।"[1]

ईश्वर में आस्था रखते हुए हरिनाकुस अपने बेटे को अपने द्वारा किये हुए क्रूर पाप के फल से बचाने के प्रसंग में कहता है -

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 2।

"देखो, मेरा पाप मेरे बच्चों को न लगे, नहीं तो समझ लेना हरिनाकुस से पाला पड़ा है।"[1]

इसी तरह जब घेघा बुआ गुलकी की दुकान पानी में बहा देती है, तो उसका क्रोध फूट पडता है वह कहती है -

"देखेंगे हम भी। निरबल के भी भगवान है।"[2]

गुलकी को ईश्वर पर पूर्ण आस्था है। भारतीय परम्परायें और रूढ़ियाँ इतनी मजबूत हैं कि हम उन्हें रातो-रात काटकर नहीं फेंक सकते हैं। इसी कारण भारतीय नारी के मन में पतिव्रत धर्म के संस्कार इतनी गहराई तक पैठे हुए हैं कि नारी उन्हें सहज ही अस्वीकार नहीं कर सकती। इसीलिये 'गुलकी बन्नो' अपने पति के साथ उसके अत्याचारों के बावजूद जाने को राजी हो जाती है और वह कह उठती है-

"हाय ! हमें काहे को छोड़ दियौ ! तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है! अरे, हमरे मरै पर कौन चुल्लू भर पानी चढ़ायी......।"[3]

गुलकी अपने पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है। इस तरह भारती लोक मर्यादा और सामाजिकता के प्रति अधिक सजग दिखाई देते हैं।

'यह मेरे लिए नहीं' इस कहानी का पात्र दीनू आज की नगरीय मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी की मानसिकता को उजागर करता है। एक ओर दीनू की माँ है जो अपने बेटे पर मातृत्व का अधिकार जमाकर उसे अपने वश में रखना चाहती है। दीनू माँ की इस स्वार्थी प्रवृत्ति के विरूद्ध विद्रोह प्रकट करता है। वह डंके की चोट पर घोषणा करता है -

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 2।
2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 20
3. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 24

"ईश्वर-भक्त माँ ने दस साल की आभार-भरी आत्मीयता को भूलकर मुहल्ले-भर के सामने डॉक्टर चाचा-चाची को अपमानित कर अलग कर दिया तब से उसे ईश्वर पर भी विश्वास नहीं।"[1]

दीनू के मन में सांजी और अर्पणा के प्रति स्नेह था तथा चाचा और चाची के प्रति अपार श्रद्धा की भावना थी। वे दीनू को अपनेपन के प्रेम से उत्साहित करते हैं। लेकिन जब माँ ने अर्पणा और सांजी को लेकर उस पर गलत आरोप लगाया तो उसकी चट्टान जैसी आस्थायें डगमगाने लगीं और उसके हृदय में अनास्था और अविश्वास का भाव जाग्रत हो उठा। अनास्था और अविश्वास की यह अनुभूति अत्यन्त दीन-हीन बना गई -

"दीनू क्या करे जिसका कोई भगवान नहीं रहा । कितना अकेला। कितना निरस्त्र।"[2]

दीनू के डॉ0 चाचा और चाची में कहीं भी स्वार्थपरता की झलक नहीं दिखायी देती है। दीनू की माँ ने उनके एहसान को भुलाकर उन्हें अपमानित किया फिर भी वह अपनी ईमानदारी और उदारता के कारण बुरा नहीं मानते हैं और दीनू को समझाते हैं -

"तुम्हें भाभी की बात का बुरा नहीं मानना चाहिये। वे बेचारी अपने जमाने की नजर से हर चीज देखती हैं। तुम्हें अपने पढ़ने-लिखने में लगे रहना चाहिये। कहती हैं तो कह लेने दो।"[3]

जब दीनू अपनी माँ के प्रति विद्रोही हो जाता है, तब वह उसके विद्रोह करने पर उसकी माँ आस-पड़ोस के लोगों पर दोषारोपण करती है जो स्वाभाविक ही है ऐसा वह वात्सल्य के कारण ही करती है। कहती है-

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 57
2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 62
3. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 63

"हाँ, सबने मिलकर बहकाया है मेरे पूत को। अब चार पैसे कमाने लायक हुआ तो किसी से देखा नहीं जाता। अरे मैं मकान को छाती पर रखकर ले जाऊँगी? जिसे छाती से लगा-लगाकर पाला जब वही ठोकर मार रहा है.......।"[1]

एक ओर दीनू अपनी माँ के प्रति अनास्था व्यक्त करता है तो दूसरी ओर माँ के बदले हुए रूप को देखकर आस्था भी प्रकट करता है -

"ओ माँ ओ माँ । यह दृष्टि नहीं सही जाती। दीनू ने विजय चाही थी अपनी निष्ठा, अपनी ईमानदारी, अपने स्वाभिमान को प्रतिष्ठित करने के लिये। तुम्हारी आँखों में इस दृष्टि के लिए नहीं ।"[2]

नयी पीढ़ी की त्रासदी, पीढ़ियों के संघर्ष, विचारों की विषमताओं से दीनू के मन में एक तनाव पैदा होता है, जो आगे चलकर उसे व्यक्तिवादिता की ओर अग्रसर करता है। कहा जा सकता है दीनू का चरित्र आस्था और अनास्था के संघर्ष के साथ विकसित होता चलता है। दीनू के चरित्र का विकास विश्लेषित कर समीक्षक और साहित्य- इतिहासकार डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ठीक ही लिखा है :-

"नगर का मध्यवर्गीय जीवन भारती की कहानियों की परिधि है और व्यक्ति की गरिमा की स्थापना उनकी विशेषता। व्यक्ति को उन्होंने समाज के संदर्भ में ही देखा है। अतः उनकी कहानियों में संवेदना, सामाजिक चेतना, जीवन मूल्यों की खोज, आधुनिक परिवेश में रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के कारण बनते बिगड़ते मानव सम्बन्धों का स्वर मूल स्वर है। किन्तु आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, विद्रोह और उदासीनता आदि के बीच डूबते उतराते व्यक्ति को वे अन्ततोगत्वा नियति के हाथों सौंप देते हैं।"[3]

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 68
2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 73
3. द्वितीय महायुद्धोर हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ0 176

आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, विद्रोह और उदासीनता आदि स्थितियों के बीच भटकता 'यह मेरे लिए नहीं' का दीनू आज की मध्यवर्गीय युवा पीढ़ी की मानसिकता के साथ-साथ कस्बाई जीवन को भी अभिव्यक्ति देता है। एक ओर दीनू की माँ है, जो उस पर अपने मातृत्व का अधिकार जमाकर उसे अपने वश में करना चाहती हैं और दीनू माँ की इस स्वार्थी प्रवृत्ति के प्रति विद्रोह करता है। दूसरी ओर अर्पणा और चाचा-चाची दीनू के मन में प्रेम और अपने पन की भावना को भर देते हैं। इस प्रकार दीनू का चरित्र माँ के प्रति अनास्था और अर्पणा तथा चाचा-चाची के प्रति आस्था को प्रकट करता है।

'सावित्री नम्बर दो' में व्यक्तिवादी दृष्टि दिखाई देती है। इस कहानी की मुख्य पात्र सावित्री एकाकीपन के अहसास से दबकर मानसिक संतुलन खो बैठती है तथा मृत्यु की अथाह पीड़ा को अपनी नियति मान लेती है। इसके चरित्रांकन की सराहना करते हुए डॉ० रामदरश मिश्र लिखते हैं-

"भारती की 'सावित्री नम्बर दो' में एक आधुनिक लड़की की बीमार मन:स्थितियों का, उसकी ग्रन्थियों का एक बड़ा सूक्ष्म अंकन है। वह अपनी असामान्य स्थितियों में भी सामान्य है, व्यक्तित्व की उलझन उसकी सहजता बन गयी।"[1]

लम्बी बीमारी के बाद सावित्री अपना मानसिक संतुलन और विवेकशीलता खो देती है। वह सभी के प्रति अजीब व्यवहार करने लगती है। इस व्यवहार के पीछे उसकी अपने प्रति, जीवन के प्रति, अपने पति के प्रति, पारस्परिक सम्बन्धों के प्रति एवं शारीरिक सुखों के प्रति उसकी उत्कंठा ही है। इन सबसे वह महरुम है और अपने को पति पर बोझ समझती है। उसे लगता है -

"और फिर भी मैं नहीं हूँ कितना तकलीफदेह है यह बरसों की अवधि में फैली हुयी मौत को जानते हुए, देखते हुए, समझते हुए जीना। मैंने कई बार रो-रोकर यम से

---

1. हिन्दी वाड्मय : बीसवीं शती, डॉ० नगेन्द्र, पृ० 127

प्रार्थना की है कि एक सावित्री के नाम से तुमने यमपाश खोल दिया था। दूसरी की विनती पर कसकर बाँध लो।"[1]

सावित्री जो जिन्दगी जी रही है वह अत्यन्त कष्टदायी है। वह प्राय: सोचती है-

"मेरे लिए तो न जिन्दगी है न मौत । है एक तीसरे प्रकार की स्थिति, एक निरर्थक क्रम में बीतते जाते क्षण जो कहीं भी तो नहीं ले जाते।"[2]

यह कहानी मध्यवर्गीय परिवार की है। इसमें मनोवैज्ञानिक दृष्टि को आधार बनाया गया है। इसमें युगबोध की वास्तविक अभिव्यक्ति है। सम्बन्धों के तनाव, संदेह, संत्रास, कुंठा और अनास्था, अविश्वास तथा जीवन के दोहरे व्यक्तित्व की विवशता को बड़े ही सहज ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

'बन्द गली का आखिरी मकान' का प्रधान चरित्र मुंशी जी का है जो हृदय से उदार है, प्रकृति से विद्रोह एवं जीवन में संघर्षशील है। मुंशी जी कभी भी किसी के आगे झुके नहीं वे स्वाभिमानी थे। वे गरीबी, विवशता, बीमारी आदि से अन्त तक संघर्ष करते रहते हैं पर झुके नहीं। लेखक ने मुंशी जी के इन गुणों को उभारा है -

"मुंशी जी का मन विद्रोह चाहे न कर पाये, लेकिन स्वाभिमानी था। उन्हें अंदर ही अंदर कहीं यह बात कचोट गयी थी कि आखिरकार बिटौनी ने भी यही माना कि भैया गरीब है, अत: जैसे चाहो इस्तेमाल कर लो।"[3]

मुंशी बिना विरोध किये मृत्यु की ठंडी बरफ में धंसते चले जाते हैं तथा निष्क्रिय नियतिवाद को स्वीकार कर लेते हैं ये आस्था से चलकर अनास्था में समाप्त हो जाते हैं। मुंशी

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 30
2. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 31
3. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 92

जी की समाप्ति को हम डॉ0 ज्ञान अस्थाना के विचारों के प्रकाश में देखें, तो ज्ञात होगा कि समस्या का मूल कहाँ है। अस्थाना लिखते हैं -

"बाह्य रूप से हम बदले हुए दिखाई देते हैं परन्तु मानस अभी हमारा उतना नहीं बदल पाया है कि बदलते परिवेश में सामंजस्य स्थापित कर सकें। संस्कारों और परम्पराओं से हम मुक्त होना चाहते हैं, हो नहीं पाते इस कारण आन्तरिक द्वन्द्व उभरता है, जिससे आस्था हीनता, दिशाहीनता तथा विनम्र स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। जीवन का सत्य दब गया है और सभी सम्बन्ध औपचारिक और कृत्रिम से जान पड़ते हैं।"[1]

'हिन्दू या मुसलमान', 'भूखा ईश्वर', 'एक पत्र', 'हरिनाकुस का बेटा', "शिजिनी" आदि कहानियों के पात्र गरीबी के कारण पशु की तरह जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु समय आते ही मानवता के अंकुर इनके अंदर प्रस्फुटित होने लगते हैं। ये सभी पात्र मानववाद के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं।

इस बदलते परिवेश में आज का मानव टूटा हुआ है, किन्तु उसमें नवीन मूल्यों को प्राप्त करने की ललक है। इसी कारण वह इनकी ओर बढ़ रहा है। भारती प्रगतिशील विचारों से जुड़े थे। इसीलिए इनकी कहानियों पर प्रगति का प्रभाव पड़ा है। किन्तु ये जड़ सिद्धान्तवादी नहीं थे। इनकी अधिकांश कहानियाँ, आस्था-अनास्था, विश्वास-अविश्वास, संकल्प-विकल्प और संघर्ष-विमर्ष के द्वन्द्व से अनुप्राणित हैं।

'हिन्दू या मुसलमान' कहानी में गरीबी, अकाल और भुखमरी जैसे उत्पात मचने पर भी हम भारतवासी धर्म और पाखण्ड के भेदभाव को भुला नहीं पाते हैं। इस बात को इस कहानी में अभिव्यक्त किया गया है। पहला दृश्य अस्पताल का है जहाँ तीस लाशें एक कतार में रखी हुयी थीं। इनमें जिंदा कितनी थीं और मरी हुयी कितनी यह निश्चित नहीं है। एक भुखमरे ने नर्स के आने की आहट को सुनकर पानी मांगा। नर्स ने 'मरने दो' कहकर चली गयी। पानी मांगने वाली आवाज मन्द पड़ गयी, कराह जारी रही। पास वाली मरीज बुढ़िया लड़खड़ाते हुए पानी ले आयी और मरीज के मुँह में लगाया। एकमात्र घूँट पीकर दूसरे घूँट के साथ-साथ उसे हिचकी आयी, बुढ़िया अपनी जगह लौट गयी, डाक्टर ने आकर उस मरीज की जाँच की मरीज मर चुका था। नोट बुक में मौत सम्बन्धी विवरण भरते समय दिक्कते उठीं। वह कौन है, क्यों मरा आदि सवाल उठे

---

1. हिन्दी कथा साहित्य : समकालीन सन्दर्भ, डॉ0 ज्ञान अस्थाना, पृ0 56

किन्तु सर्वाधिक महत्व का सवाल था- वह कौन है, हिन्दू या मुसलमान।

'भूखा ईश्वर' में भारती जी ने सामाजिक स्तर की आर्थिक विपन्नता को चित्रित किया है। मनुष्य के पास जीवनयापन के जो भी साधन था, धीरे-धीरे कम होते गये और फलतः मनुष्य ईश्वर की साधना और भक्ति पहले की तरह न कर सका। न भोग चढ़ाया जाता था, न आरती उतारी जाती थी। ईश्वर भूखा दुबला एवं असक्त हो गया। मनुष्य की देह धरकर वह अपनी भूखी, कमजोर और कुरुप सूरत लिए स्वर्ग-द्वार पर जा पहुँचा लेकिन वहाँ भी द्वारपाल ने उसे टोका। अंदर प्रवेश पाने का उसके पास न परवाना था और न ही घूस देने के लिए धन। ईश्वर ने समझाने की कोशिश की कि वह प्रभु है, ईश्वर है, मालिक है, किन्तु ईश्वर के उस हालत को देखते हुए द्वारपाल का विश्वास कर पाना कठिन था। द्वारपाल ने ईश्वर को बताया कि उसका मालिक शहर में आराम और सुख-सुविधाओं के बीच पलता है और द्वार बन्द किए। ईश्वर पृथ्वी पर लौट आया। पृथ्वी पर आकर ईश्वर ने देखा कि पुजारी प्रज्ञा से धन लेकर स्वर्ग प्रवेश के परवाने बाँट रहा है। ईश्वर ने समझाना चाहा कि यह धोखा है पर किसी ने सुना नहीं, ईश्वर को वहाँ से धक्के खाकर निकलना पड़ा। ईश्वर के मन में अमीर ईश्वर के प्रति हिंसा और प्रतिशोध के ज्वालामुखी फूटे। पर ईश्वर भूखा था। वह केवल देखाता रहा- विपन्नता के अनेक रूप, बेबस और लाचार मनुष्य। मनुष्य को पैदा करने की उसे ग्लानि हुई। ईश्वर में मन में आशा की किरण फूटी। उसने क्रान्ति का स्वप्न देखा। जिसमें माँ की ममता थी और कुत्ते की पशुता। माँ की ममता ने ईश्वर को विश्वास और सम्बल दिया और ईश्वर ने विद्रोह की आवाज लगायी और कहा-

"नंगो, भूखो! तुम नहीं जानते, तुम्हारी पसलियों में एक ताकत छिपी हुई है जो मौत से ज्यादा जहरीली और चाँदनी से ज्यादा सुधामयी है।.... जागो । मैं विद्रोही, भूखा ईश्वर तुम्हें मानव बन जगाता हूँ।"[1]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'हिन्दू या मुसलमान', 'भूखा ईश्वर' आदि कहानियों के पात्र गरीबी के कारण पशु की तरह जीवन व्यतीत करते हैं किन्तु समय आते ही मानवता के अंकुर इनके अंदर प्रस्फुटित होने लगते हैं। ये सभी पात्र आस्था-अनास्था के द्वन्द्व से अनुप्राणित हैं।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 85

3. भारती की कहानियों का चिन्तन बोध :

भारती की प्रत्येक कहानी किसी न किसी चिन्तन-बोध से अनुप्राणित है। उनकी कहानियों में एक ओर भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग व्यक्त है, तो दूसरी ओर समाज की अनेक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश भी है। वे समाज की सड़ी-गली परम्पराओं से चिपके नहीं रहना चाहते हैं। वे समग्रतः भारतीय सामाजिक समरसता और सामाजिक स्वास्थ्य के सम्बर्द्धन में विश्वास रखते हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में इसका सम्यक निर्वाह भी हुआ है। डॉ0 सुरेश सिनहा लिखते हैं -

"धर्मवीर भारती की कहानियों में एक सजग कलाकार की वह गहरी स्वस्थ जीवन दृष्टि मिलती है, जिसमें सामाजिक विकृतियों एवं असंगतियों के निराकरण और नये सामाजिक रूप-विधान की स्थापना की अकुलाहट है, साथ ही व्यक्ति की गरिमा और उसके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा की भावना भी है।"[1]

जब हम भारती की कहानियों पर विचार करते हैं, तो पता चलता है कि इनकी कहानियों का चिन्तन बोध सहज एवं मानवीय है, जिसमें यथार्थ और आदर्श दोनों का समावेश हुआ है। हमारे सामने धर्मवीर भारती के दो कहानी संग्रह हैं। 'चाँद और टूटे हुए लोग' की कहानियों में जहाँ कल्पना की उड़ान है, वहीं रोमानी काव्यात्मकता, आदर्श, प्लेटोनिक प्रेम एवं भावनात्मक सम्बन्धों के प्रति आसक्ति भी है। लगता है कि भारती का जीवन-दर्शन बहुत बड़ी हद तक प्रसाद से प्रभावित है। इसीलिये इनकी अधिकांश कहानियाँ यथा पूजा, स्वप्नश्री और श्रीरेखा, शिंजिनी, कला : एक मृत्युचिह्न नारी और निर्वाण, तारा और किरण, कुबेर, मंजिल, कलंकित उपासना, में प्रसाद का शैलीगत एवं दार्शनिक व्यक्तित्व छाया हुआ है फिर भी इसमें जीवन के बुनियादी सवालों को उठाने की कोशिश की गयी है।

---

1. हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास, डॉ0 सुरेश सिनहा, पृ0 570

दूसरा संग्रह है - 'बन्द गली का आखिरी मकान' (1969) । इसमें कुल चार कहानियाँ है। इनमें जीवन की संवेदना, मानववाद, परिवार एवं समाज का यथार्थ पक्ष, मूल्य संकट की अपेक्षा मूल्य-पर्याय के बोध अधिकतम मात्रा में मिलते हैं।

भारती ने नये भाव बोध को अपनाकर नयी कहानी के समानान्तर चलने की कोशिश की है, जिसमें वे काफी हद तक सफल भी हुए हैं। इन्होंने 'चाँद और टूटे हुए लोग' संग्रह की भूमिका में स्वीकार किया है -

"वह जाति जिसमें अपने प्राणों की हथेली पर रखकर पृथ्वी के स्तरों को ठोकरों से चूर-चूर कर पाताल से अन्न ऊपर खींच लाने की शक्ति है, केवल उसी जाति को अस्तित्व का, जीवन का, आजादी का, संस्कृति का, साहित्य-सृजन का अधिकार है और जो जाति इतनी निर्वीय है कि उसे बलिष्ठ हाथ अपने श्रम की उपज की स्वयं रक्षा न कर सके। ऐसी जाति-जाति नहीं मुर्दो का टीला है, सड़ती हुई घृणित। क्योंकि गुलाम भुखमरों की कोई भी संस्कृति नहीं होती ।"[1]

भारती के इस वक्तव्य से प्रकट हो जाता है और कहानियों से भी स्पष्ट होता है कि इनका दृष्टिकोण युग-बोध और यथार्थ जीवन-परिवेश तथा आस्था एवं संकल्प से सम्बन्धित है। इस दृष्टिकोण में परम्परा का स्वीकार भी है और प्रगति के प्रति रूझान भी है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' की कहानियों पर विचार करते हुए उपेन्द्रनाथ अश्क ने बहुत ठीक लिखा है-"जिन्दगी और जिन्दगी में पिसते मानवों में भारती जी को जो आस्था थी, वह किन्हीं अंधेरे गर्तो में तिरोहित नहीं होती है।"[2]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारती जी ने जिन्दगी में पिसते मानवों के प्रति जो आस्था व्यक्त की है। वह अंधेरे गर्तो में गिरकर भी समाप्त नहीं हो सकती है क्योंकि उनका दृष्टिकोण समाज सापेक्ष है।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 261-62
2. उपेन्द्रनाथ अश्क, कहानी के इर्द गिर्द : प्रस्तोता, डॉ0 सुरेश सिन्हा, पृ0 52

समीक्षकों ने इस मन्तव्य से सहमति जतायी है। डॉ0 सूबेदार राय का कथन इस मन्तव्य से मिलता-जुलता है। यहाँ दिया जा रहा है -

"धर्मवीर भारती ने व्यक्ति की गरिमा और उसमें व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का जो प्रयत्न किया है उसका मतलब यह नहीं है कि वे व्यक्तिवादी हैं। उनका दृष्टिकोण समाज-सापेक्ष है किन्तु वे व्यक्ति को भी स्थापित देखना चाहते हैं। यदि व्यक्ति को उसके परिवेश से काट दिया जाएगा तो वह उखाड़ जायेगा। उन्होंने व्यक्ति और समाज का अच्छा समन्वय अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इसलिये उन्होंने भविष्य का एक यथार्थपूर्ण स्वप्न देखा है जो आशापूर्ण है पर उनका यह दृष्टिकोण कहानियों पर कहीं थोपा हुआ नहीं लक्षित होता। उन्होंने निम्न मध्यवर्ग के बहुविध जीवन, समस्याओं और परिस्थितियों का ऐसा संतुलित यथार्थ चित्रण किया है कि उनका दृष्टिकोण स्वयं स्पष्ट हो गया है।"[1]

भारती की कहानियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन्होंने स्वयं भोगे हुए तथा देखे हुए जीवन के यथार्थ को अपनी आस्थाओं के अनुरुप प्रस्तुत किया है। भारती के अधिकांश पात्र, जैसे दीनू, गुलकी, सावित्री, मुंशी, सिद्धार्थ, यशोधरा, आदि अनास्था में निरर्थक भटकते नहीं है, उनकी भटकन में एक सार्थकता है जो मानववादी मूल्यों की खोज करती है। भारती ने स्वयं ही लिखा है -

"हमारे चारो ओर की व्यवस्था, वातावरण, परम्पराएँ, सामाजिक ढाँचा कुछ ऐसा है कि हम सब बेबश और कायर हैं। सामाजिक स्तर पर वह व्यक्ति हमारे साथ नहीं आ पाता। अपनी व्यक्तिगत सीमाओं में आबद्ध हम आत्मिक प्रेम, आस्था और निष्काम पूजा की बात करने लगते हैं पर सामाजिक स्तर पर विवाह करते हैं। पत्नी आती है, बच्चे होते हैं और हमारे दो व्यक्तित्व हो जाते हैं। दोनों एक-दूसरे को धिक्कारते हैं। दोनों एक दूसरे की साँसों में

---

1. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास, डॉ0 सूबेदार राय, पृ0 140

जहर घोल देते हैं। हमारा व्यक्तित्व खोखला हो जाता है और खोखले व्यक्तियों से बना हुआ समाज अनैतिक ।"[1]

समाज और व्यक्ति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक दूसरे के बिना ये न तो रह सकते हैं, न सह सकते हैं। यही आज की जिन्दगी के प्रेम का यथार्थ है। हम प्यार करते हैं, नफरत करते हैं या ऊबकर समझौता कर लेते हैं। प्रेम के सम्बन्ध में यही परिवर्तित मानसिकता भारती की कहानियों में दिखाई देती है। वस्तुतः भारती के चिन्तन बोध में बदलाव की यह सबसे बड़ी उपलब्धि है क्योंकि कुछ नवीन सृजित करने की संभावना हर स्तर की ध्वंसात्मकता में ही निहित होती है। यही नवीन परिकल्पना जब समाज में मान्य हो जाती है, तो मूल्य बन जाती है। इस सम्बन्ध में चन्द्रकान्ता बंसल के विचार हैं -

"प्रत्येक मूल्य मानव की चिन्तन प्रक्रिया और संवेदनाओं से होकर गुजरता है। अतः मानव मूल्यों से अधिक महत्वपूर्ण है। प्रायः मूल्य बोध का आधार वैयक्तिक प्रतीति है। किसी वस्तु से व्यक्ति के मन में परितोष, प्रसाद, आपूर्ति, प्रेरणा एवं सार्थकता की अनुभूति जाग्रत हो वही मूल्यवान लगने लगती है। अतः मूल्य वह वैचारिक इकाई है जिसके आधार पर मानव जीवन जीता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है। इस जीवन-दर्शन में विभिन्न संस्कार, घटना-प्रवाह, सामाजिक दायित्व आदि विचार अनुस्यूत रहते हैं और इनके आधार पर मानवीय सम्बन्ध निर्मित होते हैं अर्थात् मानवीय सम्बन्धों के अन्तःस्थल से निःसृत कोई आदर्श परिकल्पना जब समाज में मान्य हो जाती है तब वही मूल्य बन जाते हैं।"[2]

भारती की अधिकांश कहानियों में मानवीय सम्बन्धों की तलाश का संघर्ष निरन्तर जारी रहता है। ऐसी ही कहानी है 'कुलटा'। इस कहानी की विधवा नारी में नारकीय यातनायें झेलने के बावजूद वात्सल्य प्रवाहित होता रहता है।

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 68-69
2. सातवें दशक की कहानी में मानवीय सम्बन्ध विशेष सन्दर्भः मोहन राकेश, डॉ0 चन्द्रकान्ता बंसल, पृ0 28

'भूखा ईश्वर' क्रान्तिकारियों के नेता का प्रतीक है जिसे शासकों एवं उच्च वर्ग की नीति के सामने टूट जाना पड़ता है। इस चित्रित कहानी में निम्न वर्ग और उच्च वर्ग के बीच संघर्ष है। इस संघर्ष में विद्रोह और क्रान्ति का दमन होता है, तो लेखक तड़प कर रह जाता है। अपने मुख्य पात्र के वर्णन में वह कहता है -

"और ईश्वर अब भी कैद है। उसकी छाती में विद्रोह की हुंकार है। उसकी नसों में सृजन की तड़पन है; मगर उसके हाथों में हथकड़ियाँ है और उस पर सेठ के नौकरों का पहरा है।"[1]

गरीबों का नेता ईश्वर का प्रतिनिधि बन उन्हें ललकारता है -

"नंगो, भूखो! तुम नहीं जानते, तुम्हारी पसलियों में एक ताकत छिपी हुई है जो मौत से ज्यादा जहरीली और चाँदनी से ज्यादा सुधामयी है।...... जागो! मैं विद्रोही, भूखा ईश्वर तुम्हें मानव बन जगाता है।"[2]

'मुर्दो का गाँव' कहानी में भूख से पीड़ित लोगों की विवश परिस्थितियों को और इन्हीं विवश परिस्थितियों के बीच जगमगाते मनुष्य की मानवता को चित्रित किया गया है।

'हिन्दू या मुसलमान' कहानी में लेखक भूख से मरने वालों के प्रति अपनी मानवीय संवेदना प्रकट करता है। हम भारतवासी गरीबी, अकाल और भुखमरी जैसी आदि समस्यायें होने पर भी धर्म और पाखण्ड को भुला नहीं पाते हैं। इसी संदर्भ को इस कहानी में पिरोया गया है।

'कफन चोर' कहानी में करीम अपनी मर रही बेटी सकीना को ठंड से बचाने के लिये कफन कब्र से चुराने जाता है। कैसी दारुण विडम्बना है यह। निष्कर्ष यह कि 'चाँद

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 86
2. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 85

और टूटे हुए लोग' संग्रह में बंगाल के अकाल से उत्पन्न दारुण विभीषिकाओं को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

भारती का दूसरा कहानी संग्रह है 'बन्द गली का आखिरी मकान' इसमें लेखक की चिंतन दृष्टि आधुनिक और प्रौढ़ है। इन कहानियों में मानव यातना के प्रति गहरी संवेदनात्मक प्रतिक्रिया मिलती है। "आधुनिकता केवल समयगत परिवर्तन नहीं है वरन् वह एक मूल्य भी है अर्थात आज के युग में जीवन बदला है जैसे अनेक कालों में बदलता आया है किन्तु आज के जीवन का आधुनिक होना केवल नयी परिस्थितियों और वातावरण में नया होना नहीं है वरन् अनिवार्य भाव से उन अनेक विश्वासों, मूल्यों और भाव-बोधों को छोड़ना है जो सामंतवाद या मध्यकाल की उपज थे और उस चेतना की स्वीकृति है जो विज्ञान काल की देन है।"[1]

आधुनिकता पर विचार करने के बाद डॉ0 मिश्र ने भारती की कहानी कला पर प्रकाश डाला है। उनके निष्कर्षो का संक्षेप यों दिया जायेगा- 'गुलकी बन्नो' में आज की समूची नारी के संकट का बोध होता है। इसमें निम्न मध्यवर्गीय जीवन की मानसिकता का यथार्थ चित्रण मिलता है। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परम्परा का सम्यक् निर्वाह हुआ है। इसी कारण कठोर यातना देने वाले पति के प्रति भी नारी का स्नेह कितना सर्वोपरि है क्योंकि पति नाम की संस्था का प्रभाव भारतीय नारी जीवन के रक्त में घुल मिल गया है। गुलकी पति को देखकर आत्मीयता से भर उठती है। कहती है- "राम ! राम ! कितने दुबरा गये हैं। हमारे बिना खाने-पीने का कौन ध्यान रखाता। अरे, सौत तो अपने मतलब की होगी ।"[2]

भारती ने इस कहानी में आधुनिकता का स्वर समाज की रूढ़ियों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। डॉ0 रामचन्द्र तिवारी का मत है -

---

1. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि, डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 164
2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 26

"तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है? यह मानसिकता परम्परागत संस्कारों में पली निम्न मध्यवर्गीय नारी मात्र की है। यह सही है कि 'भारती' सामान्य आदमी के जीवन-संघर्ष को नजर अन्दाज नहीं करते किन्तु उनकी काव्यात्मक संवेदना और रोमानी वृत्ति उन्हें खुरदरे यथार्थ से संलग्न नहीं होने देती ।"[1]

इसी तरह 'सावित्री नम्बर दो' कहानी में सावित्री लम्बी बीमारी के बाद अपना मानसिक संतुलन खो देती है। इसीलिये वह सभी को शक के दायरे में ले लेती है। सावित्री के ऊहापोह को समीक्षक डॉ0 पुष्पा ने अच्छी तरह देखा है - "लम्बी बीमारी को भोगने वाला व्यक्ति औरों की सहानुभूति का प्रतिदान घृणा के रूप में करता है, क्योंकि मन में बैठा निराशा का कीड़ा औरों को अपमानित, पीड़ित करने पर संतुष्ट हो जाता है। बीमारी के पहले यही सावित्री अपने आप को एक ईमानदार, सच्ची स्त्री के रुप में प्रमाणित करना चाहती थी।"[2]

यह कहानी मनोवैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत की गयी है। इसमें आधुनिक जीवन के अनेक रंगों का रूप देखने को मिलता है।

'यह मेरे लिए नहीं' कहानी में दीनू आस्था और अनास्था से संघर्ष करता हुआ अदम्य जिजीविषा की इच्छा रखता है। वह रूढ़िवादी संस्कारों से निरन्तर संघर्ष करता रहता है। कहानी आधुनिक जीवन की विडम्बना और अन्तर्विरोध से जुड़ जाती है। डॉ0 रामदरश मिश्र के अनुसार -

"माँ पुरानी पीढ़ी का प्रतीक बनकर टूटते हुए पारम्परिक पारिवारिक मूल्य के बचाव के लिये नयी पीढ़ी के प्रतीक अपने पुत्र के श्रम का व्यय करती रहती है। वह ईश्वर को भी नहीं जानता, फिर भी ऐसा कुछ जरुर था जो ईश्वर जैसा था ।"[3]

---

1. हिन्दी गद्य साहित्य : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 23।
2. धर्मवीर भारती, व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर, पृ0 193
3. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि ; डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 176

'बन्द गली का आखिरी मकान' में मुंशी जी की करुण कहानी को चित्रित किया गया है। इस कहानी के सम्बन्ध में डॉ0 रामदरश मिश्र ने कहा है - "कथा सामाजिक दबाव की क्रूरता को झेलती हुई, उससे पार पाती हुई व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक दबावों से निर्मित ट्रेजडी की ओर सरकती जाती है। बिरजा धीरे-धीरे अपने उन सम्बन्धियों की तरफदारी करने लगती है जिन्होंने उसकी उपेक्षा की थी और मुंशी जी धीरे-धीरे उपेक्षित होने लगते हैं।"[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बिरजा अपने पारम्परिक सम्बन्धों के कारण मुंशी जी द्वारा निबाहे गये शाश्वत जीवनमूल्य उदारता, दया, सहयोग ओर आस्था की तिलांजलि दे देती है।

4. भारती की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प :

कथ्य विधान की दृष्टि से भारती की कहानियों में दो तरह के पात्र मिलते हैं- यथार्थोन्मुख आदर्शवादी एवं यथार्थवादी। 'चाँद और टूटे हुए लोग' एवं 'बन्द गली का आखिरी मकान' में दोनों कहानी-संग्रह कथ्य एवं शिल्प विधान की दृष्टि से अधिक सफल कहे जा सकते हैं। इन संग्रहों की कहानियों में कथ्य-विविधता के साथ-साथ समस्याओं को प्रस्तुत करने की सक्षम कला का दर्शन होता है। सभी कहानियों में लेखक की आदर्शवादी दृष्टि का अस्वीकार और परिवेश से उत्पन्न यथार्थवादी तथ्यों का स्वीकार परिलक्षित होता है।

जहाँ तक भारती के 'चाँद और टूटे हुए लोग' संग्रह की कहानियों का प्रश्न है, वे आदर्शवादी और भावप्रवण है। स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से लिखी गयी ये कहानियां अपने कथ्य को पाठकों तक बखूबी संप्रेषित करती हैं। कहानियों में नाट्यतत्व की प्रधानता है जो अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इन सभी कहानियों में भारती ने उन घटनाओं एवं पात्रों को आधार बनाया है जो समाज की सही जीवन्त तस्वीर उभार सकें। सामाजिक परिवेश एवं व्यक्ति के आन्तरिक तथा बाह्य दोहराव को लेखक ने बड़े ही क्लासिक अन्दाज में प्रस्तुत कर हमें नये जीवन संदर्भो की ओर अभिमुख किया है। ये कहानियाँ केवल जीवन खण्डों या उथले क्षणों का संप्रेषण न होकर गम्भीर अर्थो या मूल्यों की कथायें है। इसीलिये इनके लेखक

---

1. आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि, डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 177

को परम्परा एवं आधुनिकता का सम्यक् निर्वाहक कहानीकार माना जाता है। डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल का विचार है कि - "भारती की कहानी कला भी अन्य विधाओं की भांति विविध आयामों से गुजरती प्रतीत होती है। कहानीकार किसी एक मान्यता, रूढ़ि अथवा परिवेश से स्थायी सम्बन्ध स्थापित नहीं करता वरन् आयु, अनुभव एवं चिन्तन के विकास-क्रम के अनुसार उसका लेखन विकसित हुआ है। भारती ही एक ऐसे कहानीकार हैं जिनमें परम्परा एवं काल सापेक्ष स्थिति की सही सटीक एवं सार्थक अभिव्यक्ति हो पायी है।"[1]

भारती की पहली कहानी 'तारा और किरण' है। इस रूपक कथा का विषय प्रेम है। 'नारी और निर्वाण' इसमें यशोधरा और सिद्धार्थ के प्रणय जीवन से लेकर निर्वाण तक की जीवनयात्रा को प्रस्तुत किया गया है। बुद्ध को निर्वाण का साक्षात्कार सुजाता की ममता और यशोधरा के प्रेम और वात्सल्य से ही प्राप्त होता है। 'पूजा' काव्यात्मक भाषा और रोमान्स से भरपूर कहानी है। इसमें कथ्य और कथानक प्रसाद जी की कहानियों के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। तुलना करणीय है - "मनुष्यता का नाश करके कोई धर्म खड़ा नहीं किया जा सकता।" (प्रसाद)[2] "आज मैं देवदासी हूँ, मेरी सुकुमार भावनाएँ, मेरी अछूती तरुणाई आज महज उसकी है, उस पत्थर के देवता की" (भारती)[3]

स्वप्नश्री और श्रीरेखा : में स्वप्नश्री, श्रीरेखा और समुद्रगुप्त तीनों के बीच प्रेम का वर्णन है। ये दोनों नायिकायें प्रेम के सम्बन्ध में अपनी स्वतन्त्र विचारधारा रखाती है। किन्तु समुद्रगुप्त स्वप्नश्री के प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। श्रीरेखा को यह जानकर अत्यंत कष्ट होता है और उसकी मृत्यु समुद्रगुप्त को बचाने में हो जाती है। समुद्रगुप्त यह नहीं जानते थे कि श्रीरेखा मुझसे प्यार करती थी। इसीलिए वे कहते हैं- "यह अवश्य किसी को प्यार करती थी । देखो न मौत में भी कितना आकर्षण बढ़ गया है। कहते हैं; प्रणय की मौत जहरीली हो किन्तु सुन्दर बहुत होती है। बहुत अच्छी लड़की थी बेचारी। जिसने इस सुकुमार फूल को

---

1. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, डॉ0 हुमुचन्द राजपाल, पृ0 102
2. इन्द्रजाल, जयशंकर प्रसाद, पृ0 107
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 164

इस बेदर्दी से मसल दिया वह कितना निष्ठुर होगा, कितना निर्मम होगा।"[1] इस कहानी की नारी ने प्रेम में त्याग और बलिदान को सहर्ष स्वीकार किया है। नारी प्रेम को सदैव मूल्यवान और महत्वपूर्ण मानती है।

शिंजिनी और किंजल्क की प्रेमकथा का वर्णन है। किंजल्क आत्मविश्वास एवं कर्तव्यनिष्ठा के प्रति अधिक सचेत है। शिंजिनी भी इनसे प्रभावित है। इसीलिये कहती है- "यदि कोई क्षणिक आवेग अपने में जीवन की सम्पूर्णता समेट लेता है. तो मैं उसी को सत्य मानने के लिये तैयार हूँ। किन्तु यदि कोई शाश्वत साधन जीवन के एक खण्ड को आधार बनाकर दूसरे खण्डों को कुचल देती है तो मैं उसे सत्य नहीं समझ सकती मैं मोह में विश्वास करती हूँ। मैं तृप्ति में विश्वास करती हूँ।"[2] इस कहानी में शिंजिनी क्षण के महत्व को स्वीकारती हैं। बशर्ते वह जीवन के सम्पूर्ण बोध को सम्भव बनाता हो। क्षण-भोग और तृप्ति में उसका विश्वास बहुत साफ दिखाई देता है। लेखक ने इस कहानी में मनुष्य के प्रति पूर्ण आस्था और देवताओं के प्रति अनास्था को व्यक्त किया है।

'कला : एक मृत्यु -चिह्न' में कलाकार कला के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है। इसका नायक कहता है - "कलाकार......... प्रेमिका से नहीं, प्रेम से प्रेम करता है।"[3] 'कुबेर' कहानी मानव सभ्यता के विकास को रेखांकित करती है। ये प्रसाद की कहानियों से बहुत हद तक प्रभावित हैं।

'मंजिल' कहानी में स्त्री और पुरुष, ईश्वर और मनुष्यत्व के बीच सम्बन्धों को व्याख्यायित किया गया है।

'कलंकित उपासना' में ईश्वर के मार्ग में प्राप्य बाधायें गिनाई गई हैं। जैसे-वासना, भोग

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 192
2. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 201
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 213

लिप्सा और पार्थिवता। इन्हें ही कलंक कहा गया है। पुरुष पात्रों के माध्यम से भारती स्वयं बोलते हुए प्रतीत होते हैं कि - "यही मेरे जीवन का अन्तर्विरोध है क्यों? यह मैं नहीं समझ पाता। जो मेरी व्यक्तिगत धारणायें हैं वह कला में उतर नहीं पातीं, जो मेरी कला की रेखायें हैं जिन्दगी उन पर चल नहीं पाती। मेरी कला मेरे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं है- अन्तःसंघर्ष है। मेरे व्यक्तित्व और कला दोनों को आपस में लड़ना पड़ा है। दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं।"[1]

पात्रों के विषय में डॉ0 पुष्पा वास्कर का मत है -

"भारती के ये पात्र अपने आप में पूर्ण, बलशाली, कलाकार, प्रतिभावान होते हुए भी किसी अभाव से, अशान्ति से तथा कमी से पीडित रहते हैं।"[2]

उपर्युक्त कहानियाँ अधिकांशतया छायावादी भाव को लेकर लिखी गयी हैं। भाषा-शैली कथानक, शीर्षक, दृष्टि, चरित्र विधान, पात्रों के व्यक्तित्व वातावरण आदि सभी आयाम किसी न किसी रूप में छायावाद से प्रभावित रहे हैं। कहीं-कहीं पर प्रसाद के बिम्ब चित्रों को भारती ने अपनी कहानी में वैसा का वैसा ही उतार दिया है। भारती कवि हैं। अतः उनकी सभी कहानियों की भाषा प्रायः काव्यात्मक है। उदाहरण के लिये - "वह आँसुओं और चुम्बनों से बनी हुई जलपरी की तरह सुकुमार थी। उसकी कजरारी आँखों में मधुमास की शामें लहराती थीं और उसकी केसरिया उसासें ऐसी अलसौहीं अंगड़ाईयाँ लेती थीं जैसे पुरवैया वाले सावन की बूँदों से घायल हो जाय।"[3]

"मोतियों की किनारी वाला आँचल सर से खसक कर नीचे गिर गया था। करवट लेने से दब जाने वाली एक जुही की कली का चिह्न उसके गालों पर उभर आया था।"[4] भारती के

---

1. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 146
2. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर, पृ0 145
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 141
4. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 168-169

काव्य बिम्ब कहीं-कहीं पर अतिशयता के कारण प्रभावहीन हो गये हैं। दृष्टव्य है ये उदाहरण- "पूर्व दिशा में जब नीलम की डाल पर पहला किरण फूल फूला तो शिंजिनी किंजल्क को जगाने लगी।"[1] प्रस्तुत पंक्तियों में सूर्य की किरण को फूल कहना असंगत प्रतीत होता है। भारती की ये कहानियाँ नाट्यात्मकता के सहारे प्रस्फुटित होकर अन्त में विवरणात्मक हो जाती हैं। जैसे - "ऊँह, तू तो पल भर भी सीधा नहीं बैठता, दूसरे हाथ से वीणा के तारों को उलझे हुए राजहंस के पैरों को सुलझाते हुए श्रीरेखा झल्लाकर बोली।"[2]

"मैं विवश हूँ, राजकुमारी । मैं व्यक्तिमात्र नहीं हूँ।" कलाकार, मैं सुन्दरी हूँ और सुंदरी केवल व्यक्ति नहीं व्यक्तित्व होती है........।"[3]

'भूखा ईश्वर' तथा 'चाँद और टूटे हुए लोग' की कहानियां कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन कहानियों में भूख, गरीबी, बंगाल का अकाल, उच्च एवं निम्नवर्ग के प्रति भेदभाव, सरकारी कुप्रबन्ध, अंधविश्वास, गरीबों का शोषण, बंगाल के अकाल में भूख से छटपटाकर मरते हुए मनुष्यों के प्रति सरकारी कर्मचारियों की उदासीनता, देश-प्रेम आदि को उद्घाटित किया गया है। चाँद और टूटे हुए लोग की कहानियों के विषय में डॉ0 हरिवंश पाण्डेय ने अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट किया है - "इनमें नष्ट होती हुयी मनुष्यता, चाहे अंधविश्वास के कारण अथवा भूख और गरीबी के कारण का वर्णन किया गया है और अपने परिवेश के प्रति जागरूकता दिखाई गयी है किन्तु लेखक की दृष्टि इन कहानियों में उपदेश के ही धरातल पर हैं, रचना में घुली मिली नहीं है। इसीलिये जगह-जगह भावुकता उभर आयी है और पात्रों का चित्रण, अन्तर्द्वन्द्व के अभाव में सपाट और सीधी रेखाओं में हुआ है।"[4]

डॉ0 पुष्पा वास्कर की दृष्टि में भारती जी की कहानियों का कथ्य अधिकांशतः

---

1 चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 204
2. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 168
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 212
4. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 157-158

यथार्थ जीवन पर आधारित है वे लिखती हैं - "स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से लिखी गयी ये कहानियाँ अपने कथ्य को पाठकों तक बखूबी संप्रेषित करती है। कहानियों में नाटकीयता का तत्व प्रधान है। प्रायः सभी कहानियाँ एक ही स्थान पर आरम्भ हो खत्म हो जाती हैं। 'कुलटा' कहानी के सीमित पात्र एवं घटना स्थल का ऐक्य धुवाँ, मरीज नम्बर सात, युवराज, अगला अवतार, कहानियों के घटना स्थल, काल एवं सीमित पात्र नाटकीयता के तत्व की रक्षा करते हैं। आरम्भ, मध्य व अन्त की कथात्मक सीढ़ियाँ भी इन कहानियों में खोजी जा सकती हैं। तीसरे खण्ड में 'चाँद और टूटे हुए लोग' एक मात्र ऐसी कहानी है, जिसमें रूपक तत्व, कुछ अंशों में पाया जाता है, शेष कहानियाँ सरल ढंग से लिखी गई है।"[1]

इनकी भाषा बोलचाल की है। साथ ही उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। भारती ने चरित्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। भारती के ये पात्र जिस वातावरण से उपजे हैं वह वातावरण इनके व्यक्तित्व को सजीव और सरल बना देता है। इनकी भाषा सरल है किन्तु काव्यात्मक ढंग से निर्मित की गयी है। इनके कथोपकथन आकर्षक है। नाटकीयता से युक्त हैं। विश्लेषणात्मक और गत्यात्मकता है। मनोवैज्ञानिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता और व्यंजनात्मकता इनमें खूब है। विवरणात्मकता, पत्रात्मकता, आत्मनिवेदन आदि भी भारती की शैली में यथा स्थान प्राप्त है। भाषा-शैली की दृष्टि से इन कहानियों को निम्नांकित वर्गो में बाँटा जा सकता है -

1. विवरणात्मक प्रणाली : हरिनाकुस और उसका बेटा, मरीज नम्बर सात, युवराज, अगला अवतार, चाँद और टूटे हुए लोग, एक बच्ची की कीमत, आदमी का गोश्त आदि।

2. पत्रात्मक शैली : एक पत्र ।

3. आत्म निवेदन शैली : धुवां, कुलटा आदि ।

4. रूपात्मक शैली : भूखा ईश्वर, कमल और मुर्दे, आदमी का गोश्त ।

---

1. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर, पृ0 168

भाषा के सम्बन्ध में डॉ0 पुष्पा का मत अधिक संगत लगता है - "बोलचाल की भाषा की सजीवता एवं स्वाभाविकता, छोटे सरल वाक्य अंग्रेजी, उर्दू शब्द मिलते हैं। मुहावरे भी कम नहीं मिलते हैं। बिम्बों के माध्यम अपनी बात को भारती इन कहानियों में स्पष्ट से स्पष्टतर करते हैं। भाषा पर पूरा अधिकार होने के कारण लेखक अपने कथा प्रवाह को भावानुकूल गति में बहाता है। इनकी भाषा वातावरण, देश एवं पात्र की रूचि एवं स्वभाव को ध्यान में रखकर अपनी चोली बदलती है। गंवार पात्रों की भाषा गंवारू है, सुशिक्षित एवं मध्यवर्गीय पात्रों की साहित्यिक मंजी हुई। अर्थात् स्वाभाविकता, सहजता, प्रसाद एवं काव्यात्मकता भारती की भाषा में विशेष रूप से पाये जाते हैं।"[1] भारती की भाषा पात्रों के अनुकूल बोलती है। जल्लाद की भाषा द्रष्टव्य है- "देख औरत जात होकर जबान मत लड़ाया कर अक्किल न सऊर चली है सास्तारथ करने। अरे राजा लोग सूअर होते हैं तो सुअर क्यों नहीं राजा हो सकते हैं। मेरा तो राजा बेटा है।"[2]

भारती ने बिम्बों का निर्माण भी कहानियों में यथास्थान किया है। बिम्बों के माध्यम से बात को स्पष्ट करना इनकी प्रधान विशेषता रही है। यथा- "ये आदमीनुमा हड्डी के ढाँचे क्यों कीचड़ में पड़े रहते हैं।"[3]

"भूख ने इस गाँव के चारो ओर मौत के बीज बोये थे और आज सड़ी लाशों की फसल लहलहा रही है। कुत्ते, गिद्ध, सियार और कौवे उस फसल का पूरा फायदा उठा रहे थे।"[4]

कहा जा सकता है कि 'चाँद और टूटे हुए लोग' की कुछ कहानियों में कथानक स्थूल है। पर परवर्ती कहानियों में ये सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते गये हैं। इनकी कहानियों में कथ्य एवं शिल्प का सफल संयोजन हुआ है। कहानियों का प्रारम्भ, विस्तार और अन्त कलात्मक,

---

1. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर, पृ0 179
2. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 55
3. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 83
4. चाँद और टूटे हुए लोग, धर्मवीर भारती, पृ0 87

कुतूहलपूर्ण ढंग से हुआ है। अधिकांश कहानियों के कथ्य भाव-प्रवण और नाटकीय है। वर्णन-शैली बारीकी और व्यंजना से परिपूर्ण है। बिम्बों की सहायता से संवेदनशीलता उभारी गयी है। भाषा, चित्रोपम, मंजी हुई, प्रभावपूर्ण तथा अनूठे प्रतीक विधान और व्यंजना से युक्त है।

'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह की कहानियों का कथ्य एवं शिल्प प्रौढ़ तथा आकर्षक है। पात्र और घटनायें परिचित सी लगती है। इन कहानियों का प्रारम्भ किसी प्रसंग को लेकर बड़े नाटकीय ढंग से होता है। यथा -

"ऐ मर कलमुँहे !" अकस्मात् घेघा बुआ ने कूड़ा फेकने के लिये दरवाजा खोला और चौतरे पर बैठे मिरवा को गाते हुए देखकर कहा, "तोरे पेट में फोनोगिराफ उलियान बा का, जौन भिनसार भवा कि तान तोड़ै लाग? राम जानै रात के कैसन एकरा दीदा लागत है।" मारे डर के कहीं घेघा बुआ सारा कूड़ा उसी के सर पर न फेंक दे, मिरवा थोड़ा खिसक गया और ज्यों ही घेघा बुआ अन्दर गयीं कि फिर चौतरे की सीढ़ी पर बैठ, पैर झुलाते हुए उसने उलटा-सुलटा गाना शुरु किया, "तुमें बछ याद कलते अम छनम तेली कछम।"[1]

'सावित्री नम्बर दो' का प्रथम वाक्य ही सार्थक नाटकीयता से शुरु हुआ है- "हर बार पूछना चाहा है, मगर बार-बार चुप रही हूँ।"[2]

'यह मेरे लिए नहीं' और 'बन्दगली का आखिरी मकान' में भी प्रारम्भ नाटकीय है। प्रारम्भ की ये सभी कहानियाँ अपने-अपने ढंग से पाठकों को प्रभावित करती है। इनका कथ्य स्पष्ट और मानवीय है। काव्यात्मकता, नाटकीयता, भावुकता, अर्थपूर्णता, संक्षिप्तता, व्यंग्यात्मकता और विश्लेषणात्मकता आदि गुणों के कारण कथ्य और शिल्प में जो मार्दव

---

1. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ० 11
2. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ० 29

आया है, उसकी तुलना सिद्धहस्त लेखकों से बखूबी की जा सकती है। कहीं वह प्रसाद जी की याद दिलाता है, कहीं चतुरसेन शास्त्री की, कहीं शरत्चन्द्र की तो कहीं भगवती बाबू की।

भाव प्रवणता और काव्यात्मकता के कारण लेखक के कथानक अधिक सजीव और प्रभावशाली हो गये हैं - "अंजलि ने हरसिंगार के फूल लेकर, हाथ जोड़कर माथे से लगाकर श्रद्धापूर्वक बोला, "अहा ! क्या प्रेतनी छवि है।" अर्पणा ने बुरा नहीं माना। खिलखिलाते हुए एक मुट्ठी फूल और देते हुए बोली, "प्रेतनी नहीं पेतनी बोलो बोडदा पेतनी। नहीं समझे। बाँग्ला में उसे पेतनी कहते हैं। हिन्दी में पतनी।"[1]

संवादों की भाषा पात्रों के स्तर के अनुरुप होने से अधिक चुटीली बन गई है- "ऐ हैं।" बुआ हाथ चमकाकर बोली, "सौदा लगा है रानी साहब का। किरावा देय के दायीं हियाव फाटत है और टर्राय के दायीं नटई में गामा पहिलवान का जोर तो देखो। सौदा लगा है तो हम का करी। नारी तो इहै खुली।"[2]

संदर्भगत कहानियों की भाषा रोजमर्रा बोलचाल की है। मुहावरों-कहावतों का प्रयोग सोने में सुगन्ध का काम करता है यथा -

"कुबड़ी-कुबड़ी का हेराना ?"
"सुई हिरानी।"
"सुई लैके का करबे ?"
"कन्था सीबै ।"
"कन्था सीके का करबे ?"
"लकड़ी लाबै ।"
"लकड़ी लाय के का करबे?"
भात पकइबे ।"

---

1. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 66
2. बन्दगली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 19

"भात पकाय के का करबे?"

"भात खाबै ।"

"भात के बदले लात खाबे।"[1] (गुलकी बन्नो)

"जायें न तो क्या करें। सारा काम करा रही है बियाह का। सिलाई की मशीन भी है उनके यहाँ। तुम तो खाट पकड़कर पहुँड़ रहे, अब बिटवा का ब्याह का रोज-रोज होता है। ये न करो वो न करो, घर में पड़े मरते रहो।"[2]

(बन्द गली का आखिरी मकान)

'बन्द गली का आखिरी मकान' के सम्बन्ध में डॉ0 रामदरश मिश्र के कथन से इस परिच्छेद का समापन युक्तियुक्त होगा- "भारती की सभी कहानियाँ अपने-अपने ढंग से प्रमाणिक हैं। क्योंकि इन सबमें अनुभव की सघनता है और व्यक्ति तथा परिवेश के जीवन्त-सम्बन्धों का कलात्मक किन्तु सहज रचाव है, भाषा बड़ी खुली हुई व्यंजक है, उसके बिम्ब और प्रतीक परिवेश के अनुभवों से जुड़े हुए हैं तथा भारती की दृष्टि वस्तुवादी होकर भी मानवीय है, क्रूर नहीं है।"[3]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारती का कहानी साहित्य भी उनके काव्य की तरह मूल्य बोध से अनुप्राणित है। इनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि ये समाज की यथार्थ तस्वीर को हमारे सामने रखती है। ये कहानियाँ मानव मन की आस्था-अनास्था के बीच मूल्यों का संधान करती दिखाई देती हैं। इन कहानियों में भारती का मौलिक चिन्तन सर्वत्र दृष्टव्य है तथा प्रत्येक कहानी एक सार्थक सन्देश से युक्त है। ये कहानियाँ अपने चिन्तन, भाव, भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से परम्परागत कहानियों से सर्वथा पृथक, नूतन और मूल्य चेतना से युक्त है। इनकी कहानियों में भाषा का टटकापन और शिल्प की ताजगी सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

****

---

1. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 15-16
2. बन्द गली का आखिरी मकान, धर्मवीर भारती, पृ0 110
3. आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि; डॉ0 रामदरश मिश्र, पृ0 178

अध्याय पांच

अध्याय - पाँच

भारती के उपन्यास : जीवन मूल्य

1. गुनाहों का देवता : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और मूल्यों का विघटन
2. सूरज का सातवां घोड़ा : जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा

1. गुनाहों का देवता : आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और मूल्यों का विघटन :

'गुनाहों का देवता' एक दु:खान्त प्रेमकथा है। इसका नायक है चन्द्र कुमार कपूर जो अब रिसर्च-स्कालर है। चन्दर पर उसके सीनियर टीचर डॉ0 शुक्ला का बड़ा स्नेह है और वह उनके परिवार का सदस्य सा हो गया है। डॉ0 शुक्ला की एकमात्र कन्या सुधा है जो शुरु से ही चन्दर के स्नेह शासन में रही है जो अनायास उसके अनुराग में रंग उठी है। उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व चन्दरमय हो गया है। कुछ समय पश्चात सुधा के न चाहने पर भी उसकी शादी कैलाश से हो जाती है। सुधा की शादी हो जाने पर चन्दर में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है उधर सुधा भी अपने वैवाहिक जीवन से ऊब कर अपना जीवन ही खातम कर देती है। यही मुख्य कथा है।

बिनती, गेसू, पम्मी और बर्टी की प्रासंगिक कथाएं भी हैं बिनती डॉ0 शुक्ला की भान्जी है। इसके पिता बचपन में ही स्वर्ग सिधार गये थे इसलिये वह अपनी माँ की गालियों को मूक भाव से सहन करती रहती थी। यह गाँव में पली बढ़ी थी, वह सुधा के प्रति अत्यधिक स्नेह, चन्दर के लिये पूज्य प्रेमानुराग के साथ उसके चुलबुलेपन का सरस वर्णन हुआ है।

गेसू एक शायर होते हुए भी वह यथार्थलोक से परिचित है। अपने प्रेम में असफल होने पर वह जीवन भर शादी न करने का व्रत लेती है तथा नर्स की नौकरी कर समाज सेवा करने लगती है।

पम्मी प्रेम एवं जीवन के कटु अनुभवों से आहत है। अतृप्त प्रेमवासना का शिकार होती है। अन्त में अपने पति के पास चली जाती है। बर्टी अपनी प्रेमिका द्वारा प्रवंचित होकर पागल हो जाता है इसमें उसके हृदय की वेदना अत्यंत कारुणिक है। सुधा की जिस कारुणिक रूप में प्रस्तुत उपन्यास में मृत्यु प्रदर्शित है उसमें उसका मानसिक उतार-चढ़ाव व्यतीत घटनाओं की पुनः स्मृति से होता है। उपन्यास सुधा की मृत्यु के पश्चात् चरम पर पहुँचता है।

धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' दोनों मौलिक उपन्यास है। 'गुनाहों का देवता' आदर्शोन्मुख यथार्थवादी सामाजिक उपन्यास है। भावनात्मक मूल्य, वासनात्मक मूल्य तथा वासना एवं प्रेम सम्बन्धी मूल्य दृष्टि भारती के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः भारती ने 'गुनाहों का देवता' में प्रेम, वासना, अन्तर्द्वन्द्व, घुटन, दमन, अतृप्ति और कुण्ठा जैसे निषेधमूलक भावों या विषयों पर भी अपनी मूल्य चेतना का आरोपण किया है। इसी कारण उनके उपन्यास किसी महान विचारों या विशिष्ट लक्ष्य या महान पात्रों के अभाव में भी मूल्यवान हैं। नये कवि या रचनाकारों की यह विशिष्ट पहचान है कि वे सहज और सामान्य कथा प्रसंगों साधारण पात्रों एवं सामान्य विषयों पर भी श्रेष्ठ कवितायें, कहानी या उपन्यास लिख देते हैं। भारती के उपन्यासों में वस्तुतः अपकर्षक भाव भी अपनी मूल्य दृष्टि के कारण उत्कर्ष बन पड़े हैं। आधुनिक युग-चेतना के बहुस्तरीय जटिल यथार्थ को प्रेम और वासना के परिप्रेक्ष्य में व्याप्त समस्याओं का विस्तृत चित्रण हुआ है। इस संदर्भ में डॉ० एन०के० जोसफ का मत है -

"प्रेम के आदर्शवादी, सूक्ष्म और अशरीरी रूप तथा उसके मांसल, शरीरी एवं भौतिक रूप की द्वन्द्वात्मक स्थितियाँ, उन स्थितियों से उत्पन्न बिखराव, घुटन और टूटन का चित्रण, करना इस कृति की मूल समस्या है। उपन्यास की इस मूलभूत समस्या के साथ अन्य कई समस्यायें भी जुड़ी हैं, पर उपन्यास का केन्द्रीय बिन्दु व्यक्तिगत स्तर पर नर-नारी सम्बन्ध है। नर और नारी के विभिन्न सम्बन्धों के पात्रों के चरित्र-चित्रण विकास तथा समाज की परिस्थितियों के संघात के संदर्भ में चित्रित किया गया है।"[1]

इस उपन्यास के आधार स्तम्भ चन्दर तथा सुधा दोनों मुख्य पात्र हैं। डॉ० शुक्ला, कैलाश, बर्टी, गेसू, पम्मी और बिनती आदि गौण पात्र हैं। इसमें मध्यवर्गीय यथार्थ जीवन की मानसिक उहापोह का चित्रण हुआ है। सुधा और चन्दर दोनो के मन में धीरे-धीरे अनुराग होता है किन्तु वे दोनों ही अपने मन के इस प्यार से अपरिचित हैं। दोनों ही प्रेम को

---

1. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना, डॉ० एन०के० जोसफ, पृ० 13।

काल्पनिक स्तर पर स्वीकार करते हैं और शरीर को महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं। जब सुधा का विवाह कैलाश के साथ हो जाता है तो चन्दर में एक विचित्र परिवर्तन आ जाता है और वह कल्पना लोक से उतरकर यथार्थ पर विचरण करने लगता है। सुधा डॉ0 शुक्ला की पुत्री है। डॉ0 शुक्ला विवाह के सम्बन्ध में जाति, कुल, मर्यादा आदि के विषय में पुराने-विचारों के हैं अतः वे सुधा का ब्याह शाहजहाँपुर के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार के कैलाश मिश्र से कर देते हैं। इसी समय सुधा इस विवाह का भरपूर विरोध करती है वह उसे 'वधस्थल' मानती है। अन्ततोगत्वा डॉ0 शुक्ला के सम्मान और चन्दर के आग्रह के कारण वह विवाह करने के लिये राजी हो जाती है। सुधा का विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् चन्दर को यथार्थ स्थिति का ज्ञान होता है तब वह उसका सामना नहीं कर पाता है और उसका मन बेहद अशान्त और अतृप्त रहने लगता है। क्योंकि वह अहंवादी है। इसीलिये उसके चेतन और अचेतन मन में वासना और भावना के बीच संघर्ष उमड़ता है क्योंकि भावना जीवन का आदर्श है और वासना उसका यथार्थ दोनों को स्वीकार. करने के लिये वह छटपटाता है।

डॉ0 सुषमा धवन ने ठीक ही कहा है -

"आधुनिक शिक्षित मध्यमवर्गीय समाज में कुंठा एवं निराशा से आक्रान्त व्यक्ति किस प्रकार अपने आदर्शों को स्थिर रखाने के लिये छटपटाता है इसका सूक्ष्म चित्रण मनोवैज्ञानिक तथा काव्यात्मक शैली में किया है।"[1]

भारती जी की यही तो विशेषता है कि उन्होंने कुंठा और निराशा में आदर्शात्मक मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास किया है।

चन्दर सुधा को उपदेशक की भाँति मूल्यों के पालन करने के लिये प्रेरित करता है पर स्वयं मूल्यों के प्रति निष्ठावान नहीं है। इसीलिये उसकी आत्मा उसको धिक्करती हुई कहती है -

---

1. हिन्दी उपन्यास, डॉ0 सुषमा धवन, पृ0 258-259

"तुम ईमानदार नहीं हो, तुम शक्तिशाली नहीं हो, लेकिन तुम अन्तर्मुखी रहे, घोर व्यक्तिवादी रहे, अहंकारग्रस्त रहे। अपने मन की विकृतियों को भी तुमने अपनी ताकत समझने की कोशिश की। कोई भी जीवन दर्शन सफल नहीं होता अगर उसमें बाह्य यथार्थ और व्यापक सत्य धूप-छाँह की तरह न मिला हो। मैं मानता हूँ कि तूने सुधा के साथ ऊँचाई निभायी, लेकिन अगर तेरे व्यक्तित्व को, तेरे मन को, जरा-सी ठेस पहुँचती तो तू गुमराह हो गया होता। तूने सुधा के स्नेह का निषेध कर दिया। तूने विनती की श्रद्धा का तिरस्कार किया। तूने पम्मी की पवित्रता भ्रष्ट की।"[1]

चंदर में यह सब उसके अहं के ही कारण है। डॉ0 वार्ष्णय के शब्दों में -

"चन्दर में अहं ही अहं है, जिसकी तुष्टि के लिये वह सुधा की बलि चढ़ा देता है। यदि हम चन्दर का मनोविश्लेषण करें तो हम पायेंगे कि चंदर कुंठाग्रस्त युवक है। वह अपने अहं की तुष्टि के लिये गुनाह करता चला जाता है।"[2]

इस उपन्यास में मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यक्ति के भावनात्मक और वासनात्मक तथा मनुष्यत्व एवं देवत्व के बीच मानसिक ऊहापोह का चित्रण किया है। इसीलिये रणवीर राग्रा ने इस उपन्यास के संदर्भ में लिखा है -

"इस उपन्यास में मानव मन की गहराइयों में उतरकर इस मनोवैज्ञानिक सत्य को खोज निकाला है कि स्नेह और वासना, भावना और शरीर की प्यास एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं, एक जीवन का आदर्श है तो दूसरा उनका यथार्थ। शरीर की प्यास भी उतनी ही स्वाभाविक है जितनी कि आत्मा की पुकार। दोनों में से एक को भी दबाने का अर्थ है, अनिष्ट को बुलाना।"[3]

---

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 207
2. हिन्दी उपन्यासों में नायक, डॉ0 कुसम वार्ष्णेय, पृ0 178
3. समसामयिक हिन्दी साहित्य- सं0 डॉ0 हरिवंशराय बच्चन, डॉ0 नगेन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, पृ0 187

डॉ0 गणेशन भी इसी भावना का विश्लेषण करते हुए लिखा है -

"गुनाहों का देवता में चंदर काम अभुक्ति की प्रतिक्रिया का नमूना है। सुधा बाल्यकाल में ही चन्दर की आत्मा बन जाती है। उनमें शैशवी यौन आकर्षण है जो बाह्य क्रियाओं की (Intantile Sexuality) सीमा तक नहीं पहुँचता जो केवल मानसिक विचार के रूप में रहता है, शारीरिक बनकर गहरी चेतना को उत्तेजित नहीं करता, एक तरह प्लेटोनिक प्रेम।"[1]

चन्दर को पम्मी के साथ रहकर यह आभास होता है कि सेक्स ही प्यार है क्योंकि वासनाहीन व्यक्ति कुंठित हो जाता है इसीलिये वह इसे अनिवार्य मानते हुए विनती से कहता है-

"सेक्स ही प्यार है, प्यार का मुख्य अंश है, बाकी सभी कुछ उसकी तैयारी है, उसके लिए एक समुचित वातावरण और विश्वास का निर्माण करना है।"[2]

इस उपन्यास में भावुकता अधिक है साथ ही गहन चिंतन का अभाव है। सुधा का अपने दाम्पत्य जीवन में सहयोग न करना तथा सेक्स के प्रति अरुचि अति आदर्शवादी कल्पना है इसमें यथार्थ होना चाहिये था जो नहीं हुआ। अस्तु भारती का यह उपन्यास आदर्शवादी मूल्य चेतना से अनुप्राणित है, इसीलिये कहा गया है -

"अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है। डॉ0 साहब चन्दर पर जितना विश्वास करते थे, सुधा चन्दर पर जितना विश्वास करती थी और इधर विनती उस पर जितना विश्वास करने लगी थी उसके कारण चन्दर के चरित्र में इतनी दृढ़ता आ गयी थी कि वह फौलाद बन गया था। ऐसे अवसरों पर जब मनुष्य को गम्भीरतम उत्तरदायित्व सौंपा जाता है तब स्वभावतः आदमी के चरित्र में एक विचित्र-सा

---

1. हिन्दी उपन्यास साहित्य : एक अध्ययन, डॉ0 गणेशन, पृ0 211
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 160

निखार आ जाता है। यह निखार चन्दर के चरित्र में उभरकर आया था।"[1]

उपर्युक्त कथन का आशय यह है कि चन्दर के व्यक्तित्व में डॉ0 शुक्ला, सुधा और विनती का प्रेम और स्नेह पाकर ही निखार आया है अतः चन्दर ने समाज की परम्परा के लिए ही अपने प्रेम को बलिदान कर दिया है और वह डॉ0 शुक्ला के प्रति पूर्ण ईमानदारी से अपने कार्य को सम्पूर्ण करता है और अन्त में डॉ0 शुक्ला चन्दर के व्यवहार से खुश होकर ही अपने विचारों को परिवर्तित करते हुए कहते हैं -

"सचमुच यह जाति, विवाह सभी परम्पराएँ बहुत ही बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी है। उन्हें तो काट फेंकना चाहिए। मेरा तो वैसे ही इस अनुभव के बाद सारा आदर्श ही बदल गया।"[2]

जाति विवाह के घोर समर्थक डॉ0 शुक्ला अन्त में अन्तर्जातीय विवाह करने के लिये राजी हो जाते हैं। मरते वक्त सुधा भी चन्दर से विनती का विवाह सम्बन्ध करने को कह जाती है। जब चन्दर सुधा की राख विसर्जित करने जाता है, तो उसके साथ विनती भी जाती है वहीं पर चन्दर सुधा की चिता की राख से विनती की माँग भर देता है तथा डॉ0 शुक्ला स्वयं ही चन्दर और विनती का विवाह सम्पन्न करा देते हैं। पारिवारिक जीवन मूल्यों का ह्रास भले ही हो रहा हो लेकिन उसकी उपयोगिता और आवश्यकता आज भी कम नहीं हुई है क्योंकि परिधानों की तरह न तो संस्कार बदले जाते हैं और न ही जीवन मूल्य। वैवाहिक बंधनों को आज भी पवित्र और अटूट माना जाता है। भारत की संस्कृति सीता, सावित्री की संस्कृति है जिसमें भारतीय जीवन-मूल्यों की अमरबेल मिली है। इसीलिए भारती जी ने पम्मी के माध्यम से यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि प्रेम से ज्यादा पत्नीत्व स्थायी होता है। इसीलिए पम्मी कहती है -

---

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 145
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 179

"उसके पास पत्नीत्व के सिवा कोई चारा नहीं।...... प्यार से तो मेरा विश्वास जैसे उठा जा रहा है, प्यार स्थायी नहीं होता। वरन् धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है। शायद इसीलिए हिन्दू प्रेम के बजाय विवाह को अधिक महत्व देते हैं।"[1]

भारती जी इसमें भारतीय धर्म की स्थापना करते हैं।

प्रेम के सम्बन्ध में सुधा की अपनी दृष्टि है। ये आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास करती है। इसके आधार हैं तपस्या, लगन, साधना और विश्वास। सुधा चन्दर से कहती है -

"मुझे गीता और रामायण में बहुत सन्तोष मिला। अगर कोई हिन्दू धर्म की इन किताबों को ध्यान से पढ़े तब वह जाने, क्या है इनमें। जाने कितनी ताकत देती हैं ये। अभी तक जिन्दगी में मैने यह सोचा है कि पुरुष हो या नारी, सभी के जीवन का एकमात्र सम्बल विश्वास है और इन ग्रन्थों में सभी संशयों को मिटाकर विश्वास का इतना गहन उपदेश है कि मन पुलक उठता है।"[2] सुधा आध्यात्मिक कार्यों में मन लगाती है। भारती ने यहाँ आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास किया है।

डॉ0 एन0के0 जोसफ ने भी लिखा है -

"सुधा अपने मन को 'भागवत' और 'मानस' जैसे धर्मग्रन्थों में मन को रमाने का प्रयास करती है। वह तन से कैलाश की होकर भी मन से उसकी नहीं हो सकी। अपने तीक्ष्ण मानसिक संघर्ष में वह भक्तिपूजा में आश्रय की खोज करती है और उसके मन को सहारा भी मिल जाता है।"[3]

---

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 202
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 22।
3. हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना, डॉ0 एन0के0 जोसफ, पृ0 133

सुधा को ईश्वर पर अब पूर्ण आस्था है इसलिये वह नैतिक अनैतिक दोनों विचारों से ऊपर उठकर चन्दर से कहती है -

"चन्दर, शरीर की प्यास भी उतनी ही पवित्र और स्वाभाविक है जितनी आत्मा की पूजा। आत्मा की पूजा और शरीर की प्यास दोनों अभिन्न हैं। आत्मा की अभिव्यक्ति शरीर से है, शरीर का संस्कार, शरीर का सन्तुलन आत्मा से है। जो आत्मा और शरीर को अलग कर देता है वही मन के भयंकर तूफानों में उलझकर चूर चूर हो जाता है। चन्दर, मैं तुम्हारी आत्मा थी। तुम मेरे शरीर थे।"[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन के विकास के लिये आत्मा और शरीर दोनों का समन्वय आवश्यक हैं। इसमें एक के न होने पर व्यक्ति कुंठा का शिकार हो सकता है। सुधा और चन्दर इसी कारण दुःखी रहते हैं सुधा को पहले सेक्स से चिढ़ थी जो कि विवाह की अनिवार्य परिणति थी। इस परिस्थिति में वह अपने व्यक्तित्व के विकास मार्ग को अवरूद्ध कर देती है। चन्दर यह जानते हुए भी सुधा कैलाश की पत्नी वह उससे शारीरिक सुख की माँग करता है तो सुधा कहती हैं -

"चन्दर मैं किसी की पत्नी हूँ। यह जन्म उनका है। यह माँग का सिन्दूर उनका है। इस शरीर का श्रृंगार उनका है। मुझे गला घोंटकर मार डालो। मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी है। लेकिन.......। "[2]

यहाँ पर भारती जी ने भारतीय परम्परा का पूर्ण निर्वाह किया है।

चन्दर का अहं सुधा पर चोट करता है और कहता है जाओ सुधा मैं तुमसे मजाक कर रहा था। तुम्हारे जूठे मन में रखा ही क्या है। चन्दर की इस दशा का कसूरवार सुधा अपने को मानती है -

---

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 222
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ0 205

"चन्दर, तुम जानवर हो गये, मैं आज कितनी शरमिन्दा हूँ। इसमें मेरा कसूर है, चन्दर । मैं अपने को दण्ड दूँगी, चन्दर । मैं मर जाऊँगी । लेकिन तुम्हें इनसान बनना पड़ेगा।"[1]

सुधा और चन्दर दोनों असफल प्रेमी और अहं मंडित हैं। इसमें एक का विनाश दूसरे के निर्माण के लिये होता है। इसीलिये सुधा अपना जीवन चन्दर के निर्माण के लिये नष्ट कर देती है। यही तो सुधा के प्रेम की मूल्यचेतना है। यहीं भारती का प्रेम सम्बन्धी मूल्यबोध दृष्टिगोचर हुआ है। स्वयं को मिटाकर अपने प्रिय पात्र को कुछ दे जाना ही इस प्रेम का मूल्यवान होना है।

प्रमिला डिकूज का अपना स्वतंत्र जीवन दर्शन है, वह जीवन के यथार्थ को स्वीकार करती है। पहले पम्मी विवाह संस्था का विरोध करती है और बौद्धिक मित्रता को स्वीकार करती है। लेकिन फिर वह यथार्थ का ज्ञान होने पर कहती है -

"खुले आकाश में इधर-उधर भटकने के बाद, तूफानों से लड़ने के बाद मैं कितनी आतुर हो उठी हूँ बन्धनों के लिये और किसी सशक्त डाल पर बने हुए सुखद, सुकोमल, नीड़ में बसेरा लेने के लिये जिस नीड़ को मैं इतने दिनों पहले उजाड़ चुकी थी, आज वह फिर मुझे पुकार रहा है। हर नारी के जीवन में यह क्षण आता है और शायद इसीलिये हिन्दू प्रेम के बजाय विवाह को अधिक महत्व देते हैं।"[2]

गेसू आदर्शवादी होते हुए भी जीवन के यथार्थ से संघर्ष करते हुए अपनी आस्था बनाये रखती है।

बर्टी अपने जीवन में निषेध को महत्वपूर्ण मानता है। डॉ० हुकुचन्द राजपाल चन्दर के चरित्र की प्रशंसा में लिखते हैं।

---

1. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ० 205
2. गुनाहों का देवता, धर्मवीर भारती, पृ० 202

"चन्दर के चरित्र के आरम्भ में प्रेम में आदर्श, त्याग एवं संयम है इसीलिये वह कर्तव्यपरायण की भांति सुधा को विवाह के लिये विवश करता है यह जानते हुए भी कि वह उसके बिना नहीं रह सकेगी। तथाकथित आदर्श कई व्यक्तियों का हनन करता है। चन्दर तथा सुधा के जीवन में बिखराव तो आता ही है साथ ही इसका भोगी पम्मी एवं कैलाश को भी बनना पड़ता है।"[1]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारती जी ने मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त सामाजिक बुराईयाँ, रीति-रिवाज, रूढ़ियों, परम्परा, अंधविश्वास आदि के बीच परम्परागत एवं समकालीन मूल्यों का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया है।

2. सूरज का सातवाँ घोड़ा : जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा

डॉ0 धर्मवीर भारती द्वारा रचित 'सूरज का सातवाँ घोड़ा एक प्रयोगात्मक लघु उपन्यास है। जो सात कहानियों में समाहित आधुनिक युग की निम्न मध्यवर्गीय चेतना को व्यक्त किया गया है। पात्रों में एक तरफ घोर सामाजिक तथा आर्थिक विषमता है तो दूसरी तरफ कामवासना का प्रबल और विकृत रूप है। माणिक मुल्ला इस उपन्यास के प्रधान पात्र हैं अपने घर में बच्चों को प्रतिदिन एक कहानी सुनाते हैं यह प्रक्रिया लगातार सात दिन तक चलती है। इन कहानियों में जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा तथा अडिग आस्था ही सूरज का सातवाँ घोड़ा है। अज्ञेय जी ने 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' की भूमिका में कहा है -

"जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आंकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें जिस पर होकर भविष्य का घोड़ा आयेगा।"[2]

उपोद्घात शीर्षक के अन्तर्गत लेखक माणिक मुल्ला के परिचय और अनेक घटनाओं के द्रष्टा होने में समाप्त होता है। उपन्यास के आरम्भ में 'पहली दोपहर' में 'नमक की

---

1. धर्मवीर भारती, साहित्य के विविध आयाम, डॉ0 हुकुमचन्द्र राजपाल, पृ0 139
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, भूमिका से

अदायगी की कहानी सुनाई जाती है। अर्थात् जमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया। इसमें बीस वर्षीय जमुना का पन्द्रह वर्ष के माणिक को नमक के पुए खिलाकर अपने पास बुलाने तथा बातचीत करने का वर्णन है।

'दूसरी दोपहर' माणिक ने जो कहानी कही वह है - 'घोड़े की नाल', अर्थात् घोड़े की नाल जमुना के लिये सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई। इसमें जमुना के चरित्र का वर्णन किया गया है। जमुना का विवाह वृद्ध और धनी पुरुष से हो जाने के कारण उसकी ऊपरी पतिनिष्ठा तथा पूजा पाठ तथा रामधन ताँगे वाले के साथ गुप्त सम्बन्ध एवं पुत्र प्राप्ति पति की मृत्यु, रामधन का कोठी में रहना आदि की चर्चा हुई है।

'तीसरी दोपहर' को बिना शीर्षक की कहानी माणिक ने कही इसमें जमुना के प्रिय साथी तन्ना, जिसके साथ वह विवाह की सुखाद कल्पनायें किया करती थीं। जमुना के साथ विवाह न होने पर उसकी दुःखाद कहानी कही गयी है। तन्ना आर्थिक संघर्ष की मार से परेशान तथा परिवार से सामंजस्य न बिठा पाने के कारण उनकी दशा अत्यन्त कारुणिक हो जाती है।

'चौथी दोपहर' में माणिक ने 'मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी" का बखान किया। इसमें माणिक और लीला के इन्द्रधनुषी रूमानी प्रेम तथा तन्ना के साथ लीला के विवाह का विवरण है।

'पाँचवी दोपहर' में माणिक ने 'काले बैंत का चाकू' नामक कहानी सुनायी। इसमें सत्ती के साथ चमन ठाकुर तथा महेसर दलाल की कामलोलुपता का वर्णन है।

'छठी दोपहर' के अन्तर्गत 'क्रमगत' शीर्षक में 'पिछली दोपहर' से आगे की कहानी कही गयी है।

इसमें सत्ती माणिक को हृदय से प्यार करती थी लेकिन माणिक ने उसके साथ विश्वासघात किया तो वह उसके खून की प्यासी हो गयी। माणिक को अपने कार्यो के कारण आत्मग्लानि हुई लेकिन सत्ती को अचानक जीवित देखकर उनके हृदय का बोझ उतर गया, और उन्होंने तन्ना की जगह पर आर0एम0एस0 में नौकरी कर ली। 'सातवीं दोपहर' को माणिक ने जो कहानी सुनाई उसका शीर्षक था 'सूरज का सातवाँ घोड़ा'। इसमें माणिक ने सूरज के सात घोड़ों का तात्पर्य स्पष्ट किया है। ये सभी कहानियाँ माणिक मुल्ला के व्यक्तित्व से जुड़ी हैं। इन कहानियों में मूल रूप से प्रेम नहीं है। वरन हर जिन्दगी के यथार्थ का चित्रण है जिसमें वर्तमान समय की आर्थिक विषमता, अतृप्त वासना, नैतिक विश्रृंखलता आदि व्याप्त है।

माणिक मुल्ला वर्तमान युग के एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। अत्यधिक घुटन-संत्रास और अन्तर्द्वन्द्व के बावजूद भी उसके जीवन में नये स्वप्न और आशा तथा जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा विद्यमान है। इसीलिये भारती जी ने लिखा है - "पर कोई न कोई चीज ऐसी है जिसने हमेशा अंधेरे को चीरकर आगे बढ़ने, समाज-व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो, चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा, उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह से आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।"[1]

समाज में मध्यवर्गीय लोगों की घुटन, अनास्था, आर्थिक विषमता, नैतिक पतन, निराशा, कटुता तथा अनैतिकता आदि से निकलने तथा समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा भारती जी ने अपने उपन्यासों में दी है जीवन के प्रति अडिग आस्था को बनाये रखने के लिये भारती जी ने माणिक मुल्ला से कहलाया-

'वही 'सातवाँ घोड़ा' जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है ताकि हम वह रास्ता बना सकें, जिस पर होकर भविष्य का घोड़ा आयेगा।"[2]

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 109
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, भूमिका

माणिक जीवन-धारा से कटा हुआ उदासीन व्यक्ति है। उसमें साहस, कर्मण्यता और दृढ़ता का अभाव है। डॉ0 प्रेम भटनागर का कथन उचित प्रतीत होता है -

"माणिक-मुल्ला जमुना वार्ता में झिझक, भय, आशंका, और चिन्ता आज के निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति की निराशा, घुटन और कटुता के प्रतीक हैं। माणिक की कायरता और भावुकता मध्यवर्गीय युवक प्रेमी की जानी-पहचानी बातें हैं जिनमें साहस, कर्मण्यता और दृढ़ता का अभाव है। उसे स्वर्णिम स्वप्न तो अच्छे लगते हैं किन्तु प्रेम-पथ की बाधायें, भूसे में से निकल रहे सांप और बिच्छू की भाँति कचोटते दीख पड़ते हैं, जिनकी कल्पना से ही उसे पसीना छूट जाता है।"[1]

वर्तमान में व्यक्ति के अन्दर मानवीय मूल्यहीनता बढ़ती जा रही है। वह एक साथ कई टुकड़ों में बंटकर जी रहा है। पारिवारिक सम्बन्धों में इतनी तेजी से बदलाव आया कि हमारा नैतिक स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। हमारी संवेदनायें शून्य हो गयी हैं। युवा मन कुंठा निराशा से भर गया है। क्योंकि नैतिकता, ईमानदारी और विश्वास जैसी कोई चीज ही नहीं रही है। सारे सम्बन्धों की नींव अर्थ ही जान पड़ती है। जमुना, लीला, और सत्ती समाज के कठोर नियमों, रूढ़ियों और आर्थिक विषमता के कारण ही वे अपने आदर्श प्रेम को प्राप्त करने में असफल हो जाती है। आज के युग में अर्थ की महत्ता सर्वोपरि प्रतीत होती है। इसीलिये भारती जी ने ठीक ही लिखा है -

"वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे मन पर इतना अजब सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम जैसे लोग न उच्चवर्ग के हैं न निम्नवर्ग के, उनके यहाँ रूढ़ियाँ परम्परायें, मार्यादाए भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यंत्रमात्र रह जाते हैं। हमारे अंदर उदार और ऊँचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।"[2]

---

1. हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य, डॉ0 प्रेम भटनागर, पृ0 306
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 56

जिसमें आज का मध्यवर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष और नैतिक विश्रृंखलता, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, कुरीतियाँ थोथी अहमान्यता आदि। ये मध्यवर्गीय परिवार की ज्वलन्त समस्यायें हैं।

"जमुना निम्न मध्यवर्ग की एक भयानक समस्या है। आर्थिक नींव अत्यंत खोखली हैं, जिसके कारण विवाह, परिवार, प्रेम आदि सभी की नींवे हिल गयी हैं। समाज के अंदर जो घोर अनैतिकता का वातावरण छाया हुआ है, उसकी ओर लोगों की दृष्टि नहीं जा रही है, बल्कि लोगों ने उस ओर से अपनी आँखो मूँद ली हैं जब तक पूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदल नहीं दी जाती तब तक इस सामाजिक विषमता के अंदर समन्वय स्थापित हो ही नहीं सकता।"[1]

उपर्युक्त कथन के संदर्भ में हम कह सकते हैं कि हमारे समाज में व्याप्त आर्थिक नींव अत्यन्त खोखली है। उससे हम अपना जीवन निर्वाह तो कर सकते हैं पर सही मायने में जीवन को जी नहीं सकते हैं। लेकिन मनुष्य ने अपने जीवन में अर्थ को इतना महत्वपूर्ण मान लिया है कि उसकी आत्मा तक मर गयी है यहाँ तक कि वह अर्थ की प्राप्ति के लिये घिनौना से घिनौना कार्य करने में संकोच नहीं करता है। मानवता उससे कोसों दूर है। अर्थ की प्रधानता के सम्बन्ध में डॉ0 त्रिभुवन लिखाते हैं -

"मानव जीवन के अन्दर अर्थ इतना प्रधान हो गया है कि मानवता उससे दूर हो गयी है। स्त्री का व्यापार करने वाले अथवा उसके शरीर-साध्य धन पर जीवन-निर्वाह करने वाले मनुष्यों की आत्मा इसलिये मर गई है कि मनुष्य के जीवन में "अर्थ" प्रधान हो उठा है। 'सत्ती' ऐसी कितनी युवतियों का क्रय-विक्रय समाज में आये दिन होता रहता है।"[2]

हमारी भारतीय संस्कृति की परम्परायें, रीति-रिवाज, आदर्श प्रेम आदि आर्थिक संघर्ष के कारण सभी झूठे प्रतीत होने लगते हैं। तभी भारती जी ने कहा है -

---

1. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ0 त्रिभुवन सिंह, पृ0 263
2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ0 त्रिभुवन सिंह, पृ0 264

"आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम, सभी की नींवें हिल गयी हैं। अनैतिकता छायी हुई है। पर सब उस ओर से आँखे मूँदे है। असल में पूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी ।"[1]

मक्खनलाल शर्मा ने प्रेम की मार्क्सवादी व्याख्या करते हुए अपना वक्तव्य इस प्रकार दिया है -

"प्रेम समाज-निरपेक्ष और व्यक्तिगत नहीं है, वरन् वह तो सदैव आर्थिक व्यवस्था के अनुरुप चलता है।"[2]

अक्सर यह देखने में आता है कि यदि समाज या व्यक्ति की आर्थिक व्यवस्था ठीक है तो प्रेम सफल होता है नहीं तो असफल हो जाता है, आज अर्थ की प्रधानता है, जिसके पास अर्थ है, वही सभी भौतिक सुख साधन तथा सबकुछ प्राप्त कर सकता है। वर्तमान का अवलोकन करने पर हमें ज्ञात होता है कि मानवीय संवेदनायें भी अर्थ से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती हैं। इसीलिये भारती जी ने लिखा है -

"प्रेम-भावना की नींव आर्थिक सम्बन्धों पर है और वर्ग संघर्ष उसे प्रभावित करता है।"[3]

कुछ हद तक यह सही प्रतीत होता है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है लेकिन इससे भी बढ़कर कोई चीज है इसीलिये भारती जी ने कहा है -

"व्यक्ति को तो हर हालत में ईमानदार बना रहना चाहिये। यह नहीं कि वह टूटता-फूटता चला जाये।"[4]

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 50
2. हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा, डॉ0 मक्खनलाल शर्मा, पृ0 318
3. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 36
4. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 56

माणिक का चरित्र समाज की यथार्थता को स्पष्ट करने के लिये अपने आप में पूर्ण है क्योंकि माणिक के चरित्र से हमारा पूरा समाज जुड़ा हुआ है। हमारी जिन्दगी में गंदगी और कीचड़ इतना छिपा है कि उस पर न तो दिल खोलकर हँस सकते हैं न रो सकते हैं। पर जो लोग हँसना सीख जाते हैं। वे कभी हँसते-हँसते अपनी पूरी जिन्दगी ही जमुना की तरह बदल डालते हैं -

"........ पर जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी झूठी मर्यादाओं को भी· क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते, अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।"[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि देखने में ये कहानियाँ प्रेम कहानियाँ लगती हैं किन्तु इनमें प्रेम सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान समाज के सम्पूर्ण परिवेश के अंदर बनते-बिगड़ते सम्बन्धों को बड़ी सच्चाई से पेश किया गया है। एक ओर महेसर दलाल, चमन ठाकुर, तथा रामधन आदि धूर्त लोग सुखी हैं तो दूसरी ओर तन्ना और सत्ती जैसे ईमानदार लोग दुःखी हैं, इनका शोषण होता है। इन सबके बावजूद भी वह अपनी परम्परा और कर्तव्य को पूरी ईमानदारी से निभाते हैं -

"तन्ना थे ईमानदार आदमी और उन्होंने साफ कह दिया कि पिता, कुछ भी हो, आखिरकार पिता हैं। उनकी सेवा करना उनका धर्म है।"[2]

भारती जी ने तन्ना के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करवाना चाहते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति के सभी गुण तन्ना में मौजूद हैं। तन्ना का स्वभाव अत्यन्त सीधा, विनम्र और सच्चरित्र था। ये आदर्श के प्रतिमूर्ति थे।

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 56
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 60

जमुना, सत्ती, तन्ना, माणिक आदि सभी पात्र कहीं न कहीं जीवन संघर्षों से निरन्तर जूझते-टकराते रहते हैं लेकिन प्यार एक ऐसी चीज है जो आदमी को पवित्रता और निष्ठा से आप्लावित कर देती है क्योंकि -

"प्यार आत्मा की गहराईयों में सोये हुए सौन्दर्य के संगीत को जगा देता है, हममें अजब सी पवित्रता, नैतिक निष्ठा और प्रकाश भर देता है आदि-आदि।"[1]

ये आत्मा ही व्यक्ति को उच्च से उच्चतर की ओर ले जाती है। इससे ही व्यक्ति में बल, प्रकाश और प्रेरणा मिलती है- तथा प्यार आत्मा की गहराईयों में सोये हुए सौन्दर्य के संगीत को भी जगा देता है। प्यार में ऐसी शक्ति है। जिसने हमेशा अंधेरे को चीरकर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुनः स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह हो, चाहे कुछ और। विश्वास, साहस सत्य के प्रति निष्ठा, उस प्रकाशग्राही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा और साहस होना चाहिये। इस उपन्यास में भारती जी ने करुणा, संवेदना, सहानुभूति तथा समता जैसे मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इसकी अभिव्यक्ति डॉ0 हरिवंशराय पाण्डेय ने इन शब्दों में की है -

"अपने समाज के निम्न मध्यवर्ग की झूठी नैतिकता और आर्थिक संघर्ष तथा उसमें व्याप्त घोर अनाचार, निराशा और कटुता का चित्र उपस्थित करना किन्तु साथ ही साथ मानव मूल्यों में आस्था रखाने के कारण पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ भावी जीवन के सपनों का निर्माण भी करना है।"[2]

वास्तव में जीवन के प्रति यह अडिग आस्था ही सूरज का सातवाँ घोड़ा है जो हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है जिससे हम वह रास्ता बनायें जिससे भविष्य का घोड़ा आयेगा-

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धम्रवीर भारती, पृ0 7।
2. धर्मवीर भारती : चिन्तन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 148

"हमारे वर्ग-विगलित, अनैतिक, भ्रष्ट और अँधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफी टूट-फूट गया है .... अब बचा है सिर्फ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने, गरदन उठाये आगे चल रहा है। वह घोड़ा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा, जिनकी जिन्दगी हमारी जिन्दगी से ज्यादा अमन चैन की होगी।"[1]

इस उपन्यास का अवलोकन करने पर हमें ज्ञात होता है कि हर व्यक्ति को जीवन के प्रति अदम्य आस्था होनी चाहिये और साहस के साथ कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना ही इस उपन्यास का महत्वपूर्ण सन्देश है। इस प्रकार आशा और आस्था इस उपन्यास के महत्वपूर्ण जीवनमूल्य हैं। इसीलिए भारती जी ने लिखा है कि - "मार्क्सवाद के अध्ययन से मुझे बड़ी शान्ति, बल और आशा मिली है और अपनी जनता के दुःख दर्द के प्रति मेरी सामाजिकता बढ़ती गयी है। मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य रहता है।"[2]

इस उपन्यास में विवशता के साथ सामाजिक, नैतिक, पारिवारिक और आर्थिक समस्याओं के चित्रण के साथ वर्ग संघर्ष, वर्ग वैषम्य के समाधान को भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। समाज की समस्यायें समाज की आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी हैं। भारती जी ने इस उपन्यास के पात्रों द्वारा आर्थिक व्यवस्था को परिवर्तित कराकर नवीन वर्गविहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इसीलिए जमुना हर परिस्थिति में समझौता करती जाती है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इस उपन्यास के सभी पात्रों जैसे- माणिक मुल्ला, जमुना, सत्ती, और तन्ना आदि जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा और आस्था रखते हैं।

******

---

1. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 109
2. सूरज का सातवाँ घोड़ा, धर्मवीर भारती, पृ0 9

अध्याय छः

अध्याय-छह

भारती के निबन्ध एकांकी एवं संस्मरण साहित्य में जीवन मूल्य

1. भारती के निबन्धों में मूल्य चेतना सम्बन्धी विचार
2. नदी प्यासी थी (एकांकी संग्रह) : मनोवैज्ञानिक चिन्तन
3. भारती के संस्मरणों में उनकी मूल्य दृष्टि

1. भारती के निबन्धों में मूल्य चेतना सम्बन्धी विचार :

भारती हिन्दी साहित्याकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र हैं। जिन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक और निबन्ध आदि अनेक विधाओं पर एक साथ लेखनी चलायी है। भारती जी एक श्रेष्ठ, प्रबुद्ध, एवं दूरदर्शी चिन्तक हैं। इनके अब तक प्रकाशित निबन्ध संग्रह तीन है। जो निम्न प्रकार हैं।

'पश्यन्ती' में कुल 17 निबन्ध संकलित हैं, जिनको "आत्मकथ्य" के अन्तर्गत दो नवलेखन : माध्यम मैं (कुछ स्नैपशॉट्स), एक घृणा : अनेक आयाम। 'व्यक्तित्व और कृतित्व' में तीन-जलौघमग्ना, सचराचरा धरा, मध्यवर्ग का सैलाब और बूढ़ा मछेरा, वह एक कहानी- और उसके अनेक परिशिष्ट। 'सर्वथा निजी' में दो-शुक्र तारे वाली एक शाम, एक खत। 'पश्यन्ती : इतिहास' में रत्नाकर शान्ति का साध्य-चिन्तन। "सर्वेक्षण" में छह -भारतीय साहित्य जगत् में हिन्दी लेखक, रवीन्द्र जयन्ती का वर्ष : एक दृष्टि, चीनी आक्रमण के तुरन्त पूर्व का भारत......., एशियायी आधुनिकता और हूलाहूप, हिन्दी नाट्य-लेखन : कुछ समस्याएँ, भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रूख 'युगबोध' में एक-आधुनिकता अर्थात् संकट का बोध 'चिकनी सतहें : बहते आन्दोलन में दो-तलाश ईश्वर की : बजरिये अफीम, अराजनीति की राजनीति। इससे लेखक तथा उसके रचना विधान को समझा जा सकता है।

'कहनी-अनकहनी' में 45 निबन्ध संगृहीत हैं इनके शीर्षक निम्न प्रकार हैं - विचारक का गुस्सा, रामायण : बतर्ज मेरठ, तरक्की का तर्क या तर्के-तरक्की, गोरियाँ दी गलियाँ, ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाये, विकासोन्मुख व्यवस्था : ह्रासोन्मुख आत्मीयता, बसन्ती समाचार, पागल होना, बुनियादी अधिकार, टी0 दास और पशु-प्रदर्शनी, काबा और दरवेश के पाँव, मधुमक्खियों से सबक : विश्वविद्यालयों के लिए विशेष, यामिनी राय, मानसरोवर और दिल्ली के हंस, उर्दू वाले और फील्ड मार्शल का मजाक, आइखमैन को सजा लेकिन......, हाय हाथी ! हाय !, जुंगः श्रद्धांजलि, एक छोटी खबर : एक बड़ा सन्दर्भ,

शब्द बदले प्रकाश में, ताजमहल खरीदिए, 'सत्याग्रह' की अंगरेजी क्या है? शराब पीने की आजादी, प्रेमचन्द ने कहा था, आयी-आयी बम्बई वाली (बरसात), एक दूसरी रूसी स्त्री, 'अंग्रेजी भी' बनाम 'अंगरेजी ही' जब-जब बोले राजा जी, बेचने का फलसफा, जहाँ प्रशासकों और न्यायाधीशों का निर्माण होता है, भूत के साथ एक रात, सन्त मुए क्या रोइए, शव हटाने के बाद, सब मिशन, संकट और नया रास्ता, आगन्तुक पखेरू, राजनीतिक नियति और भारतीय लेखक लूथुली, एशियाई, इतिहास और पश्चिमी फारमूले, गोवा, व्यक्ति पूजा के लिए, रंग की खायतें अष्टग्रही, बुद्धिजीवी : द्वितीय कोटि, अजन्ता का अज्ञात शिल्पी और यह जन-जागरण, बसन्त, पंचमी, संसद् का प्रांगण और निराला की याद ।

ठेले पर हिमालय : इस संग्रह के निबंधों का विभाजन यात्रा-विवरण, डायरी, पत्र, शब्दचित्र, साहित्यिक डायरी, संस्मरण, कैरीकेचर, व्यंग्य, रूपक, श्रद्धांजलि, आत्मव्यंग्य आदि उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। यह उनके भावुक गद्य-लेखक की प्रतीति कराता है। इस प्रकार प्रत्येक रचना का सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, पौराणिक, साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक आदि मूल्यों की दृष्टि से अपना-अपना महत्व रखते हैं। इनमें भारती की भावुकता, स्वच्छन्दवादी चेतना, वैयक्तिकता और सामाजिकता तथा सहजता के साथ ही दायित्व निर्वाह, बौद्धिक चिन्तन की क्षमता और मूल्य दृष्टि को देखा जा सकता है।

डॉ0 बद्रीनाथ तिवारी ने 'प्राथमिक दौर के निबन्ध' में लिखा है -

"समाज सुधार की भावना, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत गौरव के प्रति उत्साह और अनुराग, अंग्रेजी शासन के प्रति आदर, श्रद्धा, आक्रोश आदि नयी चेतना के अंग थे। अपनी बात को अभिव्यक्त करने के लिये इस युग के जागरूक व्यक्ति को अनेक मुद्रायें अपनानी पड़ीं कभी हास्य विनोद की, कभी व्यंग्य की कभी प्रशस्ति की, कभी आक्रोश की, कभी आत्मसंतुष्टि की, कभी आत्मभर्त्सना की। इन सारी नाटकीय मुद्राओं में अपने को अभिव्यक्त करने वाला व्यक्ति, अपने व्यक्तित्व सहित प्रस्तुत होने को विवश था और इस नयी विधा का जन्म होना अनिवार्य हो उठा। निबन्ध वही विधा है।"[1]

---

1. साहित्यिक निबन्ध, सं0 बद्रीनाथ तिवारी, पृ0 9

जब समाज में चारो तरफ दैन्य, पराजय, निराशा, कुण्ठा, कुरुपता, पाशविकता आदि इस कदर व्याप्त हो जाती है कि उसमें मनुष्यता के लिए तिल भर भी जगह नहीं बचती। उस समय मनुष्यत्व की रक्षा जाँच परखकर करनी चाहिये, जिससे उसका ही नहीं बल्कि सारे समाज का विकास हो सके। स्वयं भारती जी ने 'कहनी-अनकहनी' की संक्षिप्त भूमिका में लिखा है-

"समकालीन इतिहास-चक्र की कोई छोटी से छोटी घटना हो, सामान्य से सामान्य समाचार हो - लेकिन मानव मूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है और बहुत कुछ है, जो उसके संदर्भ में कहा जा सकता है, बहुत कुछ जिसका स्थायी मूल्य है। यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग रहा है।"[1]

इस संसार में विधाता ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ बनाया है। यहाँ पर वही एक ऐसा प्राणी है जो अच्छे और बुरे की पहचान कर सकता है तथा मानव मूल्यों की स्थापना कर सकता है। इसलिये उसमें मनुष्यता का होना आवश्यक है क्योंकि मनुष्यता के कारण ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी कहलाने का अधिकारी होता है तभी तो -

"परम्परा, समाज-व्यवस्था, राजसत्ता, धर्म, नियम, आचार, नैतिकता सबकी कठोरतम वर्जनाओं को निर्ममता से जाँच कर स्वीकार या अस्वीकार की एकमात्र कसौटी होती है। संकट के समक्ष अपने मनुष्यत्व की रक्षा और उसकी प्रतिष्ठा करता हुआ मनुष्य ।"[2]

यही मनुष्य मानव मूल्यों की स्थापना कर प्रगति करता है -

"वस्तुतः कल्मष भी मनुष्य का अपना सत्य है, उसे स्वीकार करके ही वह सार्थक हो सकता है। दबाने से वह मनुष्य को नष्ट कर देता है। समस्त गुण और अवगुण जब तक निर्विकार चित्त से नारायण को नहीं सौंप दिये जाते तब तक वे भार मात्र हैं।"[3]

---

1. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, भूमिका
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 17
3. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 20

एक ओर मूल्यों का सम्पूर्ण विघटन होता है तो मनुष्य में नूतन मूल्यान्वेषण की क्षमता और साहस का क्षय होता है। मनुष्य को समस्त गुण और अवगणु को सहर्ष स्वीकार कर लेने चाहिये जिससे उसकी अन्तरात्मा का विकास होता है। भारती जी ने लिखा है -

"मनुष्य के अन्दर अन्तरात्मा रह जाती है जो संसार का मूल्यांकन कर सके और न उसके बाहर कोई व्यवस्था जिसका मूलयांकन किया जाये। ऐसा लगता है जैसे एक शून्य दूसरे शून्य के सैलाब में फँस गया हो।"[1]

"वह एक कहानी और उसके अनेक परिशिष्ट" व्यक्ति और कृतित्व का निबन्ध है। जिसमें भारती जी ने मोपासा की विख्यात कहानी 'धागे का टुकड़ा' में किसान अपने प्रति किये गये अन्याय के खिलाफ निरन्तर संघर्ष करता हुआ टूट जाता है पर समाज द्वारा लगाये गये अन्याय से उसने समझौता नहीं किया है। इसमें भारती जी ने व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संघर्ष के बीच मानव मूल्यों का अनुपालन करने वाले किसान की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखा है -

"जो भले हैं, ईमानदार हैं, जिन्होंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा है लेकिन जो हर तरफ से लांछित, प्रताड़ित और अपमानित हैं उनके साथ यह अन्याय क्यों हो रहा है? चारो तरफ से तरह-तरह के अनुभव मन में बार-बार एक सवाल उठा जाते थे- कैसी है यह जिन्दगी जिसमें जो जितना सच्चा, सरल और सीधा है वह बार-बार, हर तरह से प्रताड़ित होता है।"[2]

'धागे का टुकड़ा' कहानी एक बेहद सीधे-साधे ईमानदार किसान की है। यह किसान बाजार जा रहा था तो रास्ते में धागे का टुकड़ा पड़ा दिखाई दिया, तो उसने सोचा कि इसे उठा लें, कभी काम ही आयेगा। यह सोचकर वह धागा उठा लेता है और लपेटने लगता है, तो

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 2।
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 40

उसका पुराना दुश्मन उसे देख लेता है तो उसके मन में विचार आता है कि यह सोचेगा कि कितना कंजूस है कि धागे का टुकड़ा बटोरता फिरता है। उसने तुरन्त धागा छिपा लिया और कुछ दूर तक सड़क की ओर जाते हुए ऐसा देखता चला गया कि जैसे- उसका कुछ खो गया हो। इत्तफाक से उसी दिन हाडल ब्रैक साहब का चमड़े का बटुआ जेब से गिर गया था, तो सभी जगह मुनादी हो रही थी कि जिसने बटुआ पाया हो वह बटुआ मेयर साहब को दे आये। थोड़ी देर बाद किसान को मेयर साहब के सामने इसलिये बुलाया गया कि तुमने बटुआ उठाया है और बटुआ उठाते हुए देखा गया है। मालूम हुआ कि उसके पुराने दुश्मन ने आकर चुगली की है। जब किसान से पूछताँछ हुई तो उसने कहा हमने बटुआ नहीं उठाया है। मैंने धागे का टुकड़ा उठाया था। लेकिन कोई भी यहाँ तक कि उसके आत्मीय और पारस्परिक सम्बन्धों के निकट सभी लोगों ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया और उसका मानसिक तनाव बढता गया और वह अन्दर से टूट गया था। दूसरे दिन वही बटुआ एक खेतिहर मजदूर ने लाकर मेयर साहब को दिया वह बटुआ उसे पगडण्डी पर मिला था। किसी ने बटुआ मिलने की खबर किसान को आकर दी तो जैसे उसमें नयी जिन्दगी लौट आयी। उसने सोचा आखिरकार सत्य विजयी हुआ और झूठ हार गया। वह घर-घर जाकर सबको यह बता आया कि बटुआ कैसे मिला। बाजार गया वहाँ बताया लेकिन कोई अब भी उसकी बात का विश्वास नहीं करता कि बटुआ उसने नहीं चुराया था और सब यही सोचते किसान बहुत चालाक है पैसे देकर इसने बटुआ लौटाया है। अन्त में उसकी दिमाग की नसें फट गयीं और वह मर गया पर किसी ने भी सत्य को स्वीकार नहीं किया। इसीलिये भारती जी आक्रोश में आकर कहते हैं -

"आखिर वह कौन सी व्यवस्था होगी, कैसी होगी, जिसमें उस किसान की सच्चाई को सच्चाई की तरह कबूल किया जायेगा; उसमें उसके इर्द-गिर्द रहने वाले तमाम दूसरे इन्सानों में एक सही और बुनियादी समझ पैदा होगी। व्यक्ति और समाज, सत्य और असत्य। अकेलापन समाज के अभिन्न अंग होने की सार्थकता और फिर अन्ततोगत्वा यह कि सत्य, अपने निजी जीवन में उपलब्ध किया हुआ सत्य कैसे सबका बन सकेगा? और अगर नहीं बन पाता है तो हम क्या करें? हमें क्या करना चाहिए?"[1]

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 41-42

भारती जी ने इस संकटबोध को वर्तमान युग बोध के परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया है। हर युग के परिवेश में विभिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं। वर्तमान युग में विज्ञान के विकास ने मनुष्य को यन्त्रचालित बनाकर उसके अस्तित्व को खातरे में डाल दिया है। दया, करुणा, प्रेम, सत्य, सहानुभूति आदि मानव मूल्यों का अवमूल्यन हो गया है। जो अपने परिचित और आत्मीय लोग हैं वहाँ भी विश्वास कायम नहीं रह सका इसीलिये किसान को -

"चारो तरफ का दुःख, कठोरता, निरपराध यातनाएँ, एक इन्सान का दूसरे बेकसूर इन्सान को अकारण आहत करना और निहत्थे, अकेले, साधनहीन, सीधे मगर अपनी सचाई को लेकर सीना तानने की कोशिश करने वाले इन्सानों का एक-एक कर बुराई और झूठ की ताकत के आगे टूटते बिखारते चले जाना।"[1]

इसी कहानी के सन्दर्भ में भारती इससे मिलती जुलती कहानी में लिखाते हैं कि-

"जीसस के बलिदान की कहानी। अपनी सच्चाई जिसके लिये उसे सलीब पर चढ़ना पड़ा वह सिर्फ उसकी सचाई नहीं थी, सबकी सचाई थी और इतना बड़ा दिल था उसका कि उसने मरते वक्त सबके लिये क्षमा माँगी । यही नहीं, उसने बार-बार कहा कि वह सबके पाप, सबके झूठ, सबके अत्याचार सबकी निरंकुशतायें, अपने कन्धों पर वहन कर रहा है ताकि उसके पिता की बनायी हुयी यह धरती हल्की हो, इसमें रोशनी और सुख चैन पनपे।"[2]

ये सच्चाई पर दृढ़ रहे और समाज के लिये वे अनेक कष्टों को स्वीकारते रहे। जिसे सभी लोग सुख चैन से रह सकें। 'एक खात', निबन्ध में टूटते हुए मूल्यों के संकट को ईमानदारी से जीवन में उतारना तथा उनका आत्म विश्लेषण कर 'सत्व' की महत्ता को प्रतिष्ठित करते हुए लिखा है -

"सत्व जिसका आधार है वह सारी कर्म-श्रृंखला पवित्र है यही नहीं, बल्कि केवल वही जीवन पवित्र है, जिसके मूल में, 'सत्व' है, शेष सब विषमय है, कालमय है, जीवन का नाम धारण करता हुआ भी मृत्यु है। अपने सत्व के प्रति वंचना कर हम संसार के प्रति भी घोरतर अपराध करते हैं।"[3]

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 4।
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 42
3. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 60

मूलस्रोत विवेक को अपनाकर हम समाज में व्याप्त बुराइयों को कम कर सकते हैं-

"हर कीमत पर अपने जीवन को सत और निष्ठावान्, मधुर और गहरा बनाकर निखिल संसार में व्याप्त असत्य, कटुता और छिछलेपन को कम करते हैं।"[1]

"तलाश ईश्वर की : बजरिये अफीम" और अराजनीति की राजनीति" पश्यन्ती के अन्तिम दो निबन्ध है जिनमें आधुनिकता के नाम पर पूँजीवादी देशों में पनपती मूल्यहीनता का वर्णन है।

'विकासोन्मुख व्यवस्था : ह्रासोन्मुख आत्मीयता', 'ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाये. 'कावा और दरवेश के पाँव' आदि निबन्धों में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार किया गया है।

भारती जी राष्ट्र निर्माण के लिए इन्सानी रिश्तों वाली आत्मीयता को बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील हैं तभी उन्होंने लिखा है -

"हमारी संस्कृति की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं जैसे वर्ण, वर्ग, सम्प्रदाय के बावजूद गाँव, मुहल्ला, पास-पड़ोस की मानवीय आत्मीयता, अपनापन, इनसानियत के स्तर पर बड़े-छोटे का भेद-भाव न कर एक पारिवारिकता की मधुरता- उन्हें अगर हमने नष्ट हो जाने दिया तो फिर वह कमी कभी पूरी न हो सकेगी। धन की दरिद्रता तो कभी अमेरिका, कभी सोवियत रूस से धन या मशीन माँगकर दूर की जा सकती है, पर वह आदमीयत जो हमारी हजारों वर्ष की परम्परा की देन है, उसे हम फिर किसी दूसरे से उधार नहीं माँग सकेंगे।"[2]

डॉ0 भारती मानव मूल्यों को धर्म एवं सम्प्रदायों से ऊपर मानते हुए लिखाते हैं-

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 60
2. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 28

"अगर हमारा धर्म हमें यह सिखाता है कि इनसानियत और हमदर्दी और भाईचारा सब अपने ही धर्मवालों के लिए हैं, उस दायरे से बाहर जितने लोग हैं सभी गैर हैं और उन्हें जिन्दा रहने का कोई हक नहीं तो मैं उस धर्म से अलग होकर विधर्मी होना ज्यादा पसन्द करुँगा।"[1]

कहनी अनकहनी में 11 जून 1961 को लिखे गये एक छोटे से निबन्ध 'एक छोटी खबर एक बड़ा सन्दर्भ' में प्रेम, हमदर्दी, मानवता, स्वाभिमान, ममता और विश्वास आदि जीवन मूल्यों को स्थापित करते हुए डॉ0 भारती लिखते हैं -

"सिर्फ हमदर्दी के दो बोल, प्यार की एक थपकी, इनसानी जज्बात की समझ, और कष्ट की लहरों से जूझते हुए एक बच्चे को जरा-सा-स्नेह-भरा सहारा- और लो, उसकी दुनियाँ में और उसके जैसे तमाम लोगों की दुनियाँ में एक रोशनी फूट पड़ी।"[2]

इसी की पुष्टि करते हुए आगे लिखा है कि -

"नेकी, ममता, आत्म-त्याग, प्यार, एक दूसरे के लिये कुछ न कुछ करने की मानवीय भावनाएँ कितनी प्रमुख है। जब हम दुख और निराशा में होते हैं, चारो तरफ अंधेरा होता है तो पता नहीं किस अपरिचित की एक हमदर्द मुसकान, एक प्रोत्साहन भरा प्यारा-सा वाक्य हमें मौत के दरवाजे से खींचकर फिर प्रकाश-भरे, उत्साह भरे, आशा-भरे, जीवन-पथ पर लाकर खड़ा कर देता है और मानवीयता से भरी, उस नितान्त साधारण सामान्य व्यक्ति की वह ईमानदार हमदर्दी ऐसी बड़ी मगर खामोश क्रान्ति हमारे जीवन में कर जाती है।"[3]

वर्तमान समय में नेकी, ममता, आत्मत्याग, प्यार, ईमानदारी, हमदर्दी, सहानुभूति, आदि मानव मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मनुष्य की जिन्दगी यंत्रचालित के समान इतनी व्यस्त है कि वह दूसरों के बारे में सोच ही नहीं सकता है। पहले गाँव, मुहल्ले,में जो इन्सानियत और

---

1. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 97
2. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 78
3. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 79-80

मानवीयता के सूत्र थे वे धीरे-धीरे लुप्त होते जा रहे हैं आज आवश्यकता है कि हर व्यक्ति अपनी बंजर मनोभूमि को उर्वर बनाये। जिससे वह अपने व्यक्तित्व और देश का विकास कर सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती जी ने अपने निबन्धों में राष्ट्र-भाषा, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय आदि अनेकानेक मूल्यों को स्थापित किया है।

'धर्मवीर भारती चिंतन और अभिव्यक्ति' पुस्तक में डॉ0 हरिवंश पाण्डेय ने 'कहनी-अनकहनी' निबन्धों को संक्षेप में इस प्रकार लिखा है-

"कहनी-अनकहनी की रचनायें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से सम्बन्धित लेखक की समाचार पत्रीय टिप्पणियाँ हैं, जो सजीव संप्रेषण के कारण वैयक्तिक निबंधों जैसी लगती हैं और बोध के धरातल पर लेखक के अनुभव को व्यापक संदर्भो से जोड़ती भी हैं। सांस्कृतिक आयोजन, समाचार पत्रों की दुर्दशा, संवाद समितियाँ, अंग्रेजी के विषय में प्रचलित भ्रान्तियाँ और दावे, विश्वविद्यालयों की राजनीति, हिन्दी प्रकाशन व्यवसाय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय लेखक परिगोष्ठियाँ पुरस्कार और अभिनन्दन समारोह, उर्दू भाषा और लिपि, योजना के मसौदे, साम्प्रदायिकता, भारत के अंग्रेजी लेखक, फिल्म वैज्ञानिक शब्दावली, निर्माण, रंगभेद, राष्ट्रीय लिपि एशिया और पूर्व पश्चिम का भेद जैसे सामान्य जागृति रूचि के प्रचलित मामलों पर अपने पाठकों की जानकारी बढ़ाने या उन्हें शिक्षित करने के लिहाज से इन टिप्पणियों का काफी महत्व है। इन रचनाओं में साम्प्रदायिकता की तीखी पकड़ और नये मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट भी दिखाई देती है। लेखक हर रचना को एक कुतूहलवर्धक उठान देकर फिर मुख्य विषय पर एक गहन प्रश्नशीलता जगाकर अन्त में प्रायः मूल्यों की सम्भावना की खोज करता है।"[1]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारती का निबंध साहित्य भी उनके नाटक, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं की भाँति मूल्य बोध से अनुप्राणित है। भारती जी के निबंधों

---

1. धर्मवीर भारती चिंतन और अभिव्यक्ति- डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 297

में स्वच्छन्दतावादी चेतना, वैयक्तिकता और सामाजिकता का निर्वाह सहज रूप में हुआ है। इनके निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में विवेकपूर्ण दायित्व का निर्वाह हुआ है। इनके निबन्धों में प्रेम, हमदर्दी, ममता, आत्मत्याग, सत्य, विश्वास, नेकी, सहानुभूति, इनसानियत, स्वाभिमान और मानवीयता आदि मानव मूल्यों की स्थापना हुयी है।

2. नदी प्यासी थी (एकांकी संग्रह) : मनोवैज्ञानिक चिन्तन :

'नदी प्यासी थी' एकांकी संग्रह 1954 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल पाँच एकाकीं संकलित हैं जिसके शीर्षक निम्नलिखित इस प्रकार हैं :

1. नदी प्यासी थी
2. नीली झील
3. आवाज का नीलाम
4. संगमरमर पर एक रात
5. सृष्टि का आखिरी आदमी

इसमें से प्रथम चार एकांकी रंगमंच के लिये हैं तथा अन्तिम एक एकांकी रेडियो के लिए लिखा गया है। भारती जी ने भूमिका में लिखा है कि -

"मैने अपनी ओर से यही प्रयास किया है कि रंगमंच के लिये ये पूर्णतयः उपयुक्त सिद्ध हों, फिर भी जहाँ तक नाटकों का सम्बन्ध है नाटककार और निर्देशक मिलकर ही उसका अन्तिम रूप स्थिर कर सकते हैं । यहाँ तक कि रिहर्सल के दौरान में अक्सर अभिनेता कुछ ऐसे संशोधन उपस्थित करते हैं जो नाटक की सफलता के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं ।"[1]

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, भूमिका से

'नदी प्यासी थी' एकांकी संग्रह में प्रेम की असफल पीड़ा व्यक्त हुई है जिसे भारती ने मनोवैज्ञानिक तथा मनोविश्लेषण के आधार पर अभिव्यक्त किया है इनकी दृष्टि सदैव आशा और आस्थावादिता पर रही है क्योंकि ये मूल्यों के प्रति सदैव सचेत रहे हैं। इसमें भारती जी ने ने प्रेम, सहानुभूति, मित्रता, उदारता, ममता और करुणा आदि जीवन मूल्यों को प्रतिष्ठापित किया है।

"नदी प्यासी थी" एकांकी का कथासूत्र संक्षेप में इस प्रकार है। शंकर और शीला के घर में राजेश का प्रवेश होता है। राजेश शंकर का पुराना मित्र है। राजेश के मन में आस्था अनास्था के बीच संघर्ष चल रहा है तभी वह अपने मित्र शंकर से कहता है -

"हाँ दोस्त । लेकिन मन की नदी का बाँध फूट ही गया। और फिर इतनी भयानक बाढ़ आयी कि जाने कितनी मान्यतायें टूट गयीं, कितने संस्कार उखाड़ गये और धार इतनी तेज थी मित्र कि पांव तले की धरती तक बह गयी। न पांव तले रेत, न सर पर आकाश..... जाने किस दुनियाँ में यह खूँखार नदी खींच लायी है और न जाने क्या करने पर तुली है.....।"[1]

शंकर और शीला से एक सुखी दाम्पत्य का परिचय मिलता है -

"शंकर में एक सच्चे मित्र ईमानदार पति गृहस्थी के सभी गुण हैं तथा शीला भी एक सभ्य एवं निष्ठावान गृहणी है जो अपने पति के मित्र राजेश को आदरभाव एवं देखभाल में कोई कमी नहीं छोड़ती ।"[2]

शंकर अपने मित्र राजेश के प्रति पूर्ण ईमानदार है। वह राजेश की सभी प्रकार से मदद करता है। जब राजेश बिना बताये घर से चला जाता है तो वह अपनी पत्नी शीला को डाटते हुए कहता है -

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 5
2. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, हुकुमचन्द राजपाल पृ0 85

"पुलिस में रिपोर्ट दी, जाल छुड़वाया, मल्लाहों से पूछा, स्टेशन पर जाँच की, कहीं से कोई जवाब नहीं.......... जाओ कुछ रूपये निकाल लाओ, जब तक ढूँढूगा नहीं, तब तक वापस नहीं आऊँगा।' तथा 'खाओ तुम। मैं तो सिर्फ जहर खाऊँगा।"[1]

जब राजेश घर लौट आता है तो शीला कहती है -

"वाह राजेश बाबू। परेशान कर डाला आपने तो। आज नआते तो शायद कल आपके भइया मुझे तलाक दे देते।"[2]

राजेश कामिनी से प्रेम करता है, उन दोनों का प्रेम रोमांटिक है वे दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि "वे जीवन भर अलग रहेंगे, प्रतिदान न लेंगे। मगर अपने प्यार से दोनों एक दूसरे का व्यक्तित्व सम्हालते चलेंगे। पर अब कामिनी धीरे-धीरे मुर्झा रही है (कामिनी किसी अन्य पुरुष की पत्नी हो गयी है।) और वह रोक नहीं पाते...... उनके (राजेश के) सामने जीवन का एक अर्थ था और अब उनका जीवन निरर्थक है। वह जिंदा नहीं रहना चाहते......।"[3]

राजेश जब अपने प्रेम में असफल हो जाता है तो उसे अपना जीवन व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। तभी वह आत्महत्या के बारे में विचार कर बाढ़ से भरी नदी के तट पर जा पहुँचता है तो वहाँ सूर्यास्त के सौन्दर्य को निहार रहा था कि सहसा उसके मन में उससे प्रेरणा मिली और उसे एहसास होता है कि जीवन सुन्दर है और आदमी को ज़ीवन में बहुत कुछ करना है। यह सोचकर वह जीवन के प्रति आस्थावान होकर लौट आता है और कहता है-

"मैं फिर से जिन्दगी में वापस लौट आया कि क्रूरता और कमजोरी के समान हारुँगा

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 26-27
2. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 28
3. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 19

नहीं, मरुँगा नहीं, सौन्दर्य का सृजन करुँगा और सुन्दर बनूँगा जिन्दगी बहुत प्यारी है, बहुत अच्छी और आदमी को बहुत काम करना है।"[1]

पद्मा एक सशक्त नारी पात्र है। वह कृष्ण से प्रेम करती है और उससे शादी करना चाहती है। पद्मा राजेश की भावनाओं का सम्मान करती है तथा उसके दर्द को पहचानती है और बाँटना चाहती है। कृष्ण राजेश को लेकर पदमा पर शक करता है तो वह उसे फटकारती है। नफरत भरी फटकार के फलस्वरूप कृष्ण आत्महत्या कर लेता है। पदमा भावुक है इसीलिये दुखित राजेश के प्रति अपनी ममता उड़ेलती हुई कहती है -

"समझते हैं आप, खूब समझते हैं। जहाँ नारी दुर्बल है, कमजोर है, वहाँ उसे गाली दे लीजिए, लेकिन जहाँ वह ममता दे देती है, अपना सबकुछ दे देती है, वहाँ भी आप लोग कहने से नहीं चूकते ।"[2]

भारती जी राजेश को आस्थावादी दिखाते हैं क्योंकि इनकी दृष्टि सदैव आस्थावादी रही है। डॉ0 हुकुचन्द राजपाल ने लिखा है -

"उसे परिवर्तित दिखाकर जीवन के प्रति आशावादी बनाना वस्तुतः युग-बोध को प्रस्तुत करना रहा है। चारों ओर निराशा, घुटन, अनास्था एवं अविश्वास में भी भारती ने सदैव आशा, सौन्दर्य, आस्था एवं विश्वास की राह ढूँढ़ने (पाने) का प्रयत्न किया है। साथ ही अन्त में पदमा की समझौतावादी दृष्टि बतलाता हुआ राजेश जो कुछ कहता है वह भारती के समन्वित, संतुलित चिंतन का प्रभाव है।"[3]

'नीली झील' नदी प्यासी थी संकलन का दूसरा एकांकी है। यह एक प्रतीकात्मक एकांकी नाटक है। इसमें 'नीली झील' देश की आर्थिक व्यवस्था का चित्रण किया गया है।

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 3।
2. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 2।
3. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 87-88

जहाँ व्यक्ति के ऐश्वर्य का नहीं, वास्तविक मानव का सम्मान होता है। 'नीली झील' का तांत्रिक एक आदर्श मानव का प्रतीक है जो विश्व में शांति एवं मानवता का आदर्श प्रस्तुत करता है क्योंकि वह शक्ति सम्पन्न है इसीलिये सभी को जीवन प्रदान करता है तभी तो आगन्तुक को आश्वासन देते हुए कहता है -

"यह झील तुम्हें क्षमा कर देगी। मैं बूढ़ा हूँ। मैं स्वत्वहीन हूँ, निरर्थक हूँ। तुम्हारे पाप मैं अपनी आत्मा पर ले लूंगा। मैं तुम्हारे लिये प्रार्थना करुँगा।...... ओ अनन्त करुणामयी झील, इसे क्षमा करो......... इसे जीवनदान दो।"[1]

बूढ़ा तांत्रिक मानवतावादी है इसीलिये वह आगन्तुक को नई आत्मा ढूँढ़ने का आश्वासन देता है और विश्वास दिलाता है कि नई आत्मा अवश्य मिलेगी तभी वह कहता है जहाँ युद्ध हो रहा है रक्तपात हो रहा है, फौलाद की भट्टियाँ जल रही हैं वहां पर तुम विद्रोह करो और प्रकाश पर आस्था रखो तुम्हें नई आत्मा मिलेगी। "रहेगा सिर्फ वह जो आज अपनी नई आत्मा ढूँढ़ रहा है.......... वह तुम्हारे व्यक्तित्व को छुयेगा, तुम्हारी आत्मा में उस आत्माहीन को नयी आत्मा मिलेगी और वही सत्य होगी। मेरी ओर मत देखो। यह नीली झील और उसका तांत्रिक मैं, केवल इन्द्रजाल थे। यह झूठा खेल था जो अब खत्म हो रहा है।"[2]

डॉ0 पुष्पावास्कर ने लिखा है कि -

"बूढ़ा तांत्रिक उस आगन्तुक को फिर वहीं लौटने का परामर्श देता है, जहाँ वह पहले गया था। वहीं जाकर वह मनुष्यता के रस को प्राप्त कर सकता है, अंधे युग की मूल्यहीनता में आस्था एवं आत्मविश्वास की प्राप्ति कर सकता है।"[3]

इसमें आधुनिक पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी शोषण को अभिव्यक्त किया गया है।

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 47
2. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भाराती, पृ0 49
3. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर, पृ0 243

"हां तुम ! नई आत्मा ढूँढ़ने के लिए वापस जाओ उसी देश में जहाँ प्रजा रक्तपात कर रही है, जहाँ फौलाद की भट्टियाँ धधक रही हैं। जाओ, उस संघर्ष का अर्थ समझो। अंधेरे से विद्रोह करो, प्रकाश पर आस्था रखों, तुम्हें नई आत्मा मिलेगी।' तांत्रिक का यह कथन समाजवाद से प्रभावित है। वह आगन्तुक को विश्व की विभीषिका में पुनः भेजकर उसे उसकी वास्तविकता और रहस्य से परिचित कराना चाहता है जिससे वह स्वयं बोझिल एवं पीड़ित होकर, वस्तुस्थिति को समझकर नवनिर्माण का प्रयत्न करे। एक ऐसे समाज की स्थापना करे जो संघर्षहीन, वर्गहीन एवं शोषण विहीन हो, जिससे मानवता अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो।"[1]

'आगन्तुक" आधुनिक पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था का प्रतीक है। यह आदर्शवादी समाज और मानवता का शोषण करता है वह अपनी मानवता को विस्मृत कर पतित हो गया है इसमें मानवता का अस्तित्व लेशमात्र भी नहीं है। इसीलिये हरिवंश पाण्डेय ने लिखा है -

"प्रजातांत्रिक व्यवस्था के सारे मत और स्वतंत्रता तथा पूँजीवादी देशों में साम्यवाद की उग्र मानसिकता मनुष्य को नष्ट कर रही है। आज सोना, सेक्स और अधिकार की लड़ाई में चारों तरफ जो रक्तपात हो रहा है उसी में से नयी आस्था ढूँढ़ने का प्रयास है - नीली झील।"[2]

नीली झील का अभिप्राय है कि युद्ध रक्तपात, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के प्रति 'आगन्तुक' को विद्रोह करना चाहिये जिससे वह अपने जीवन के मूल्यों को पुनः प्राप्त कर सके क्योंकि युद्ध और यांत्रिक सभ्यता के कारण जीवन का सौन्दर्य समाप्त हो गया था क्योंकि-

"प्रजातन्त्रवाद दो प्रकार का था- एक पूँजीवाद पर निर्भर और दूसरा साम्यवाद पर

---

1. हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव, डॉ0 शंकरलाल जायसवाल, पृ0 372-373
2. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 165-166

निर्भर। दोनों का मालिक मैं था। मैं आदेश देता था और एक वर्ग का मानव दूसरे वर्ग के मानव से सेना के रुप में युद्ध करता था। अर्थात् पूँजीवाद राष्ट्रों और साम्यवादी राष्ट्रों में युद्ध होता था। इस प्रकार विश्व के तीन महायुद्ध हुए जिनमें काफी नरसंहार हुआ। जबकि दोनों वर्ग लड़ रहे थे मैं उनका बल-बुद्धि, तेज, सोना और अन्न लेकर चला आया और नीली झील के देश में आ गया।"[1]

तब तांत्रिक ने आगन्तुक से पूछा कि तुम सही सलामत आ गये उसने कहा हाँ तब तांत्रिक कहता है कि तुमने अन्न, बल, वैभव, तेज बहुत कुछ पाया लेकिन तुम अपनी आत्मा को वहीं छोड़ आये हो। तुम्हें नई आत्मा प्राप्त करनी होगी। जिससे तुम पूर्ण मानव बन सको।

'आवाज का नीलाम' में पत्रकार दिवाकर की कथा है। दिवाकर को अपनी पत्नी के इलाज के लिये 'आवाज' नाम की पत्रिका बेचनी पड़ती है। इस पत्रिका का उद्देश्य नंगी-भूखी जनता की आवाज तथा अपनी आत्मा की आवाज को पहचानना था। दस वर्षो की कड़ी मेहनत करके उसने पत्रिका को बंद नहीं होने दिया जब उसकी पत्नी बीमार हो जाती है और उसका आपरेशन होता है तो उसे कर्ज लेना पड़ता है और विवश हो अपनी पत्रिका को बेचने के लिये तैयार हो जाता है, आपरेशन होते समय उसकी पत्नी मर जाती है तो दिवाकर की आस्था टूटने के बजाय और अधिक मजबूत होती है और वह अपने व्यक्तिगत दायरे को लांघकर पत्रकार के दायित्व को निभाने के लिये तैयार हो जाता है क्योंकि -

"दिवाकर एक निडर, स्वतंत्र पत्रकार है जो जनता को सही आवाज अपने पत्र में लाने का प्रयत्न करता रहा है पर पत्नी की लम्बी बीमारी तथा समय पर धनाभाव के कारण वह अपनी 'आवाज' अखबार बेचने तक को तत्पर हो जाता है पर पत्नी के मर जाने पर वह अपनी उसी आवाज को सेठ से वापस लेना चाहता है पर खरीदी आवाज को उसे वापिस नहीं मिलती वरन् उसे मिलता है पागलपन ।"[2]

---

1. एकांकी नाटक संग्रह का आलोचनात्मक अध्ययन, ज्वाला प्रसाद शर्मा, पृ0 239
2. धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम, डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल, पृ0 91।

इसमें भारती ने ईमानदार पत्रकार दिवाकर को पहले पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ते हुए दिखाई देते हैं पर साथ ही दिवाकर को उससे उद्विग्न दिखाकर कर्तव्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं।

'संगमरमर पर एक रात' ऐतिहासिक एकांकी है इसमें लोक प्रसिद्ध जहाँगीर और नूरजहाँ की प्रेम कहानी को विषय बनाया गया है। नूरजहाँ (मेहरुन्निसा) जब पन्द्रह वर्ष की थी, तब शाहजादा सलीम (जहाँगीर) उस पर मुग्ध हो गये थे। किन्तु शांहशाह अकबर को उनका यह सम्बन्ध नामंजूर था। उन्होंने मेहर की शादी शेर अफगन से कर डाली थी। उसके बाद भी वे दोनों एक दूसरे को भुला नहीं सके थे। मोहब्बत का यह जज्बा उन दोनों ने अपने मन के अन्दर गहरे में दफन कर दिया था। मेहर अपने चेतन मन को यह कहकर आश्वस्त कर लेती है कि किसी उमर में जो मेहरुन्निसा सलीम के पीछे पागल थी उसे बहुत पहले दफन कर दिया गया है। इसी प्रकार बादशाह जहाँगीर भी यही समझता रहा कि मेहर के मरने के साथ सलीम भी मर चुका है।

मेहर की शादी शेर अफगन से हो जाती है शादी के सत्रह वर्ष बाद शेर अफगन की मृत्यु हो जाती है। जहाँगीर उसे तथा उसकी बेटी लाड़ली को आगरे के राजमहल में ले आया। लेकिन मेहर ने उसका दिया गुजारा स्वीकार नहीं किया। वह कसीदाकारी की मेहनत मजदूरी से अपना गुजारा करने लगी। क्योंकि जहाँगीर पर उसे शक था कि शेर अफगन की हत्या इसी ने करवायी है इसीलिये वह जहाँगीर से नफरत करती थी तभी कहती है -

"आँखों की रोशनी ढाल-ढाल कर अँगुली का खून गूँथकर कसीदाकारी की कि किसी तरह अपना और अपनी बेटी का तन ढाँक सके मगर आगरे का इन्साफपसंद शांहशाह अपनी एक गरीब रियाया तक को इज्जत से गुजर करते हुए नहीं देख पाता।"[1]

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 78

मेहर जहाँगीर से आगरा छोड़ने की इजाजत मांगी तो वह बोला -

"आप मेरे किसी दुश्मन से मिल सकती हैं। यह भी जानता हूँ कि जिधर आप होंगी उधर तीर चलाने के लिये मेरे हाथ उठने से इंकार कर देंगे। सल्तनत बर्बाद हो जायेगी। मैंने मुहब्बत बीस साल पहले की थी, सल्तनत आज तक चला रहा हूँ।"[1]

जहाँगीर मेहर को तहेदिल से प्यार करता था इसीलिये वह स्वयं कहता है-

'अगर तुम मेहरुन्निसा न होती और बीस साल पहले मैने तुम्हें पूजा न होता...... तो आज तुम्हें मैं जबर्दस्ती अपने हरम में डाल लेता और सारा मसला हल हो गया होता, लेकिन बदनसीबी यह है कि कभी मैने तुम्हें प्यार किया था और....... और आज मैं नफरत करता हूँ......मैं......मैं.......मैं।"[2]

मेहर से जहाँगीर आज भी प्यार करता है और उसके प्यार में आज भी पागल है-

"जिसको आदमी प्यार करता है उसको खोकर चाहे चैन पाले, पर जिसने उसे प्यार किया है उसे खोकर आदमी पागल हो जाता है।"[3]

मेहर भी जहाँगीर को अचेतन मन से प्यार करती पर चेतन मन से वह उसे स्वीकार नहीं पाती वह प्रणय जन्य अन्तर्द्वन्द्व में फंसी हुई है। क्योंकि एक तरफ वह अपने मृत पति के प्रति श्रद्धा भी रखाती है तभी डॉ0 पुष्पा वास्कर ने लिखा है -

"मेहर को अपने मृत पति के प्रति श्रद्धा एवं गर्व है किन्तु जब शहंशाह जहाँगीर उसे चाहते हैं तो उसकी आस्थाओं में कंपन पैदा होता है। उसके सामने सवाल उठ खाड़ा होता है कि शेर अफगन के प्रति एकनिष्ठ रहे या बादशाह के अनुराग की स्वीकृति देकर सम्राज्ञी पद को प्राप्त करे।"[4]

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 81
2. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 83
3. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 80
4. धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार, डॉ0 पुष्पा वास्कर पृ0 244

मेहर प्रणय जन्य अन्तर्द्वन्द्व एवं मानसिक संघर्ष के परिणामस्वरूप वह बादशाह को स्वीकार कर लेती है।

'सृष्टि का आखिरी आदमी' इस संकलन का आखिरी एकांकी है, इसे भारती जी ने 'रेडियो छंद-नाट्यघट' है। यह शैली तथा रुप में अन्य चारो एकांकी नाटकों से भिन्न है। रेडियो के लिए लिखा जाने के कारण इसकी मन्चीयता का प्रमुख आधार ध्वन्यात्मकता है।

'सृष्टि का आखिरी आदमी' ध्वस्त सृष्टि को फिर से आलोकित करने का प्रयास है।"[1]

भारती जी मूल्यान्वेषी है इसीलिये वह मूल्यान्वेषी गतिशीलता को स्वीकार करते हुए नई संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं-

इस गेंहूँ के लघु दाने में
एक नई सभ्यता छिपी है शरमाई सी
नई कल्पना, गीत नया,इन्सान नया
इस गेंहूँ की हरी बाल की शीतल छाया में पनपेगा।
एक सभ्यता मिटा चुका मैं,
इस गेंहूँ और फूल की तरल छाँव में
एक नई संस्कृति का अब निर्माण करूँगा।"[2]

हर एक पीढ़ी की अपनी मान्यतायें और आदर्श अलग-अलग होते हैं। पुराने मूल्यों कों त्यागकर प्रत्येक पीढ़ी नये मूल्यों का निर्धारण करती है।

---

1. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 ।23
2. नदी प्यासी थी, धर्मवीर भारती, पृ0 ।20

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि भारती जी के एकांकी संग्रह में इनका मौलिक चिंतन सर्वत्र व्याप्त है तथा प्रत्येक एकांकी मानव-मन की पीड़ा को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करती है जो मानव मन की आस्था-अनास्था के बीच मूल्यों का संधान करती दिखाई देती है तथा मूल्यों को प्राप्त करने के लिये कर्तव्य की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं।

3. भारती के संस्मरणों में उनकी मूल्य दृष्टि :

भारती जी हिन्दी के उन प्रतिष्ठित साहित्यकारों की कोटि में आते हैं जिन्होंने अनेक साहित्यिक विधाओं को अपनी लेखनी से सँवारा उनके लिये नाटक, काव्य, उपन्यास कहानी, गीत, आलोचना, यात्रा-विवरण, संस्मरण आदि हर विधा के लिये दरवाजे खुले थे जिस पर उनकी लेखनी स्वतंत्र रूप से चली। भारती अपनी महत्वपूर्ण कृतियों के कारण समकालीन लेखकों की अपेक्षा सदैव शीर्ष पर रहे -

"भारती जैसे लोगों का काम है समय से लड़ना, समय के साँचे को जान लगाकर तोड़ना-फोड़ना वे जमाने से बँधना नहीं चाहते। उनकी प्रतिभा जलते हुए तीर की तरह जमाने को चीरकर आगे बढ़ना चाहती है।"[1]

भारती जी के संस्मरण कुछ निबन्ध संकलनों में भी संग्रहीत हैं जो निम्न प्रकार हैं-

1.	उसने कहा था : एक संस्मरण	:	ठेले पर हिमालय
2.	मैं चाँद के कलंक को प्रणाम करता हूँ	:	ठेले पर हिमालय
3.	जुंग : श्रद्धांजलि	:	कहनी-अनकहनी
4.	बसंत पंचमी, संसद का प्रांगण और निराला की याद	:	कहनी-अनकहनी
5.	नवलेखन : माध्यम मैं (कुछ स्नैपशॉट्स)	:	पश्यन्ती

---

1. ठेले पर हिमालय - धर्मवीर भारती, पृ0 178

6. एक घृणा : अनेक आयाम : पश्यन्ती

7. शुक्र तारे वाली एक शाम : पश्यन्ती

8. **समता....स्वातन्त्र्य.....सौन्दर्य लोहिया : धर्मयुग, 15 अक्तूबर, अंक 40**

इसके अतिरिक्त कैक्टस, राज्य और रंगमंच, गुलिवर की तीसरी यात्रा आदि संस्मरण के अन्तर्गत आते हैं। भारती जी ने अपने संस्मरणों में वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

'उसने कहा था' एक संस्मरण में कहानी का सम्बन्ध नाट्य सम्बन्धी अनुभवों से है। इसके मंचीकरण के अवसर पर डॉ0 राम कुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानन्दन पन्त जी, अज्ञेय, विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ0 रघुवंश गोपीकृष्ण गोपेश, कृष्णा वर्मा, उमा वर्मा, केशव चन्द्र वर्मा जैसे बड़े-बड़े साहित्यिक व्यक्ति मौजूद थे, इसे पंत के निर्देशन में 'परिमल' द्वारा आयोजित एक विराट पर्व के अवसर पर प्रस्तुत करने का उल्लेख है। 'उसने कहा था : एक संस्मरण" में भारती जी लिखते हैं -

"मुझे भी एक उधार का फौजी ओवरकोट पहनकर भयानक दाढ़ी-मूछ लगाकर बजीरा सिंह बनना पड़ा था और कहानी के अनुसार यद्यपि बार-बार लहना सिंह बने हुए साही जो हुक्म देते थे- "बजीरा पानी पिला"। पर पानी की सच्ची जरुरत मुझे थी क्योंकि साही जी तो कई बार रंगमंच पर उतरकर अपना सिक्का जमा चुके थे- मैं ही नौसिखिया था और सामने इतनी जनता को देखकर मेरी जुबान ताल से चिपक जा रही थी पर मैं एक घूंट पानी भी पी सकूँ इसका कोई विधान उस स्क्रिप्ट में नहीं था और साही जी थे कि घायल प्रेमी लहना सिंह बने थे और मिनट मिनट पर पानी पी रहे थे।"[1]

---

1. ठेले पर हिमालय, धर्मवीर भारती, पृ0 98

"मैं चाँद के कलंक को प्रणाम करता हूँ" ठेले पर हिमालय संकलन में यह संस्मरण संकलित है। इसमें भारती जी ने भारतेन्दु जयन्ति के अवसर पर स्व. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्यों के साथ उनमें समाहित कुछ एक दोषों का भी समर्थन करते हैं। इस संस्मरण के आरम्भ में भारती जी ने लिखा है -

"मैं प्रकाश का ज्योति का, अग्नि का उपासक हूँ, पर श्रद्धांजलियों की इस पावन घड़ी में मैं पहले चाँद के कलंक को प्रणाम करता हूँ।"[1]

भारती जी के मन में नारी जाति के प्रति अपार श्रद्धा और सहानुभूति है इसीलिये उन्होंने कहा है -

"उनका भोग विलास एक पतनोन्मुख धनपति का भोग विलास नहीं था, वह समाज की तत्कालीन नैतिक व्यवस्था और परिवार व्यवस्था के विरूद्ध एक तीखा विद्रोह था। उनके जीवन में आने वाली स्त्रियों के प्रति उनके मन में फूल सूंघ कर फेंक देने वाली सामन्तवादी मनोवृत्ति न थी। उसके पीछे एक सच्ची मानवीय सहानुभूति, पारस्परिक सौहार्द और एक दूसरे के मन की अनुभूति थी ।"[2]

इन्होंने आगे भी लिखा है -

"मैं उस निश्छल स्नेह को प्रणाम करता हूँ, नारी की उस चरम पावन अकलुष मूर्ति को प्रणाम करता हूँ, चाँद को मैं बाद में श्रद्धांजलि दूँगा, पहले मैं चाँद के कलंक को प्रणाम करता हूँ।"[3]

---

1. ठेले पर हिमालय, धर्मवीर भारती, पृ0 168
2. ठेले पर हिमालय, धर्मवीर भारती, पृ0 168
3. ठेले पर हिमालय, धर्मवीर भारती, पृ0 172

भारती जी ने 6 जून, सन् 1961 ई0 की जुंग की मृत्यु के बाद अपनी श्रद्धांजलि जुंग को अर्पित की थी। जुंग बीसवीं सदी के महान द्रष्टा और विचारक थे। 'जुंग : श्रद्धांजलि' में सहज रूप से डाक्टर और रोगियों का उल्लेख करते हुए सिगमंड फ्रायड तथा जुंग के विचारों का स्पष्टीकरण किया गया है। मनोविश्लेषण के क्षेत्र में जुंग एकमात्र ऐसे चिन्तक थे जो सबसे ज्यादा संतुलित, गहरी दृष्टि वाले, संकीर्णताओं से मुक्त और समस्त मानव संस्कृति की गहरी छानबीन करने वाला था। उनकी मान्यता थी -

"धर्म, दर्शन, साहित्य मनुष्य के उच्च चिन्तन की सीढ़ियाँ है और इनमें मनुष्य के ऊँचे रूप को समझने की कुंजी मिलती है" वह मानता था कि मनुष्य में एक बुनियादी प्यास इस बात की है कि वह अपने दोषों और अधूरेपन को त्याग कर अपनी आन्तरिक इच्छा-शक्ति के सहारे पूर्णता की ओर बढ़े।"[1]

जुंग ने मानव एकता तथा मंगल की भावना के तत्व को खोजने का अनथक प्रयास किया था इसीलिये जुंग ने -

"कन्फ्यूशसवाद, ताओवाद, हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म, जैनधर्म, इसलाम-ईसाइयत का एशियाई रूप इन तमाम पद्धतियों का उसने बहुत गहरा अध्ययन किया।"[2]

इन सभी धर्मों से मानव का सांस्कृतिक विकास होता है जो मनुष्य की पूर्णता को प्रतिष्ठित करता है।

'बसंत पंचमी, संसद का प्रांगण और निराला की याद' कहनी-अनकहनी का निबन्धनुमा संस्मरण है। इस संस्मरण के अन्तर्गत भारती जी ने भारतीय परिवेश की राजनीति, चीनी हमले के समय हमारे बुद्धिजीवी नेताओं की मानसिकता, अन्धा विश्वास आदि को निराला की महान देन से प्रफुल्लित होकर अभिव्यक्त किया है। 'क्या सोचा था शरद की गंगा सी पुण्य-सलिला ममतामयी महादेवी जी ने जब उन्होंनें संसद के तत्वाधान में देश-भर के

---

1. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 76
2. कहनी अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 77

लेखकों को बुलाया, राष्ट्र के वर्तमान संकट पर विचार करने के लिए, निराला के जन्म-दिवस पर बसन्त पंचमी के दिन कथन को प्रारम्भ करके भारती जी ने हजारों वर्ष से हमारे देश में साहित्य की, दर्शन की जो सुरसरिता जीवन मूल्यों के रूप में प्रवाहित होती रही है। उसकी ओर संकेत किया है। भारती जी किसी भी राष्ट्र की गतिविधियों का संचालन करने के लिये केवल नेता या प्रशासक को महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं। बल्कि वह बुद्धिजीवी वर्ग तथा लेखक को महत्वपूर्ण मानते हुए लिखते हैं -

"प्रमुखतः बुद्धिजीवी चिन्तक और लेखक यह दृष्टि देता है। हम बुद्धिजीवियों ने यह तो कहा कि भारत-चीन-सीमा पर हमारे अधिकारियों को अधिक सावधानी बरतनी चाहिये थी लेकिन हम यह भूल गये कि हमको खुद हमारे राष्ट्र ने एक सीमा पर प्रहरी के तौर पर तैनात कर रखा था- वह है सत्य और असत्य की सीमा ।"[1]

विवेक और चिन्तन के अभाव के कारण भारतीय चीन की प्रशंसा करते हुए कहते हैं-

"चीन के बाँध, चीन की बिजली, चीन की इंजीनियर सुन्दरियाँ, चीन की छपाई, चीन का साहित्य, सबकुछ अद्वितीय ...... गोया जिसे चीन पर आस्था हो वह आस्थावादी, जिसे अपने भारतीय प्रजातन्त्र की पद्धति और मूल्यों पर आस्था हो, अपनी जनता की सम्भावनाओं और क्षमताओं पर आस्था हो- वह अनास्थावादी। यह था उस वक्त का साहित्यिक माहौल जिसे गुजरे अभी बहुत दिन नहीं हुए ।"[2]

बुद्धिजीवियों का पहला कर्तव्य यह है कि वह विवेक और सत्य को स्वीकार करें जिससे सभी मानव जाति का कल्याण हो -

"आज हम सब एक साथ हैं, एक दूसरे की निष्ठा पर पूर्ण विश्वास करते हुए,

---

1. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 183
2. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 184

इसीलिये यह और आवश्यक है कि इस अवसर का उपयोग पूर्ण रूप से किया जाये। मूल्यों के प्रश्न पर बुनियादी सिद्धान्तों के सवाल पर खुले मन से विचार हो।"[1]

भारती जी बुद्धिजीवियों को उनके उत्तरदायित्व का बोध कराते हैं।

"नवलेखन : माध्यम मैं (कुछ स्नैपशॉट्स) यह संस्मरण भारती ने 1961 में लिखा। नवलेखन में भारती जी बौद्धिक मिजाज का उल्लेख करते हुए आधुनिकता एवं परम्परा के प्रति सजग दिखाई देते हैं। इसी संस्मरण में उन्होंने अन्धायुग के संजय की भाँति अपने में एक तटस्थ अंश की अवस्थिति को चित्रित किया है। संस्मरण के अन्त में भारती जी ने अपनी जीवन दृष्टि को व्यक्त किया है -

"सबकी मुक्ति में उसकी मुक्ति है क्योंकि वह सबकी एक सचेत इकाई है।"[2]

इस संस्मरण में भारती जी ने मानव-विवेक, व्यक्ति स्वातंत्र्य और दायित्वपूर्ण भावना जैसे मानव-मूल्यों को स्थापित किया है।

"अच्छे थे वह जमाने जब दुनिया में मसीहा हुआ करते थे। एक ओर काफी गुनाह होते रहते थे, धर्म, नियम टूटते रहते थे और दूसरी ओर कोई मसीहा आता था जो खुद ईश्वर होता था, हाथ उठाकर कहता था कि सारे संशय छोड़कर मेरी शरण आओ।"[3]

भारती जी मनुष्य को उसके कर्तव्य का बोध कराते हुए कहते हैं कि अब इस युग में कोई मसीहा उत्पन्न होने वाला नहीं है बल्कि स्वयं अपने विवेक को जाग्रत करना होगा। "अन्दर की रोशनी धुंधली है और हमें इस नुमायश में जीना पड़ रहा है और संजय को लगता है कि किसी अंश में शायद वह धृतराष्ट्र भी है और वह मसीहे की तरह यह नहीं कहता

---

1. कहनी-अनकहनी, धर्मवीर भारती, पृ0 186
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 10
3. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 8

कि तुम मेरे पास आओ, मैं भूखो को भोजन और अन्धो को दृष्टि दूँगा।"[1]

1966 में "एक घृणा : अनेक आयाम" संस्मरण को भारती जी ने लिखा। इसका आरम्भ पात्र संरचना से करते हैं।

"पात्र अपने व्यक्तित्व को उपलब्ध कर ले गया, वहीं वह आपके हाथ में नहीं रहता फिर उसका चरित्र-विकास अपने आन्तरिक क्रम के अनुसार होता है और आपका बनाया तथा कागज पर लिखा हुआ सारा ढाँचा नाकाफी साबित होने लगता है। अश्वत्थामा के बारे में भी यही हुआ।"[2]

भारती जी इसकी पुष्टि अंधायुग के एक अश्वत्थामा से करते हैं।

"कृष्ण के सारे मूल्य-मर्यादा जाल को ध्वस्त करने का दायित्व गान्धारी पर था लेकिन लिखते-लिखते गान्धारी शाप देकर कृष्ण के प्रति सहसा द्रवित हो गयी और विद्रोह तथा असहमति की कठिन भूमिका आगे आकर अश्वत्थामा ने सम्हाल ली ।"[3]

भारती ने अपने संस्मरणों में महाभारत के आख्यानों के माध्यम से यह कहा है कि कई बार हमारा व्यक्तित्व हमारे मुखर विरोधियों के प्रचण्ड आवेग को ही नष्ट कर देता है वस्तुतः मनुष्य के जीवन में उसकी मूल्य चेतना का होना आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण और गान्धारी के आख्यान के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

"सर्वथा निजी' खण्ड में 'शुक्र तारे वाली एक शाम" लेख के अन्तर्गत लेखक का भावुक मन प्रकट हुआ है। डॉ0 धनंजय वर्मा ने कहा है -

"सर्वथा निजी बाल अंश भारती की भावानुकूलता को पुकार-पुकार कर उद्‌घोषित

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 10
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 11
3. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 11

करता है। सच तो यह है कि भारती के लेखन चिन्तन में रूमानियत 'उशनस' की तरह स्थिर हो गयी है लेकिन उसकी चमक वहाँ गायब है।"[1] और कीट्स की - "Bright star, would I were stedd last as thou art."

भारती ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है - "कीट्स मेरी जाति का था (कलाकार था), अतः आज उसकी पीड़ा ठीक-ठीक मुझे समझ में आती है।"[2]

भारतीजी ने क्षण की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है -

"क्षण-क्षण, लेकिन उसी बीच में कहीं भी अगर ऐसा प्यार, ऐसा आश्वासन, ऐसा आश्रय मिल जाये कि उसके बीच हमारा विश्वास स्थिर हो जाये- मन की कुतुबनुमाँ को कोई उत्तर में स्थित ध्रुवतारा मिल जाये- जिस पर वह स्थित रह सके, तो मनुष्य उस परिवर्तित होते हुए जीवन की एक अनुभूति को जादू की तरह बाँध लेने में समर्थ हो जाता है।"[3]

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भारती जी ने "पश्यन्ती" में क्षण के महत्व को विशेष रूप से स्वीकारते हुए प्रेम, आश्वासन, विश्वास और आस्था जैसे मानवीय मूल्यों को कुतुबनुमा की उत्तर दिशा में स्थित ध्रुवतारा की ओर इंगित करते हुए क्षण के महत्व को स्वीकारा है। भारती जी जीवन की कड़ुवाहट से बचने के लिए शुक्रतारे में विलीन हो जाना चाहते हैं -

"सुखद है इस नीले आकाश में जड़े समुद्री द्वीप की भाँति शुक्र तारे को पाना- और सुखद है, शिरीष और गन्धराज के शिखरों के पार इस शुक्रतारे को अचानक देखना-सुखद है इस चोट को खाकर बरसों से चुप हो गये मन का धीरे-धीरे अपनी पलकें खोलना-सुखद है अपनी नियति को पहचानना, सजाना, सवाँरना।"[4]

---

1. धर्मवीर भारती, संपादक लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ0 65
2. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 48
3. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 48
4. पश्चन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 54

राम मनोहर लोहिया सम्बन्धी 'समता + स्वातन्त्र्य + सौन्दर्य = लोहिया' शीर्षक संस्मरण में 'धर्मयुग' (15 अक्टूबर, 1978) में प्रकाशित हुआ था। इस संस्मरण में लोहिया के स्वतन्त्र प्रिय, मानवतावादी व्यक्तित्व को उजागर करते हुए भारती जी लिखाते हैं -

"लोहिया नेहरु से दूर और गाँधी के निकट अपने को क्यों मानते हैं। जिन्दगी के ऊँचे-नीचे झटके लगने के बाद, राजनीति के उत्थान पतन देखने के बाद अनेक पीड़ाजनक स्थितियों से गुजरने के बाद, शत्रुओं से मिली करुणा और मित्रों से मिले विश्वासघातों के बाद जब मन थिराया, पककर प्रौढ़ हुआ तब समझा गाँधी जी का गीत- "वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे ।" और तब जाना कि पराई पीर जानने के उस वैष्णव सूत्र से लोहिया कितने गहरे जुड़े थे। उनका समता का दर्शन पूरी भारतीय मनीषा के शुभ उत्तराधिकार की आधुनिक व्याख्या थी नेहरु ने भारत की खोज की थी, डॉ0 लोहिया भारत से एकाकार थे। यही दोनों में बुनियादी अन्तर था।"[1]

लोहिया ने इस देश के समाज में साम्यवाद या समता लाने के लिये व्यक्ति के विवेक को जगाकर उसमें आत्मविश्वास पैदा करते थे।

साहित्यिक डायरी खण्ड में 'कैक्टस' नामक पहला संस्मरण लेख है। 'कैक्टस' नयी कविता का प्रतीक है। जो मरुभूमि में उपजता है फिर भी अपनी रसक्षमता को बनाये रखता है-

"परम्परागत साहित्य की लयबद्धता, तराश, पच्चीकारी, सजाव-सिंगार में अपना आकर्षण हो पर वह कैक्टस वाला आकर्षण तो नहीं है। कैक्टस को वनस्पतिशास्त्र की भाषा में 'जीरो फिटेड' कहा जाता है। अर्थात् बालू हो, कंकरीली मिट्टी हो, कड़ी धूप हो, पानी हो खाद न हो, देखभाल भी न हो, पर यह पौधा जीवन की अदम्य घोषणा करता हुआ उगता रहता है, बाहर काँटे, अंदर रस।"[2]

---

1. धर्मयुग, अंक 40, 15 अक्तूबर, 1978 पृ0 27
2. ठेले पर हिमालय, धर्मवीर भारती, पृ0 68

'कैक्टस' हमारे युवा पीढ़ी की मानसिकता का प्रतीक है जो जीवन की हर चुनौती को स्वीकार कर जीवन में नया रस जगाता है।

इस प्रकार भारती जी के संस्मरणों में उनकी मूल्य दृष्टि पर विचार करते हुए सिंहावलोकन करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारती जी समय से लड़कर, समाज की तत्कालीन नैतिक व्यवस्था को आगे बढ़ाकर तथा सभी मनुष्यों में एक सच्ची मानवीय सहानुभूति, पारस्परिक सौहार्द्र और निश्छल स्नेह की प्रतिष्ठा की है क्योंकि हजारों वर्ष पूर्व हमारे देश में साहित्य और दर्शन में जीवन मूल्यों की जो सुरसरिता प्रवाहित हो रही थी वह आज भी किसी न किसी रूप में निरन्तर चली आ रही है। इसीलिये भारती जी भारतीय दर्शन के प्रति लालायित रहे हैं।

प्रजातंत्र की पद्धति में भारती जी राष्ट्र की गतिविधियों का संचालन करने के लिये केवल नेता या प्रशासक को महत्वपूर्ण नहीं मानते बल्कि वह बुद्धिजीवियों को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा आधुनिकता एवं परम्परा के प्रति सदैव सजग दिखाई देते हैं। इसीलिये वह एक दूसरे की निष्ठा पर पूर्ण विश्वास और आस्था बनाये रखते हैं।

****

अध्याय सात

अध्याय - सात

भारती का समीक्षा साहित्य और जीवन-मूल्य

1. वैयक्तिक मूल्य चेतना
2. सामाजिक मूल्य चेतना
3. आर्थिक मूल्य चेतना
4. सांस्कृतिक मूल्य चेतना
5. पौराणिक मूल्य चेतना
6. राजनैतिक मूल्य चेतना
7. साहित्यिक मूल्य चेतना
8. दार्शनिक मूल्य चेतना
9. मनोवैज्ञानिक मूल्य चेतना
10. भारती की समीक्षा पद्धति : जीवन दृष्टि के आलोक में

भारती का समीक्षा साहित्य और जीवन-मूल्य :

यूँ तो धर्मवीर भारती एक समीक्षक के रुप में प्रतिष्ठापित नहीं है किन्तु एक शोधकर्ता, सम्पादक, गद्यकार एवं निबन्धकार के रुप में उनका समीक्षक रूप सामने आया है। आपने अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थों का प्रणयन भी किया है। इनके आलोचनात्मक ग्रन्थों से भी इनकी समीक्षा-पद्धति का बोध होता है। प्रगतिवाद एक समीक्षा, मानव-मूल्य और साहित्य, सिद्ध साहित्य, आलोचनात्मक ग्रन्थों के साथ शोधपरक निबन्ध पत्रिकाओं परिचयात्मक लेखों एवं टिप्पणियों का भी विशेष महत्व है। भारती जी की सर्जनात्मक रचनाओं के प्राक्कथनों अथवा भूमिकाओं एवं वक्तव्यों में भी इनकी समीक्षा पद्धति के दर्शन होते हैं। इनके समीक्षात्मक ग्रन्थों में जीवनमूल्यों की दृष्टि से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं।

1. वैयक्तिक मूल्य चेतना :

नयी कविता आज के जीवन की यथार्थवादी कविता है। रचना के धरातल पर नयी कविता वैयक्तिक अनुभूति की कविता है। जिसमें आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ आत्मविस्तार की भावना भी रहती है। वैयक्तिक अनुभूति को महत्व देने के कारण ही नयी कविता में अनुभूति की प्रामाणिकता और ईमानदारी पर विशेष बल दिया गया और आत्मविस्तार में जीवन का विराट रूप काव्य का विषय बना। आधुनिक कवियों ने छायावादी काव्य में वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्व तो दिया किन्तु साहस के अभाव में आत्माभिव्यक्ति नहीं कर पाये किन्तु प्रगतिवादी कविता आर्थिक सम्बन्धों को महत्व देने के कारण सामूहिक जीवन को अभिव्यक्त नहीं कर पाये। अतः व्यक्ति मानव उपेक्षित रह गया किन्तु नयी कविता ने व्यक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया। परिणामतः वैयक्तिक जीवन मूल्य इसमें स्पष्ट परलक्षित होते हैं। जो वैयक्तिक मूल्य चेतना का जीवंत दस्तावेज बन गये हैं। नयी कविता में व्यक्ति पर इतना अधिक बल देने का परिणाम यह हुआ कि नयी कविता एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की 'पर्सनल सिचुएशन' की कविता बन गयी। भारती ने मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा के लिये समानता की

बात उठाई है। समानता का महत्व उसी समाज में मिल सकता है जिसमें व्यक्ति स्वातन्त्र्य हो भारती जी इससे पूर्णतया सहमत दिखाई देते हुए कहते हैं :-

"मानवीय मूल्य अन्ततोगत्वा मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में ही पनपते हैं और उनका विकास व्यक्ति से समूह या समाज की ओर होता है।"[1]

भारती जी का कहना है कि मानवीय मूल्यों का जन्म वैयक्तिक जीवन में होता है लेकिन उसका विकास समाज में होता है। इसलिये व्यक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती है क्योंकि यदि व्यक्ति ने मूल्यों का तिरस्कार कर दिया तो समाज में उसका कोई महत्व नहीं रहेगा। इसीलिए मानवीयता की प्रतिष्ठा के लिए नये कवियों ने व्यक्ति को अनिवार्य माना है, जो पूँजीवाद की देन है तभी वह स्वातन्त्र्य का हक माँगता है, ताकि वह अपनी वैयक्तिक सार्थकता एवं दायित्व को खोज सके। यह तभी सम्भव होगा जब वैयक्तिक अनुभूति समाज के सन्दर्भो से जुड़ी हो।

केदारनाथ सिंह की एक कविता है - 'फूल को हक दो' जिसमें उन्होंने हवा, फूल, लहर के प्रतीकों से इसे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है -

"लहर को हक दो..... वह कभी संग पुरवैया के
कभी संग पछुवा के, इस तट पर भी आए..... उस तट पर भी जाए
और किसी रेती पर सिर रखकर सो जाए
नयी लहर के लिए ।"[2]

वास्तव में नयी कविता मनुष्य के केवल बाह्य आर्थिक उन्नति एवं वैयक्तिक विचार स्वातन्त्र्य पर ही बल न देकर नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्शो पर भी बल देती है। नयी कविता व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है।

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 34
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 127 से ग्रहण

इसीलिये भारती जी ने नयी कविता में मानव-मूल्यों पर विशेष बल दिया है और लिखा है कि इसको पाने के लिये हमें व्यक्ति को खुद दिशा, रास्ता तय करना पड़ेगा इसके लिए विवेक साहस और व्यक्ति की प्रतिभा की आवश्यकता है जो मानव-मूल्यों की रक्षा के लिये खतरा भी उठा सके।

"नयी कविता उन मूल्यों के पुनरन्वेषण और पुन:स्थापना के लिए अग्रसर होती हैं। नयी कविता मनुष्य की 'आन्तरिकता' को फिर से प्रतिष्ठित करना चाहती हैं, उसके असामंजस्य को दूर करना चाहती है।"[1]

भारती जी कहते हैं कि मानव-मूल्यों की रक्षा वैयक्तिकता में हो सकती है। यदि मनुष्य अपने विवेक और साहस का प्रयोग करते हुए सामाजिक हो क्योंकि यदि वह सामाजिक नहीं है तो वैयक्तिकता कितनी भी प्रामाणिक और ईमानदार हो वह व्यक्ति के जीवन की अन्तर्दशाओं को अभिव्यक्ति नहीं कर सकती है और वैयक्तिकता जब तब सामाजिक नहीं होगी तब तक वह स्थायी भी नहीं रह सकती है। इसलिये वैयक्तिकता को व्यापक परिवेश और व्यापक मानवीय सम्बन्धों से जोड़ना चाहिए तभी वह स्थायी रह सकती है। वैयक्तिक मूल्य चेतना सामाजिक मूल्य चेतना का व्यापक अर्थ ग्रहण किये हैं। अज्ञेय का "दीप" पहले अपने को गर्वभरा, मदमाता अकेला व्यक्ति सिद्ध करता है और बाद में समाज को समर्पित हो जाता है। वैयक्तिकता का प्रतीक यह 'दीप' भी मानवीय मूल्य मर्यादा के प्रति समर्पित है और विवेकपूर्ण दायित्व को स्वीकार करता है-

"यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।"[2]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 125
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 91

प्राचीनकाल में समस्त मानव-मूल्यों का स्रोत ईश्वर था। किन्तु वर्तमान युग में ईश्वर की सत्ता का अवमूल्यन हो गया तथा मनुष्य अपने को स्वत: सार्थक और मूल्यवान होता गया तथा आंतरिक शक्तियों से सम्पन्न स्वत: निर्णय लेने वाला प्राणी बन गया।

"मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा किसी एक व्यक्ति की सुखानुभूति या उसके कला व्यक्तित्व की मौज की समस्या नहीं है। अन्ततोगत्वा वह भी एक व्यापक सामाजिक तत्व है और इसीलिये यदि व्यापक मानवीय गौरव की स्थापना हो सकती है तो उसी स्थिति में कि समाज के प्रत्येक छोटे-से-छोटे व्यक्ति के गौरव को वही महत्व दिया जाय जो बड़े-से-बड़े व्यक्ति को मिलता है।"[1]

भारती जी ने मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा के लिए सामाजिक समानता के सिद्धान्त को स्वीकार किया है क्योंकि -

'Personality' व्यक्ति का आन्तरिक धर्म है, विकासोन्मुख सृजनात्मक वृत्ति है जो स्थायी व्यापक मानवीय मूल्यों को उनकी समग्र सम्पूर्णता को पहचानकर उन्हें दायित्व के रुप में स्वीकार कर अपने व्यवहार को मर्यादित करती है। इस वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना आवश्यक है, क्योंकि वैयक्तिकता का स्फुरण मूल्य की समग्रता की खोज और उसकी स्थापना में ही होता है।"[2]

इस प्रकार कह सकते हैं कि वैयक्तिक मूल्य चेतना में विकासोन्मुख सृजनात्मक वृत्ति व्यक्ति-स्वातंत्र्य को मानव गौरव की रक्षा में सर्वाधिक महत्व दिया गया है क्योंकि स्वातंत्र्य की चेतना आने पर ही व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा करता है। भारती जी का "टूटा पहिया" इतिहास की सामूहिक गति के समक्ष अपनी वैयक्तिकता को सुरक्षित रखना चाहता है। वैयक्तिक एवं सामाजिक मूल्यों में किसी प्रकार की विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। क्योंकि

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 19
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 87

व्यक्ति का समाज एवं संस्कृति से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है इसके बिना व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास ही नहीं कर सकता है इसीलिए भारती जी ने व्यक्ति को समाजाभिमुख कर दिया है।

2. सामाजिक मूल्य चेतना :

भारतीय काव्य परम्परा सामाजिक भूमि से जन्मी है। सामाजिक जीवन में कुछ सामान्य आदर्शों को प्रतिष्ठित करने में जीवन मूल्यों का योगदान रहता है। सामाजिक मूल्य सम्पूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्ता प्रदान करते हैं। सामाजिक मूल्यों का केन्द्र जनकल्याण की धारणा होती है। इसीलिए भारती जी सामाजिक समानता की बात करते हुए कहते हैं :-

"जब हम सामाजिक समानता के सिद्धान्त को प्राथमिक मान्यता प्रदान करें, मनुष्य और मनुष्य को समान मानें, महाजन के समकक्ष लघुजन को रखें और दोनों के लिये समान नैतिक मूल्य और समान अधिकार और समान गौरव की घोषणा करें।"[1]

परिवार सामाजिक संगठन की प्राथमिक इकाई है। प्राणिजगत में प्रत्येक जीव किसी न किसी प्रकार का परिवार बसाता है और पारिवारिक जीवन में ही सुख अनुभव करता है। पारिवारिक संरक्षण में ही हमारी संस्कृति और सामाजिक चेतना पलती है। परिवार एक समूह संगठन और समिति है परिवार में सभी लोग एक साथ मिलकर रहते हैं। इसलिये सभी की यह नैतिक जिम्मेदारी होती है कि वह परिवार के सभी लोगों का ध्यान रखें।

हर युग के समाज में सामाजिकता का निर्धारण करने वाले कुछ मानव मूल्य होते हैं, जो प्रत्येक युग में समय और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं। मानव समाज मूलतः इन मानव मूल्यों की वैशाखी पर टिका हुआ है इसीलिये कल्याणचन्द्र ने लिखा है -

---

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ0 19

"मानव विचारवान प्राणी होने के नाते इन मूल्यों के सृजन और विनाश में एक अनिवार्य भूमिका निभाता है। इन्हीं मूल्यों के आधार पर वह अपनी तथा सामाजिक आचार संहिता को निर्मित एवं स्थापित करता है। नैतिकता, श्लीलता, पावनता आदि की मान्यतायें इन्हीं मूल्यों से ही निःसृत होती हैं।"[1]

साहित्यकार जिन परिस्थितियों में रचना करता है वह उसका सामाजिक परिवेश है और सामाजिक उपयोगिता इसी में है कि वह हमारी चेतना में उतरकर हमारी वृत्तियों का संस्कार करें तथा उन्हें उदात्त सामाजिकता प्रदान करें प्रेम समाज का उदात्त मूल्य है। भारती जी का कहना है :-

"लेकिन सच बात यह है कि प्रेम-भावना और उसका हल्का, सूक्ष्म और रोमानी स्वरूप न आज तक मर पाए हैं, न मर पायेंगे। यह एक शाश्वत भूख है। एक ऐसी भूख है जो न कभी बुझ पाई हैं, न कभी बुझ पायेगी। वह एक ऐसा फूल है जो लहरों के थपेड़े खाकर भी लहरों के सर पर मुकुट की तरह चढ़ा रहता है।"[2]

प्रेम एक शाश्वत मूल्य है जो हर परिस्थिति में देश और काल में सदैव स्थायी रहेगा क्योंकि मनुष्य और मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्धा होता है क्योंकि प्रेम सामाजिक होता है इसीलिए भारती जी लिखाते हैं -

"मनुष्य का अपनी परिस्थितियों से सम्बन्धा, मनुष्य और मनुष्य का रागात्मक अथवा सामाजिक सम्बन्धा, मनुष्य का निरपेक्ष सत्य, मर्यादा, मूल्य या किसी अरुप भावात्मक अथवा आदर्शात्मक सत्ता से सम्बन्धा, इन सम्बन्धों की विविधाता और इनका वैचित्र्य तथा इन सबके जटिल प्रभाव से निर्मित होने वाला मानव-व्यक्तित्व अपनी असंख्य विविधाताओं में अपरिमित सम्भावनाओं को छिपाये रहता है।"[3]

---

1. समकालीन कवि और काव्य : कल्याणचन्द्र, पृ0 58
2. प्रगतिवाद एक समीक्षा : धर्मवीर भारती पृ0 85
3. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती पृ0 116

सामाजिक मूल्यों के अन्तर्गत मानव अपने व्यक्तित्व तथा आदर्श का निर्माण करता है। क्योंकि ये हमारी संस्कृति के शाश्वत मूल्य हैं। पर मैं इनको शाश्वत कहकर इनकी मानवीयता को कम नहीं करना चाहती इसीलिये भारती जी ने स्वीकार किया है -

"सामाजिकता 'आन्तरिक' है, केवल बाह्य नहीं। वह दूसरों की पीड़ा पहचानने का व्रत लेकर चलती है, क्योंकि व्यक्ति के रुप में उसने खुद पीड़ा भोगी है। आन्तरिक सामाजिकता पर आग्रह उस मानवीय विघटन को चुनौती देता है जो आज व्यक्ति के विनाश और समाज के खोखलेपन में प्रतिबिम्बित हो रहा है।"[1]

सामाजिक मूल्य चेतना में भारती जी की दृष्टि जन सामान्य के प्रति विशेष रही है इसीलिये उन्होंने विवेक और दायित्व जैसे जीवन मूल्यों की स्थापना की है।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारती जी ने अपने समीक्षा साहित्य में भारतीय दर्शन, वेदान्त, वैष्णव और सन्त साहित्य का अध्ययन किया था। इसीलिए भारतीय चिन्तन की मानववादी परम्परा उनके चिन्तन का मूल आधार बन गयी थी ।

3. आर्थिक मूल्य चेतना :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले हमने जो सपने संजोये थे वे चूर-चूर हो गये आज आम आदमी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी है क्योंकि अर्थ जीवन की धुरी बन गया है। अभावों ने मनुष्यों के जीवन को घोर निराशा से भर दिया है। भौतिकतावादी युग में किसी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय उसकी आर्थिक स्थिति से लगाया जाता है। इसीलिये आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण को अधिक बढ़ावा दिया गया जिससे आर्थिक क्षेत्र काफी सम्पन्न हुआ। इसके लिये नये कारखानों, मशीनों की स्थापना हुई और नये-नये आविष्कार हुए

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ० 128

इस व्यवस्था से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच अन्तर्विरोध पैदा हुआ तथा अपराध की प्रवृत्ति तथा संघर्ष बढ़ने लगा जिससे प्रेम और सहयोग की भावना का लोप होने लगा क्योंकि धन संचय की प्रवृत्ति को प्रमुख मान लिया था। इसीलिए भारती जी ने लिखा है -

"जीवन-संघर्ष ने उन्हें स्वार्थी और खूँख्वार बना दिया है। यह प्रतिहिंसा, विकृति निर्मता, स्वार्थ और पाशविकता, सभी पूँजीवादी शोषण की प्रतिक्रियायें थी। पूँजीवाद ने मानवीय सम्बन्धों का आधार पारस्परिक प्रेम और सहयोग नहीं रहने दिया। उसने धनसंचय को ही प्रमुख स्थान दिया ।"[1]

भारती जी पूँजीवादी संस्कृति के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए लिखते हैं:-

"मानवता पूँजीवाद के आश्वासनों पर अपना विश्वास खो बैठी थी, उसका दम पूँजीवादी शिकंजे में घुट रहा था लेकिन वह विद्रोह कर पाने में सर्वथा असमर्थ थी। उसमें केवल एक नपुसंक गुस्सा था, एक बेबसी और लाचारी की खीज, जो बेहद कटु होती है, बेहद, तीखी होती है, लेकिन सृजनात्मक बिल्कुल नहीं होती।"[2]

इस पूँजीवादी संस्कृति के परिणाम स्वरूप मानवता की सृजन-शक्ति पर भयानक प्रभाव पड़ा था उसने मनुष्य को निर्वीय बना दिया था जिससे आपस का सहयोग और सहानुभूति नष्ट हो गयी थी। पूँजीवादी संस्कृति से असन्तुष्ट होकर लारेन्स इसके विरूद्ध क्रान्ति लाना चाहते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था का स्पष्ट विवेचन लारेंस ने बर्टण्ड रसेल के नाम लिखे गये पत्र में इस प्रकार किया है :-

"अपने दैनिक जीवन के लिये हमें आर्थिक आधार के अलावा कोई दूसरा आधार ढूँढ़ना पड़ेगा। हमें आर्थिक प्रश्न से तो छुटकारा पाना ही है। शासन पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना होगा...... इस तरह की कोई-न-कोई बात करनी ही पड़ेगी। मानव की

---

1. मानव मूल्य और साहित्य ; धर्मवीर भारती, पृ0 28

2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 29

आत्मा मुक्त हो, इस प्रकार का कोई अर्थ नहीं है यदि उसके जूते पाँव को इस बुरी तरह काट रहे हों कि वह चल भी न पायें। हमारे सब आदर्श ढोंग है यदि हम पूँजी की श्रृंखलाएँ तोड़ नहीं डालते ।"[1]

आज पूँजीवादी संस्कृति को बदलने का जो प्रयास हुआ है। वह समस्त मानवता के हित में है इससे देश विकास की ओर अग्रसर होगा और सभी मानव जाति का कल्याण होगा। जब हम पूँजीवादी सभ्यता में समानता लाकर सभी के कल्याण के लिए कुछ कार्य करेंगे तभी जीवन की वाह्य प्रगति के साथ आन्तरिक प्रगति हो सकेगी। भारती जी लिखते हैं -

"आर्थिक प्रगति जीवन की वाह्य प्रगति है और इस वाह्य निर्माण के लिए आंतरिक निर्माण आवश्यक है। मन्दिर बनाने, उसमें देवमूर्ति स्थापित करने से अधिक महत्वपूर्ण है, पूजा भाव जागृत करना। मानव जीवन के आर्थिक पहलू का साम्यवादी पद्धति से निर्माण करने का जो विरोध करता है, वह मानवता से विश्वासघात करता है, वह जहरीले पूँजीवाद के हाथ में खेलता है, लेकिन जो केवल आर्थिक साधनों से आदमी की आत्मा को तोलना चाहता है जो उच्च आध्यात्मिक सौन्दर्य से आदमी को वंचित करना चाहता है, वह सत्य से विश्वासघात करता है।"[2]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानव के अस्तित्व की रक्षा आर्थिक पहलू से नहीं हो सकती है बल्कि उसके लिये आन्तरिक निर्माण की आवश्यकता होती है।

आज का मानव अपने अर्थ के अभाव में जीवन को सही दिशा नहीं दे पा रहा है क्योंकि आर्थिक विषमतायें अपना विकराल रूप धारण किए हुए हैं सामान्य जन रोजी-रोटी के लिये संघर्ष करता दिखाई देता है।

---

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ0 31-32
2. प्रगतिवादः एक समीक्षा, धर्मवीर भारती, पृ0 218

जहाँ प्रगतिवादी मानववाद मनुष्य की आर्थिक प्रगति को आधार बनाता है। वहाँ सांस्कृतिक मूल्य इसके लिये गौण हो जाते हैं जबकि भारती जी आर्थिक मूल्यों को गौण तथा सांस्कृतिक मूल्यों को प्राथमिक मानते हैं इसीलिये उन्होंने लिखा है :-

"सामन्तवाद की तुलना में उस समय पूँजीवादी विचार धाराएँ मानवता को अधिक ग्राह्य मालूम पड़ी। पूँजीवाद भी उस समय विकास की नयी दिशाएँ प्रदान कर रहा था और गतानुगतिक अन्धपरम्पराओं से निकलकर विश्व संस्कृति की एक नये स्तर पर स्थापना कर रहा था। चूँकि उसे मशीन और नये आविष्कारों की जरुरत थी अतः वह विज्ञान का हामी था।"[1]

भारती का कहना है कि अर्थ का प्रयोग किसी एक वर्ग विशेष के लिए नहीं होना चाहिए बल्कि इसका प्रयोग व्यापक मानव हित में किया जाना चाहिए। इसीलिये मार्क्स के जीवन दर्शन का केन्द्र विन्दु अर्थ को नहीं मानव को स्वीकारा गया है जिससे भारती पूर्ण सहमत हैं।

4. सांस्कृतिक मूल्य चेतना :

भारती जी सांस्कृतिक मूल्य चेतना के कवि है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है और वह संचय से विकसित होती है। किसी भी देश की संस्कृति उसके लिए अमूल्य होती है। समुन्नत और सौन्दर्यमयी संस्कृति एक स्वस्थ और सुन्दर समाज का निर्माण करती है। भारती जी ने सांस्कृतिक मूल्यों को विघटित किया है क्योंकि भारतीय संस्कृति की मानववादी परम्परा उनके चिन्तन का मुख्य आधार रही है। ये सांस्कृतिक मूल्य ही मानव जीवन को परिष्कृत कर उसे उदार बनाते हैं। डॉ0 देवराज ने लिखा है -

---

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ0 27

"सांस्कृतिक मूल्य हमारे जीवन को परिष्कृत, विवेक सम्पन्न, उदार और संघर्षशील बनाते हैं, केवल विवशता और पराजय का बोध देने वाले मूल्य मानव-मूल्य नहीं हो सकते। किसी भी मूल्य के पैदा होने के लिए जीवन में रागात्मक या आस्था का होना प्राथमिक और अन्तिम शर्त है अपने द्वारा अर्जित मूल्यों के स्थायित्व की आशा वही लेखक कर सकता है जिसने मनुष्य और कृतित्व को उसके समूचे सांस्कृतिक इतिहास और संभवतः समूचे राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखने का ईमानदारी से प्रयत्न किया है।"[1]

भारती जी अपने समूचे साहित्य में भारतीय संस्कृति के प्रति सदैव उदार दिखाई देते हैं। इसीलिये उन्होंने वैयक्तिक स्वतन्त्रता को स्वीकार करते हुए लिखते हैं :-

"यह उसी सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्भव है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है और अपने दायित्व को खोजकर उससे अपनत्व अनुभव कर, उसे अपना स्वधर्म मानकर उसी में अपने अस्तित्व की सार्थकता मानता है।"[2]

विकासोन्मुख संस्कृति को प्राणवान बनाने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म या दायित्व को स्वीकार करना चाहिए जिससे मानवीय संस्कृति का विकास हो सके। मानवीय संस्कृति का विकास मनुष्य भी अपने चिन्तन द्वारा कर सकता है क्योंकि चिन्तन के द्वारा ही मनुष्य अपने जीवन को सरस सुन्दर और कल्याणमय बना सकता है। डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकर ने उचित ही लिखा है -

"मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं। अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति के साधनों का जिस ढंग से प्रयोग करता है, उससे उसकी सभ्यता का निर्माण होता है। पर चिन्तन द्वारा अपने जीवन को सरस, सुन्दर और कल्याणमय बनाने के लिये मनुष्य जो यत्न करता है,

---

1. साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध, डॉ0 देवराज, भूमिका
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 89

उसका "परिणाम" संस्कृति के रूप में प्राप्त होता है।...... सभ्यता और संस्कृति का यह भेद महत्वपूर्ण है। "[1]

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य अपने चिन्तन के द्वारा जो सृजन करता है वही संस्कृति का निर्माण करती है। मानवीय संस्कृति का विकास भौतिक आवश्यकताओं को प्राप्त करने वाले साधनों से नहीं होता है बल्कि धर्म या दायित्व को ग्रहण करने से होता है –

"धर्म या दायित्व की स्वीकृति हर व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक सार्थकता प्रदान करती है। इसी के द्वारा उसके स्वतन्त्र अस्तित्व को नये सामाजिक अर्थ मिलते हैं और वह विकासोन्मुख संस्कृति की प्राणवान् इकाई बनने में समर्थ हो पाता है।"[2]

भारती जी इसे स्पष्ट करते हुए आगे लिखाते हैं-"यह उसी सांस्कृतिक व्यवस्था में सम्भव है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है और अपने दायित्व को खोजकर उससे अपनत्व अनुभव कर, उसे अपना स्वधर्म मानकर उसी में अपने अस्तित्व की सार्थकता मानता है।"[3]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि संस्कृति एक सामाजिक विरासत है जो संचय से विकसित होती है। जिससे स्वस्थ एवं सुन्दर समाज का निर्माण होता है। इस समाज का निर्माण करने के लिए हमें अपने दायित्व और विवेक को जाग्रत करना होगा क्योंकि मानव का आंतरिक विकास एवं नैतिक उत्थान विवेक के द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

54. पौराणिक मूल्य चेतना :

भारतीय संस्कृति में पुराणों में इसका बड़ा महत्व है। भारतीय धर्माचार्यो ने धर्म और

---

1. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ0 19
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 89
3. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 89

कर्मकाण्ड की व्याख्या करने के लिये पुराणों की रचना की थी। इन ग्रन्थों में विभिन्न धार्मिक कथायें और आख्यान दिये गये हैं। जिनके माध्यम से भारतीय जनमानस को सदाचार के मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिलती है। इन आख्यानों में मनुष्य के लिए महान सन्देश प्राप्त होते हैं कि किस प्रकार वह अपने जीवन का सफलतापूर्वक निर्वाह करे। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के अनेक कर्मकाण्डों का वर्णन विस्तार से मिलता है।

यद्यपि इन पुराणों की कथाओं का यथार्थ की दृष्टि से कोई ऐतिहासिक या प्रामाणिक आधार नहीं है किन्तु धर्म और दर्शन की दृष्टि से सूक्ष्म व्याख्या का बड़ा महत्व है। एक तरह से कहा जाय तो पुराण भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ हैं।

"हमें इतिहास के केवल बड़े-बड़े राजाओं के वैभवशाली महलों का रोमैंटिक प्रेम-कथाओं का साम्राज्य के लिए युद्धों का ही चित्रण नहीं करना चाहिए बल्कि इतिहास के जिस युग को भी हम उठायें, उसके वर्ग संघर्ष की परिस्थितियों का चित्रण करें अर्थात् प्राचीन इतिहास को राष्ट्रीयता की दृष्टि से न देखा जाकर केवल वर्ग संघर्ष की दृष्टि से देखा जाना चाहिए।"[1]

'अँधायुग' के पात्रों का चरित्र एक तरफ पौराणिक कथा से जुड़ा हैं तो दूसरी ओर मानव जीवन को मूल्य देने वाली आस्था के प्रतीक हैं ।

डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है -

"अंधायुग के चरित्र एक तरफ पौराणिक कथा से जुड़े हैं और दूसरी तरफ आधुनिक मूल्यों के भिन्न-भिन्न संकटों को इतने गहन स्तर पर जीते हुए चित्रित किये गये हैं कि वे अपने अपने विचारों के प्रतीक भी बन गये हैं कृष्ण, अश्वत्थामा, युयुत्स, माता गाँधारी पात्र के रुप में एक स्तर पर कथानक को आगे बढ़ाते हैं तो दूसरे स्तर पर अपने प्रतीक मूल्य को भी खोलते चलते हैं।"[2]

---

1. धर्मवीर भारती : चिंतन और अभिव्यक्ति, डॉ0 हरिवंश पाण्डेय, पृ0 193
2. नयी कवितायें : एक साक्ष्य, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ0 104

'अंधायुग' की भूमिका में भारती जी ने लिखा है -

"पर एक नशा होता है - अन्धकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराईयों में उतरते जमाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कणों को बटोर कर, बचाकर, धरातल तक ले आने का इस नशे में इतनी गहरी वेदना और इतना तीखा सुख घुला-मिला रहता है कि उसके आस्वादन के लिये मन बेबस हो उठता है उसी की उपलब्धि के लिये यह कृति लिखी गयी ।"[1]

उपर्युक्त कृति में पौराणिक मूल्यों को आधुनिक स्तर पर ग्रहण किया गया है। भारती जी ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग करते हैं इनके पौराणिक प्रतीक आज के जीवन मूल्यों के संकट की अभिव्यक्ति करते हैं। वृहन्नला एक पौराणिक प्रतीक है जिसके माध्यम से आज के कलाकार की दोहरी मानसिकता का यथार्थ चित्रण हुआ है। भारती का ग्रीक पौराणिक प्रतीक 'प्रमथ्यु' जीवन में साहस और बलिदान जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है।

'कनुप्रिया' में राधा श्रीकृष्ण के इतिहास को अपने व्यक्तित्व के बल से अर्थवान बनाती है। ऐसे ही कुछ महत्वपूर्ण क्षणों का उल्लेख करते हुए भारती जी ने लिखा है -

"लेकिन ऐसे भी क्षण होते हैं जब हमें लगता है कि यह सब बाहर का उद्वेग है- महत्व उसका नहीं है - महत्व उसका है जो हमारे अन्दर साक्षात्कृत होता है। चरम तन्मयता का क्षण, जो एक स्तर पर सारे वाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ। जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है इस तरह कि समस्त बाह्य अतीत, वर्तमान और भविष्य सिमटकर उस क्षण में पुंजीभूत हो गया है और हम नहीं रहे।"[2]

---

1. अंधायुग, धर्मवीर भारती, भूमिका
2. कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, भूमिका

पौराणिक मान्यताओं को नवीन धारणाओं के अन्तर्गत व्याख्यायित करते हुए भारती जी ने अपनी पुस्तक मानव मूल्य और साहित्य में लिखा है कि लेखकों ने इस संसार का अन्त होने की जो धारणायें बनायीं उसका ऐतिहासिक संदर्भ में एक विशेष अर्थ था-

"एक ओर मूल्यों का सम्पूर्ण विघटन था और दूसरी ओर मनुष्य में नूतन मूल्यान्वेषण का साहस और चेतना दोनों समाप्त होती जा रही थी। इस प्रकार चेतना की वह परिधि जो संसार है, वस्तुतः पूर्णतया विश्रृंखल और विघटित हो गया था और उसका केन्द्र विन्दु मनुष्य अन्दर से बिल्कुल रिक्त था। अपने गौरव और अपनी सार्थकता की प्रतिष्ठा और रक्षण के प्रति उसकी यह संवेदना जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं वह भी इस नये परिवेश में निश्शक्त और अक्षम थी ।"[1]

प्रगति के प्रति सचेष्ट और आचरण को महत्व देते हुए वे एक अन्य स्थल पर लिखते हैं -

"प्रगति का विधायक है मनुष्य का स्वतन्त्र विवेकपूर्ण आचरण अतः इतिहास में जिन प्रतिक्रियावादी राजसत्ताओं, धार्मिक सम्प्रदायों या अर्थ-व्यवस्थाओं ने मनुष्य का विकास और प्रगति रोकनी चाही है उसका यही प्रयास रहा है कि किसी तरह मनुष्य के स्वतन्त्र विवेक को भौतिक अभाव, कुरुचि या अनुशासन द्वारा पराभूत कर उसकी क्रिया को विवेक से रहित पागलपन, मूर्छा, या भावावेश की क्रिया मात्र बना दिया जाय।"[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती जी ने पौराणिक चरित्रों के माध्यम से अंधायुग में मानव जीवन को मूल्य देने वाली आस्था के प्रतीक के रुप में प्रस्तुत किया है। वहीं कनुप्रिया में पौराणिक मान्यताओं को नवीन धारणाओं के अन्तर्गत व्याख्यायित करते हुए राधा श्रीकृष्ण के इतिहास को अपने व्यक्तित्व के बल से अर्थवान बनाती है।

---

1. मानव मूल्य और साहित्य धर्मवीर भारती, पृ0 20
2. मानव मूल्य और साहित्य धर्मवीर भारती, पृ0 80

6. राजनैतिक मूल्य चेतना :

जब बात राजनीति की चल रही हो तो उससे कोई भी व्यक्ति अछूता नहीं रह सकता है। वर्तमान समय में हर व्यक्ति की जिन्दगी को राजनीति प्रभावित करती है आज की सामाजिकता भी राजनीति के आधार पर बन और बिगड़ रही है। व्यक्ति, वर्ग, समूह, समाज, धर्म, जाति, सम्प्रदाय पंथ सब के सब या तो राजनीति की बात करते हैं या राजनीति के लिए। इसलिये वर्तमान समय में व्यक्ति राजनीति से इस तरह जकड़ उठा है कि उसकी अवहेलना करना सत्य की अवहेलना करना है। राजनीति को मनुष्य ने जन्म दिया और उसने ही मनुष्य को छलना शुरु कर दिया। ऐसे में जन सामान्य की जागरूकता हमारे जनतन्त्र के भावी विकास के लिए आवश्यक है। भारती जी ने लिखा है -

"जब नायकहीन क्रान्तिक होती है; चाहे चेतना में, चाहे राजनीति में - तब यह अनिवार्यता दृष्टिगोचर होने लगती है कि अब हमारा सारा कर्म अपने चिन्तन और अपने ही विवेक से उद्भूत होना चाहिए, क्योंकि अपना रास्ता हमें खुद तय करना है और खुद जो रास्ता, जो मूल्य, जो दिशा हम चुनते हैं उसके लिये फिर सदा हम ही उत्तरदायी रहेंगे चाहे उसके लिये जो भी खतरा उठाना पड़े, और जब उस पर आक्रमण होगा तो हम उसकी रक्षा करेंगे।"[1]

भारत जैसे अल्पविकसित प्रजातंत्र में राजनीतिक मूल्यों का विघटन हो रहा है इसीलिए भारती जी राजनीतिक मूल्यों के प्रति आम आदमी को सचेत करते दिखाई देते हैं यों तो हर आदमी की जिन्दगी राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारणों से प्रभावित होती है इन सबके बीच वह दायित्वों का निर्वाह विवेकपूर्ण ढंग से करे जिससे वह अपना तथा अपने देश समाज और राष्ट्र के निर्माण में अमूल्य योगदान दे सकें। राष्ट्रीयता हर वर्ग के लिए गौरव

---

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ0 65-66

की चीज होती है। ये अपने गर्व के साथ-साथ दूसरों का सम्मान भी करती है। लेखक ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है -

"यह उदार राष्ट्रीयता जो अपने गर्व के साथ-साथ दूसरों का सम्मान भी पहचानती है, हर जाति के लिए एक गौरव की चीज होती है और महान् रूसी जाति के लिए भी यह राष्ट्रीयता, दृढ़ता और गौरव की चीज है। यह रूस की संस्कृति और प्रतिष्ठा को बल और प्रेरणा देगी ।"[1]

आज सबसे बड़ा संकट मनुष्यता का है क्योंकि राजनीति, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में इसका अवमूल्यन हो रहा है ।

"हमने मात्र राजनीति को यह मान लिया कि यही उन विन्दुओं के विरूद्ध है जो मनुष्यता के बिन्दु हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि हमारे जैसे पुराने देश में, हमारी पूरी जीवन पद्धति में, राजनीति बहुत छोटा सा अंश है। हमारे यहाँ मनुष्यता के विरूद्ध जो विन्दु हैं, वे सामाजिक हैं, आर्थिक हैं, पारिवारिक हैं, शिक्षागत हैं, संस्कृतिगत हैं, जिन्होंने हमारी पूरी जीवन-पद्धति को ग्रस्त कर रखा है।"[2]

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि जीवन को राजनीति से अधिक सामाजिक वैषम्य प्रभावित करता है। इसीलिये महात्मा गाँधी ने राजनीति को नैतिक प्रतिमानों से जोड़ दिया था राष्ट्र के नव-निर्माण में लेखक अपने दायित्व का अनुभव कराते हुए सामान्य जन की मुक्ति की बात करते हैं क्योंकि जब तक सामान्य जन स्वतंत्र नहीं होगा तब तक विकास सम्भव नहीं है स्वतंत्रता का मतलब दैनिक वस्तुओं की पूर्ति होने से नहीं है बल्कि मानस में अन्तर्निहित मृत परम्पराओं को जागृत करना है। भारती जी ने लिखा है-

---

1. प्रगतिवाद : एक समीक्षा, धर्मवीर भारती, पृ0 79
2. धर्मवीर भारती से साक्षात्कार : सम्पा0 पुष्पा भारती, पृ0 47

"स्वातन्त्र्य न केवल एक वाह्य परिस्थिति है वरन् एक आन्तरिक मूल्य भी है और जब साहित्यकार सामान्य जन के स्वातन्त्र्य का दायित्व लेता है तो वह सम्पूर्ण वाह्य और आन्तरिक जटिल मानवीय यथार्थ की पृष्ठभूमि में उसे ग्रहण करता है, केवल सीमित राजनीतिक अर्थ में नहीं है।"[1]

भारती जी सामान्य जन की मुक्ति के लिए सदैव तत्पर रहे हैं क्योंकि -

"भारती में सदा से राजनीति को चिन्तन से अनुशासित एवं मूल्यों से अनुप्रेरित रखा गया था। जिस-जिस ने जिस भी काल में इस मर्यादा को निभाया वह राजा या उसका राज्य-काल स्मरणीय रहे और देश के इतिहास को सही दिशा में मोड़ते रहे। इस समय जो अंधकार है वो इसी कारण है कि राजनीति दाम और कीमत की राजनीति हो गयी है, मूल्यों की राजनीति नहीं है।"[2]

उपर्युक्त कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से ही राजनीति सदैव मूल्यों के प्रति अनुशासित रही है। उसमें जन सेवा और आदर्श कूट-कूट कर भरा हुआ था उसमें स्वार्थ की भावना और धन लोलुपता की भावना नहीं थी। उस समय रामराज्य की स्थापना करना सभी का उद्देश्य रहता था। इस प्रकार भारती जी आज की निहित स्वार्थो वाली राजनीति की भर्त्सना करते हुए रामराज्य की स्थापना करने का प्रयास किया है।

7. **साहित्यिक मूल्य चेतना :**

साहित्य समाज का दर्पण है इसलिये साहित्य का मानव-जीवन के साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध है क्योंकि मानव जीवन के ही परिवेश में साहित्य का उद्गम और परिपोषण होता है। साहित्य का सम्बन्ध साहित्यकार की वैयक्तिक अनुभूति चेतना तथा समाज, राष्ट्र और विश्व

---

1. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ0 52
2. धर्मवीर भारती से साक्षात्कार : सम्पा0 पुष्पा भारती, पृ0 16।

के साथ है इसीलिए भारती जी का मानना है कि साहित्य का प्रयोग किसी वर्ग विशेष के लिये होना चाहिये बल्कि समस्त साहित्य का निर्माण व्यापक मानव हित में किया जाना चाहिए।

हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार -

"साहित्यशास्त्र में 'मूल्य' शब्द समाज कल्याण या मानव हितवाले व्यापक अर्थ तक सीमित नहीं है अन्यथा सब धर्मग्रन्थ ही सर्वश्रेष्ठ साहित्य माने जाते। कई बार साहित्य में वर्णित आचरण, घटना या व्यक्ति नीतिसम्मत नहीं होते, फिर भी उनका अपना मूल्य होता है। दुष्यन्त का शकुन्तला को छोड़ देना या भुला देना अच्छी बात नहीं परन्तु उसी घटना से शाकुंतलम् का मूल करुणा स्वर उभरता है या 'ईडिपस के जीवन की निर्मम नियति या "अन्ना' या 'चरित्रहीन' या ऐसे सैकड़ों उदाहरण विश्व साहित्य में दिये जा सकते हैं।"[1]

साहित्य में 'मूल्य' का नीतिपरक होना अनिवार्य नहीं है। क्योंकि अनैतिक लगने वाली घटना भी साहित्य में कभी-कभी मूल्यवान हो सकती है क्योंकि -

"साहित्य की महत्ता और सामाजिक उपयोगिता इसी में है कि वह हमारी चेतना में बहुत गहरे उतरकर हमारी वृत्तियों का संस्कार करता है, उन्हें एक उदात्ता सामाजिकता प्रदान करता है। वह चाहे किसी भी संकीर्ण मतवाद का प्रचार करे या न करे, वह किसी भी तात्कालिक समस्या का स्पष्ट समाधान दे या न दे, किन्तु यदि उसमें वह शक्ति है कि वह हमारी वृत्तियों को सुसंस्कृत बनाता है तो वह साहित्य कल्याणकारी है।"[2]

अन्तरात्मा के ध्वंसावशेष' के अन्तर्गत आरम्भ में एडिथ सिटवेल की उन पंक्तियों को अवतरित किया गया है जिसमें युद्ध के पश्चात् निराशा, व्याकुलता, विषाद आदि की अनुभूति होती है। लेखक ने द्वितीय महायुद्ध के कारण पाश्चात्य देशों में व्याप्त स्थिति की चर्चा करते हुए मानव की सर्वोच्चता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि -

---

1. हिन्दी साहित्यकोश, पृ0 658-59
2. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 107

"मानवीय गरिमा के प्रति हमारा संवेदनशीलता का ही दूसरा रुप है और मनुष्य के गौरव को प्रतिष्ठित करने और उसकी निरन्तर रक्षा करने के प्रति हमारी जागरूकता ही हमारी जाग्रत अन्तरात्मा का प्रमाण है।"[1]

साहित्यकार ने पहली बार अपनी नियति के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा है कि हमारा देश जिस राष्ट्रीय आन्दोलन में संलग्न रहा उसने हमारे पूरे साहित्य को प्रभावित किया-

"जिन आदर्शो को, जिन मूल्यों को मानव-नियति की जिन प्रक्रियाओं को साहित्य में उठाया गया वे बहुत कुछ ऐसी प्रवृत्तियों को प्रतिबिम्बित करती हैं जिनका उद्‌गम हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की विभिन्न धाराओं और उपधाराओं में पाया जा सकता है।"[2]

मानव नियति के सन्दर्भ में साहित्यकार इतिहास निर्माण के प्रति अपना दायित्व अनुभव करता है क्योंकि साहित्य मानव वृत्तियों का संस्कार करता है इसलिये-

"साहित्यकार का यह नया दायित्व इतिहास- निर्माण का दायित्व है।मानव संस्कृति के मूल्यात्मक विकास का दायित्व है और सामान्य व्यक्ति के दायित्व से कई गुना जटिल दायित्व है, क्योंकि साहित्यकार की पक्षधरता और संघर्ष विवेक का स्तर बहुत गहरा है।"[3]

साहित्यकार मानव-संस्कृति के मूल्यात्मक विकास के दायित्व को वहन करता है तथा मानवीय गौरव की व्यापक प्रतिष्ठा करता है जिससे उच्च कोटि के राष्ट्रीय साहित्य में मानव-मात्र की संवेदनाओं को प्रतिष्ठित कर सके -

"साहित्य में राष्ट्र-निर्माण को व्यापक मानवीय नियति की पृष्ठभूमि में समझना श्रेयस्कर होता है। तभी यह सम्भव हो पाता है कि हम उस उच्च कोटि के राष्ट्रीय साहित्य

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 14
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 51
3. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 96

का निर्माण कर सकें जो मानव मात्र की संवेदनाओं को स्पर्श कर सकें।"[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारती जी ने व्यक्ति स्वातन्त्र्य विवेक और दायित्व की भावना को जीवन मूल्यों के रुप में साहित्य में प्रतिष्ठित किया है। ये मानव के जीवन को गौरव प्रदान करते हैं। भारती जी ने अपनी प्रतिभा के बल से देश-विदेश के साहित्य में भी इसे प्रस्थापित किया है। इसीलिये उन्होंने लिखा है -

"वह राष्ट्रीय कठमुल्लापन जो राष्ट्र की परिधि को ही लक्ष्मण रेखा मान लेता है और विश्वव्यापी मानवीय चेतना के धरातल की उपेक्षा करता है, हमारे दृष्टिकोण को संकीर्ण बनाकर वास्तविक राष्ट्रीय निर्माण में बाधक होने लगता है।"[2]

भारती जी के अनुसार विश्वव्यापी मानवीय चेतना के धरातल को आत्मसात् करना चाहिए क्योंकि सभी जगह मनुष्य और उसकी नियति तो एक है। इस व्यापक धरातल को आत्मसात किये बिना हम किसी भी राष्ट्रीय चेतना का निर्माण नहीं कर सकते हैं।

मध्ययुग के साहित्य में नायक महामानव पुरुष होता था जो समस्त मूल्यों और मर्यादाओं को अपने में समाहित किये था इसलिये उसे अपने दायित्व की दिशा को खोजने तथा उसे जनता तक पहुँचाने में कठिनाई नहीं होती थी। क्योंकि उनका नायक महामानव होता था इसीलिए भारती ने लिखा है कि -

"मध्य युग में साहित्यकार मानवीय नियति से अपना लगाव और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिये जिन माध्यमों का आश्रयम ग्रहण करता था, वे माध्यम उसके लिये भी उतने ही सार्थक थे जितने जनता के लिए, अतः उसे अपने दायित्व की दिशा खोजने और उसे जनता तक पहुँचाने में उतनी कठिनाई नहीं अनुभव होती थी। वे माध्यम थे वीरपूजा या धर्म ।"[3]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 48
2. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 49
3. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 49

साहित्य की वर्तमान स्थिति बहुत गम्भीर है। साहित्यिक क्षेत्र में आज छद्म बुद्धिवादिता ज्यादा बढ़ रही है। आज के साहित्य में हमें पहले जैसा आनन्द और सन्तोष नहीं प्राप्त होता है क्योंकि यदि साहित्यकार मानवीय नियति से सम्बद्ध होकर अपने दायित्व का निर्वाह करने के लिए सन्नद्ध होता है तो उसे अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। इसका समाधान तभी हो सकता है जब लेखक अपने लेखन में सच्चाई, निष्ठा, विवेक और ईमानदारी का प्रयोग करे:-

"लेखक को सबसे पहले अपना जीवन ईमानदारी से जीने का संकल्प करना चाहिये। हर सिद्धान्त और विचारधारा को अपने विवेक पर परखना चाहिये और अपने जीवन की गहन अनुभूतियों से जो सत्य उसे मिलता है, उसी को पूरी सच्चाई और निर्भयता के साथ प्रस्तुत करना चाहिये। चाहे आज का साहित्य हो या आज के पहले का, जो साहित्य लेखक की आन्तरिक निष्ठा, गहन अनुभूति और निर्भय विवेक के साथ लिखा गया, केवल वही साहित्य समय की कसौटी पर खरा उतरा है।"[1]

इस प्रकार साहित्यिक मूल्य चेतना में जीवन मूल्यों की अन्योन्याश्रिता दिखाई देती है। इसलिये डॉ० भारती साहित्य को व्यापक मानव मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखने के पक्षपाती रहे हैं। उनके अनुसार- "साहित्य मनुष्य का ही कृतित्व और मानवीय चेतना के बहुविध प्रत्युत्तरों (Responses) में से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रत्युत्तर है। इसलिये हम आधुनिक साहित्य के बहुत से पक्षों को या आयामों को बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं जब हमें उन्हें मानव मूल्यों के इस व्यापक संकट के संदर्भ में देखने की चेष्टा करें।"[2] डॉ० भारती के विचारों की सूक्ष्मता से देखा जाय तो निष्कर्षतः कहा जायेगा कि साहित्य में भी मूल्य का अर्थ जीवन की उत्कृष्टता के संदर्भ में स्वीकार्य है।

---

1. धर्मवीर भारती से साक्षात्कार : सम्पा0 पुष्पा भारती, पृ0 159-160
2. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, भूमिका

8. दार्शनिक मूल्य चेतना :

मूल्य चेतना के बिना दर्शन का कोई महत्व नहीं मूल्य बोध दर्शन का आधार है। जिस मूल्य चेतना द्वारा हमें जीवन और जगत के गूढ़तम रहस्यों का पता चलता है वही दार्शनिक मूल्य चेतना है। इसके अतिरिक्त जीवन के विविध क्षेत्र में नीति निर्देशक तत्वों, सदाचार आदि का निर्देश भी दार्शनिक मूल्य चेतना के द्वारा होता है। इसमें प्रत्येक दार्शनिक अपने तर्कों के द्वारा मूल्यों का प्रतिपादन करता है। दार्शनिकों ने एक तत्व को सर्वथा मान्य घोषित किया है कि जीवन मूल्य जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है। फिर तो जीवन मूल्य तो स्वयमेव ही दर्शन से दार्शनिक पृष्ठभूमि में विकसित हुए हैं। मनुष्य की दार्शनिक दृष्टि ने सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् शाश्वत मूल्यों की खोज की है। विनय, प्रेम, सद्भाव, नैतिकता, पुण्य, भगवद्भजन आदि मूल्य इसी दृष्टिकोण से उत्पन्न हुए है। भारती जी प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए लिखा हैं :-

"प्रेम की दिशा सृष्टि के प्रथम दिवस से कविता की अनिवार्य दिशा रही है और सृष्टि के अन्तिम दिवस तक रहेगी ।"[1]

विज्ञान के उदय ने दार्शनिक मूल्यों के समक्ष एक गहरा संकट उपस्थित कर दिया था। मनुष्य पहले जिन धर्मग्रन्थों में प्रणीत नियमों या आचार-विधानों को अन्तरात्मा की आधार-भूमि मानता था, वे धीरे-धीरे निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। यही कारण यह है कि नैतिक आदर्श की विभिन्न धारणाएँ परस्पर विरोधी प्रतीत होती है। इसीलिए भारती जी ने स्वीकार किया है कि :-

"मानववाद के उदयकाल में ईश्वर जैसी किसी मानवोपरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यो को नैतिक मूल्यों का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यों का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित होने लगी थी। इसी समय पहली बार यह स्पष्ट हो सका था कि

---

1. प्रगतिवाद एक समीक्षा, धर्मवीर भारती, पृ0 105

'अन्तरात्मा' मानवीय अन्तर में स्थित कोई दैवी या अतिप्राकृतिक शक्ति न होकर वस्तुतः मानवीय गरिमा के प्रति हमारी संवेदनशीलता का ही दूसरा रूप और मनुष्य के गौरव को प्रतिष्ठित करने और उसकी निरन्तर रक्षा करने के प्रति हमारी जागरूकता ही हमारी जाग्रत अन्तरात्मा का प्रमाण है।"[1]

विज्ञान के उदय के कारण औद्योगिक क्रान्ति अपने चरम शिखर पर पहुँच गयी थी। इस युग की विजय ने मनुष्य के अन्दर आन्तरिक उद्धिग्नता, क्षोभ, असंगति, अशान्ति इस कदर भर दिया था कि वह अपने को पराजित अनुभव करने लगा था फलस्वरूप उसने-

"एक नया आध्यात्मिक उपनिवेश खोजना शुरु किया जहाँ गहरी अज्ञात कन्दराओं में अथाह आध्यात्मिक सम्पत्ति भरी हुयी हो जिसे जाकर वह हस्तगत कर ले वह अब भी प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता था। पर इस बार पाश्चात्य विज्ञान के माध्यम से नहीं, पूर्वीय योग-विद्या के माध्यम से। अनुसंधान शालाएँ स्थापित करके नहीं, अध्यात्म-केन्द्र स्थापित करके।"[2]

इस दृष्टि से देखने पर हमारे सामने अपनी परम्परा का नया अर्थ समझ में आने लगता है। बौद्ध धर्म एशिया का सबसे व्यापक धर्म रहा है। इससे ही बोधिसत्व सिद्धान्त का विकास हुआ। इसका सम्बन्ध लोक-मंगल से जोड़ा गया है क्योंकि :-

"उदात्त घोषणा करने वाली वैष्णव भक्ति साधना और कितनी ही अन्य मध्यकालीन धर्म साधनाएँ इसी मानवीय गौरव को अपनी अपनी सीमाओं के बावजूद प्रतिष्ठित कर रही थीं।"[3] भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने आचरण एवं विवेक से युक्त दर्शन को सर्वोपरि माना है। भारतीय साहित्यिकों पर इस दर्शन का काफी प्रभाव पड़ा है। लेकिन इन्होंने साध्य एवं साधन की एकता पर भी बल दिया है। इसीलिये भारती जी ने लिखा है कि -

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 14
2. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 38
3. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 42

"गाँधी द्वारा प्रस्तुत जीवन दर्शन में मानव-विवेक की स्वतंत्रता की एक क्रान्तिकारी व्याख्या की गयी है। उनका यह कहना था, आचरण में न केवल संकल्प वरन् साध्य और साधन की एकता भी आवश्यक है क्योंकि यदि हमारा साध्य समता और प्रेम है और उसकी स्थापना के लिये हम विषमता और घृणा प्रयुक्त करते हैं तो वास्तव में हम अपने विवेक को पराधीन ही बना लेते हैं।"[1]

क्षण की महत्ता को वर्तमान भविष्य एवं अंधकार सभी में प्रतिपादित करते हुए भारती जी ने लिखा है -

"..... शायद हम भी रहते हैं संसार भी । नष्ट कुछ नहीं होता। जहाँ से हम चाहते हैं वह भी और जहाँ तक हम पहुँचते हैं वह भी। हम दोनों को जी चुके होते हैं, अपने में धारण किए होते हैं लेकिन अकस्मात् किसी एक क्षण में हम पाते हैं कि यह सब है तो, पर अकस्मात् हमारे लिए अर्थहीन हो गया है, अनिश्चित हो गया है और हम विराट शून्य में अकेले छूटते जा रहे हैं और हम अकेले छूटना नहीं चाहते। जीना चाहते हैं और अनिस्तित्व में-से अस्तित्व पाने के लिए अभिव्यक्त करना चाहते हैं अपने को और बिना संसार के हम अपने को अभिव्यक्त कैसे करेंगे, अतः हम किसी एक स्तर पर मूल्य और अर्थ देते हैं। हर चीज को और हर चीज के माध्यम से अपने को। पाये हुए और पाकर खोए हुए संसार को किसी एक स्तर पर 'रचते' हैं। ऐसे स्तर पर जहाँ कुछ भी फिर धुंधला और अर्थहीन न पड़े।"[2]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारतीय जीवन मूल्यों का आधार दर्शन ही है और दर्शन से अनुप्राणित होकर नैतिक मूल्य जीवन को सार्थक

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 84-85
2. सात-गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ0 9-10

बनाने में हमें सदैव प्रेरित करते रहते हैं इन्हीं जीवन-मूल्यों को भारती जी ने प्रेम, सद्भाव, दया, नैतिकता, पुण्य, भगवद्भजन आदि को अपने ग्रन्थों में समाहित किया है।

9. **मनोवैज्ञानिक मूल्य चेतना :**

सिग्मण्ड फ्रायड ने फैकनर के मनोविज्ञान एवं डार्विन के जीव विज्ञान से प्रभावित होकर मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ये मानव के आचरण को उसके स्वतंत्र विवेक और वैयक्तिक संकल्प का परिणाम न मानकर उसे एक सभ्य पशु मानते हैं क्योंकि-

"मनोविश्लेषण ने भी ऐसे सिद्धान्त प्रचारित किये हैं जो मानव आचरण को उसके स्वतंत्र विवेक और वैयक्तिक संकल्प का परिणाम न मानकर उसकी ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं जो मनुष्य को एक सभ्य पशु या अनपहचाना हुआ विक्षिप्त मानती है जिसके अनुसार मनुष्य का तथाकथित विवेकपूर्ण व्यवहार भी विश्लेषण के बाद उसके अचेतन में स्थित दमित वासनाओं, अन्धप्रवृत्तियों और कुण्ठित कामनाओं की यांत्रिक प्रतिक्रिया मात्र सिद्ध होता था।"[1]

मनोविश्लेषण को और व्याख्यायित करते हुए फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि -

"हमारे मन की चेतन परत तो केवल एक तिहाई होती है उसके नीचे दो तिहाई अर्द्धचेतन और अचेतन की मानसिकता से जिसका बोध भी नहीं रहता। हमारे अवचेतन में पुराने भय, पुरानी आशंकाएँ, पुरानी घृणाएँ बहुत गहरे उतरकर छिपकर बैठ जाती हैं, और चेतन स्तर पर होने वाले निर्णयों को अदृश्य सूत्र द्वारा कठपुतलों की तरह संचालित करती रहती हैं। इस प्रकार फ्रायड का मनोविश्लेषण सिद्धान्त एक दूसरे प्रकार की यांत्रिकता का प्रतिपादन करता है और स्वतंत्र विवेक और संकल्प को अस्वीकार कर मनुष्य की विकासोन्मुख दिशाओं को अवरूद्ध करता है।"[2]

---

1. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 82
2. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 82

जहाँ तक फ्रायड की मान्यताएँ है वे एकांगी सिद्ध हो चुकी हैं तभी उनका मानना है कि -

"मनुष्य का अवचेतन जगत उसकी दमित इच्छाओं का सुरक्षित कोष है जहाँ से वे अज्ञात रूप में छिपकर मनुष्य के समस्त व्यवहारों को उसके सृजन को प्रभावित करती हैं।"[1]

डास्टावस्की के साहित्य पर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त लागू किये गये किन्तु वे सही साबित नहीं हुए। आधुनिक मनस्तत्ववेत्ता सी0जी0 युंग ने फ्रायड के सिद्धान्त का विरोध करते हुए कहा है कि -

"फ्रायड की सारी स्थापनाएँ कलाकार के व्यक्तित्व पर लागू हो सकती है किन्तु जो कलाकृति उससे उद्भूत होती है वह अपने में एक स्वतंत्र वस्तु होती है। युंग कलाकार के दो रुप मानता है - एक में कलाकार साधारण मनुष्य होता है जिसके निजी सुख-दु:ख कुंठाए, आकांक्षाएँ हो सकती है, किन्तु दूसरे में वह निर्वेयक्तिक रचना प्रक्रिया का विधायक मात्र होता है। युंग कहता है कि कला का सृजन करने वाला कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जो अपनी इच्छानुसार कला का उपयोग अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करता है बल्कि इस कला के आशयों का साक्षात्कार अपने माध्यम से होने देता है।"[2]

फ्रायड की मान्यताओं ने साहित्य सृजन और दिवास्वप्न या फैंटेसी में एक ही चित्तीय प्रक्रिया का प्रतिफलन स्वीकार किया कि रचना को कलाकार की दमित वासना का प्रतिरुप मानकर उसके गौरव का क्षरण कर देता है। भारती जी नि:सन्देह साहित्य चिन्तन को एक मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने का औचित्य सिद्ध करते हैं कला की अन्त:प्रेरणा के बारे में लोगों की जो यह भ्रान्त धारणा है कि कला की अन्त:प्रेरणा हमें आकाश से मिलती है इसको अस्वीकार करते हुए कहते हैं कि :-

---

1. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 112
2. मानव मूल्य और साहित्य , धर्मवीर भारती, पृ0 113

"हममें एक उपेक्षा या असमर्थता की भावना होती है जिसके कारण हम अपने को अन्तर्जगत की कुछ शक्तियों को उपयोग में नहीं ला पाते। ये अज्ञात शक्तियाँ, हमारे दैनिक जीवन के तत्वों, उसके परिवेश और संवेगों से संयुक्त होकर अन्त:स्तल के गहन स्तरों में कार्य करती हैं और हम उनके भार से अक्रान्त हो उठते हैं और तब वे हमें अपनी निष्क्रियता की मन:स्थिति को जीतने के लिए विवश करती हैं - अर्थात हमारे जाने बिना जब उन शक्तियों के कारण कलाकृति हमारे अन्तर्जगत में बन जाती है और प्रकट होने के लिए हमसे माध्यम माँगने लगती है...... तब हम विश्वास करने लगते हैं कि यह कलाकृति किसी अज्ञात लोक से अवतरित हुई है।"[1]

मनोविश्लेषणात्मक आलोचकों ने कलाकृति और स्वप्न की समानताओं को तो महत्व दिया किन्तु फ्रायड द्वारा अचेतन पर अत्यधिक बल देने के कारण सृजन प्रक्रिया में चेतना का योगदान अस्वीकृत हो गया।

10. भारती की समीक्षा पद्धति : जीवन दृष्टि के आलोक में :

डॉ0 धर्मवीर भारती जी के सम्पूर्ण साहित्य का गहन अध्ययन करने से यह पता चलता है कि वे एक श्रेष्ठ कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, पत्रकार, नाटककार तथा समीक्षक एवं चिन्तक हैं। भारती जी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 नन्द दुलारे बाजपेयी, तथा डॉ0 नामवर सिंह की तरह एक श्रेष्ठ समीक्षक नहीं है वैसे तो हर साहित्यकार अपने आप में थोड़ा बहुत समीक्षक होता है। भारती जी को हम एक समीक्षक के रूप में न स्वीकार करते हुए उन्हें एक श्रेष्ठ चिन्तक के रूप में स्वीकार करते हैं।

भारती जी की जीवन के प्रति निश्चित धारणा रही है वे अपनी सीमाओं क्षमताओं को समझते रहते हैं तथा जीवन के प्रति वे सदैव सचेत रहे हैं इसीलिये धर्मवीर भारती जी ने "जिन्दगी से अलग रहकर नहीं"[2] अपितु जिन्दगी के संघर्षों को झेलते हुए अपनी तत्वज्ञान की

---

1. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 113

1. ठंडा लोहा, की भूमिका, धर्मवीर भारती, पृ0 3

प्यास को तृप्त करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने - "जानने की प्रक्रिया में जीने और जीने की प्रक्रिया में जानने वाले मिजाज।"[1] का उल्लेख किया है।

भारती जी के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जीवन के प्रति उनकी दृष्टि बिल्कुल साफ है। ये जीवन के प्रति सम्यक् दृष्टि रखते हुए अपने साक्षात्कार में बताया है -

"जीवन के सत्य से दूर खींचने वाली ताकतों से संघर्ष करते हुए, अपने जीवन-मूल्यों के प्रति पूरी ईमानदारी निभाते हुए सबके प्रति ईमानदार रहने में ही जीवन की सार्थकता है। सारे संघर्षो और पीड़ाओं के बावजूद मुझे जिन्दगी से बहुत प्यार है।"[2]

स्वस्थ जीवन दृष्टि जीवन संघर्षो में सहभागी होते हुए जीवन विषयक मूल्यों के गतिशील चिन्तन के द्वारा प्राप्त होती है। नये मूल्यों के अन्वेषण और उनकी पुनः स्थापना के लिए भारती जी ने मूल्यों पर एक पूरा ग्रन्थ ही लिखा डाला है। 'मानव मूल्य और साहित्य" भारती की दृष्टि में -

"अंतरात्मा वस्तुतः आधुनिक संदर्भ में मानवीय गौरव के प्रति हमारी जागरुक संवेदना का पर्याय है।"[3]

इसीलिए मूल्य चर्चा में भारती जी व्यक्ति समाज तथा साहित्य के प्रति पूर्ण जागरुक हैं। वस्तुतः भारती जी की जीवन दृष्टि सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ को प्रस्तुत करने में विशेष रूप से जागरुक रही है। भारती जी ने समाज में नारी के स्थान को विशेष महत्व दिया है क्योंकि उन्हें ऐसा लगता था कि समाज में नारी जो ममता, आदर्श, त्याग एवं पूजा की वस्तु थी अब वह बौनी तिरस्कृत एवं अपमानित है। उसे सामाजिक दृष्टि से नगण्य माना जाता

---

1. पश्यन्ती, धर्मवीर भारती, पृ0 5
2. धर्मवीर भारती से साक्षात्कार, सम्पा0 पुष्पा भारती, पृ0 179
3. मानव मूल्य और साहित्य, धर्मवीर भारती, पृ0 16

है। इसीलिए भारती जी ने अपने साहित्य में ऐसे नारी पात्रों का समावेश किया है जो समाज में क्रान्ति लाना चाहती हैं, क्योंकि जो प्राचीन परम्परायें और मान्यतायें हैं वे कभी-कभी व्यवस्था को जड़ बना देती हैं, जिससे उनका विकास अवरूद्ध हो जाता है, ऐसी परम्पराओं और मान्यताओं पर चोट भारती के पात्र जमुना, सत्ती और हरिया आदि के माध्यम से हुआ है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि भारती की समीक्षा पद्धति में वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, राजनैतिक, साहित्यिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक आदि मूल्य चेतना में मानव गौरव की रक्षा, प्रेम-भावना, मानवता, स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, सम्मान, देश-प्रेम, ईमानदारी और सभी आदर्शो का समावेश है, जो समाज कल्याण या मानव हित वाले व्यापक अर्थ से अनुप्राणित हैं।

****

अध्याय आठ

अध्याय - आठ

उपसंहार

(1) मूल्यों के बदलाव की आवश्यकता एवं सम्भावनायें

(2) निष्कर्ष

उपसंहार

जीवन मूल्य के कोशगत अर्थ निम्न प्रकार हैं। यों तो "यह शब्द संस्कृत का पुर्लिंग शब्द है जिसका अर्थ है - जीवन, जीता रहना, प्राण धारण, जीवित दशा, जीवन का आधार रूप वस्तु।

जीवन वह स्वाभाविक धर्म है जो कि वनस्पति, प्राणी और मनुष्य में समान रूप से मिलता है तथा अन्य वस्तुओं से अलग भी करता है।

संस्कृत-हिन्दी कोश के अनुसार- "मूल्य" शब्द संस्कृत की 'मूल धातु' में 'यत्' प्रत्यय लगाने से बना है, जिसका अर्थ कीमत, मजदूरी आदि होता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जन्म से मृत्यु पर्यन्त होने वाले जिन संस्कारों के सहारे निरन्तर सत्य के समीप पहुँचने का मार्ग प्रशस्त होता है वे ही संस्कार जीवन मूल्य कहे जाते हैं इस प्रकार सत्यता, दया, विनय जो दया का ही सार रूप है धैर्य, संतोष, समता, शील, ईमानदानी एवं अनुशासन आदि ही जीवन मूल्य हैं, जो मानव के भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन हेतु आवश्यक होते हैं और मानव को प्रगतिशील मानवीय जीवन की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। यदि साहित्यिक दृष्टि से विचार करें तो हम कह सकते हैं कि रचना के भीतर विद्यमान रहने वाला ऐसा उद्देश्य जो उसे किसी सामाजिक आदर्श, व्यक्तिगत उच्चता आदि से युक्त करता हो, उसे जीवन मूल्य कहते हैं।

मूल्यों की समाजशास्त्रीय अवधारणा के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि समाजशास्त्रीय मूल्यों में सामाजिक मान्यतायें, पद्धतियाँ, संगठन, परस्पर आचार व्यवहारादि, नैतिकता, रूढ़ि परम्परा, कायदा-कानून आदि को बनाये रखना तथा उनके आदर्शो का पालन करना है।

मूल्यों की दार्शनिक अवधारणा के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि भारत में प्राचीनकाल से ही दर्शनिक मूल्यों को जीवन में अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया। ये जीवन तत्वों का निचोड़ थे। परन्तु आज की दार्शनिकता जीवन की जिन परिस्थितियों से निर्मित होती है। वह अधिक स्थायी नहीं रहती है क्योंकि इसमें स्वार्थ की भावना विद्यमान रहती हैं।

मूल्यों की सांस्कृतिक अवधारणा के सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति ही मनुष्य को मानव बनाती है। यह सदैव गतिशील है। इसकी गतिशीलता का रहस्य मानव जीवन के सांस्कृतिक मूल्यों में निहित है। जो व्यक्ति का आन्तरिक एवं वाह्य विकास कर उसके जीवन को मूल्यवान बनाती हैं तथा अनेकत्व में एकत्व की स्थापना भी करती हैं। जीवन में वैयक्तिक समष्टिगत, आध्यात्मिक, भौतिक, नैतिक, सौन्दर्य-मूलक मूल्य अनेक प्रकार के होते हैं।

नैतिकता और मूल्यबोध के सम्बन्ध में नैतिकता एक ऐसा मूल्यबोध है जो युगानुरुप परिवर्तित होता रहता है। नैतिकता के कतिपय मानदण्ड सदैव अपरिवर्तित भी रहते हैं। यह भी सत्य है कि नैतिकता तथा मूल्य चेतना एक दूसरे के पूरक हैं। मूल्य चेतना के बिना नैतिकता तथा नैतिकता के बिना मूल्य चेतना की परिकल्पना नहीं की जा सकती है।

समकालीनता बोध परम्परित मूल्य-चेतना को नहीं मानता। नये मूल्यों की तलाश में वह जिस प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है, जिन समस्याओं में से उसे गुजरना पड़ता है इन सबके मूल में जो कुछ उसे सही एवं सार्थक प्रतीत होता है उन्हें प्रतिमानों के रूप में घोषित करता है। समकालीन मूल्यों की उपयोगिता वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय आदि सभी स्तरों पर आवश्यकताओं, मान्यताओं और उपलब्धियों आदि के अनुरुप निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। इसीलिए मूल्य-चर्चा में परिवर्तनशीलता को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है।

मानवतावादी जीवन मूल्यों में लोक हित विश्वबन्धुत्व, स्वार्थ त्याग की भावना एवं आन्तरिक सद्गुणों को जब हम सेवा एवं परहित की भावना में परिवर्तित कर देते हैं तथा मानव को मानव समझते हैं और सभी के साथ परस्पर साम्य तथा उदार दृष्टि का समावेश कर लेते हैं उसी समय हम सच्ची मानवता की प्रतिष्ठा करते हैं।

यहाँ पर मूल्यांकन तथा पुनर्मूल्यांकन की चर्चा प्रासांगिक प्रतीत होती है। किसी भी रचना व रचनाकार में मूल्य प्रतिपादन व उसके प्रति दृष्टि का आधार मूल्यांकन के आधार पर समझा जा सकता है इसलिये रचना की कसौटी मूल्य-प्रतिबद्धता है और मूल्यांकन में इसे आधार माना जाता है।

प्रत्येक युग की कृति में भी मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता प्रतीत होती है जब समकालीन जीवनमूल्यों में परिवर्तन होता है, तो पुनः उसके मूल्यांकन की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये किसी भी कृति के मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता बनी रहती है।

जीवन मूल्यों का प्रयोजन व्यक्ति के जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य है क्योंकि जीवन-मूल्यों को अपनाये बिना व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की उन्नति नहीं कर सकता है। वस्तुतः जीवन-मूल्यों का प्रयोजन ही समाज में नयी व्यवस्था का संचार करता है। ये मनुष्य को व्यक्तिगत स्वार्थ से निकालकर समाज के मानवीय कल्याण के लिए और लोकमंगल की भावना से आप्लावित होकर इन्हें मानवतावादी भूमि पर प्रतिष्ठित करता है।

मनोरंजन और लोकहित को जीवन का मूलभूत प्रयोजन माना गया है इसका उद्देश्य सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की अभिव्यक्ति है। इनसे ही मानवीय जीवन में सही व्यवस्था की तलाश होती है और मानव जीवन प्रकाशित होता है।

सामाजिक यथार्थ और मानव-मूल्य के सम्बन्धों में वैज्ञानिक युग के कारण शिथिलता आ गयी है, प्रेम, सेवा सद्भाव और सहानुभूति आदि तत्व क्षीण हो चुके हैं, व्यक्ति का व्यक्ति से स्वार्थ ही प्रमुख हो गया है।

प्रमुखतः जीवन मूल्य दो प्रकार के होते हैं- 1. शाश्वत जीवन मूल्य 2. समकालीन जीवन मूल्य। सत्य, प्रेम, दया, अहिंसा और करुणा आदि मूल्य शाश्वत हैं। ये शाश्वत मूल्य सदैव कालजयी होते हैं। जबकि समकालीन जीवन मूल्य देशकाल और परिस्थिति के अनुसार बदलते रहते हैं।

डॉ0 धर्मवीर भारती का जीवन-बोध रोमानी भावबोध से विकसित होकर यथार्थवाद, वास्तववाद तथा आदर्शवाद की ओर उन्मुख हुआ है। आपने परम्परागत लेखन के ध्वंसावशेष पर नये भाव बोध एवं नये मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, मूल्यबोध की सम्पूर्ण प्रक्रिया मानव के अस्तित्व पर आधारित है। भारती जी ने समस्त मूल्यों का स्रोत मानव-विवेक को ही स्वीकारा है। चाहे वह सामाजिक क्षेत्र हो या राजनीतिक आदि। इनके व्यक्तित्व पर पिता की गहरी छाप पड़ी थी। उनके मूल्य, उनकी प्रखरता उनकी उदार दृष्टि- उनकी देशभक्ति, उनकी समझौता विहीन ईमानदारी उनका आदर्श बन गयी थी। ये आस्थावादी कवि थे।इसलिए उन्होनें व्यक्ति स्वातंत्र्य उदार प्रगतिशील भावना, विवेक और मानवीय दायित्व जैसे मानव मूल्यों पर विशेष बल दिया है और प्रमुख रूप से मानवीय संवेदना को उभारने तथा ध्वस्त मानव मूल्यों के बीच नये जीवन मूल्यों की तलाश की है। वे दुःख, शोक, हानि, मरण, पराजय, द्वन्द्व, कुण्ठा, संत्रास आदि निषेधात्मक मूल्यों के द्वारा ही जीवन को गति प्रदान करते हैं।

मानव-मूल्यों का तात्पर्य यह है कि अपने परिवेश इतिहास क्रम और काल प्रवाह के अनुसार मनुष्य की स्थिति कैसी है और उसका महत्व क्या है? मानव-मूल्य अन्तः संघर्ष मानव सभ्यता के उद्भव से लेकर आज तक मनुष्य के हृदय में अन्त:संघर्ष किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है। रीति, नीति, आचार, विचार, परम्पराएँ आदि सैकड़ों विषयों के सन्दर्भ में मनुष्य व्यवस्था के क्रम में चिन्तन करता रहा है। इस हेतु उसके मानस में शिव और अशिव का निरन्तर संघर्ष चलता रहा है। भारती जी के साहित्य में अन्त:संघर्ष कई रूपों में ध्वनित हुआ है।

सामाजिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में भारती जी ने अपनी अगणित वाह्य प्रक्रियाओं, आचरणों और सामाजिक सम्बन्धों में तादात्म्य स्थापित करना रहा है। भारती जी ने लिखा है कि:-

मनुष्य और मनुष्य का रागात्मक अथवा सामाजिक सम्बन्ध मनुष्य का निरपेक्ष सत्य,

मर्यादा, मूल्य या किसी अरुप भावात्मक अथवा आदर्शात्मक सत्ता से सम्बन्ध, इन सम्बन्धों की विविधता और इनका वैचित्र्य तथा इन सबके जटिल प्रभाव से निर्मित होने वाला मानव-व्यक्तित्व अपनी असंख्य विविधताओं में अपरिमित सम्भावनाओं को छिपाये रहता है। राजनैतिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में भारती जी की सबसे प्रमुख चिन्ता सामान्य जन की मुक्ति की है । क्योंकि - मानव में जो अन्ध रूढ़ियाँ है, कुण्ठाएँ हैं, अविवेक हैं, मूर्च्छना है, मृत परम्पराएँ आदि प्रवृत्तियाँ हैं, जिनके कारण वह युग-युग से दास बनता चला आया है। उनसे भी उसे मुक्त कराना है। भारती जी के काव्य में उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से रेखांकित हुयी हैं। आर्थिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में भारती जी सचेत दिखाई देते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आज व्यक्ति स्वार्थी और खूँखार हो गया है। इसी व्यवस्था के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच सहज इन्सानी रिश्ता नहीं कायम हो पाया है। हमारी संस्कृति का ढाँचा ही बदल गया है। सारे आदर्श खोखले तथा बेमानी साबित हुए हैं। इन सबके बावजूद भारती जी ने मानवीय जीवन मूल्य को सर्वोपरि स्थान दिया है।

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में भारती जी की सोच बहुत ही मूल्यवान तथा भारतीय समाज के लिए प्रासांगिक है। यही कारण है कि इनकी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों आदि में रूमानियत के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का सुन्दर निर्वाह हुआ है। भारतीय संस्कृति में सर्वाधिक बल पारिवारिक जीवन पर दिया है, क्योंकि परिवार ही समाज व राष्ट्र की इकाई है । इससे ही मनुष्य का विकास सम्भव है। जब परिवार सुगठित होंगे तब राष्ट्र भी सुगठित हो जायेगा, किन्तु दुर्भाग्य है कि आजकल अपने देश भारत में ही नहीं अपितु समस्त संसार के देशों में संयुक्त परिवार प्रणाली का ह्रास हो रहा है। इसीलिए भारती जी ने लिखा है कि हमारी संस्कृति की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं। जैसे- वर्ण, वर्ग सम्प्रदाय के बावजूद गाँव, मुहल्ला, पास-पड़ोस की मानवीय आत्मीयता, अपनापन, इनसानियत के स्तर पर बड़े छोटे का भेदभाव न कर एक पारिवारिकता की मधुरता इन सबको पुनः प्रतिष्ठित करना है।

भारती जी का दर्शन सामाजिक अधिक है दार्शनिक कम। वे भारतीय चिन्तन की मानववादी परम्परा के पूर्ण समर्थक रहे हैं। उनकी दर्शनाभिव्यक्ति में ब्रह्म, जगत, माया, आत्मा

परमात्मा आदि शब्दों का प्रयोग नाममात्र ही हुआ है और शून्य की कल्पना जीवन रहस्य एवं दार्शनिकता का संकेत मात्र छोड़ जाती है। भारती का अधिकांश साहित्य उनके विशेष चिन्तन से अनुप्राणित है जिसका अपना दर्शनिक महत्व भी कम नहीं है।

भारती जी के काव्य का विकास प्रमुखतः दूसरा सप्तक से हुआ, यह 1951 में प्रकाशित हुआ। इसमें वक्तव्य के अलावा 12 कवितायें संकलित हैं।

भारती जी की कविता का प्रस्थान बिन्दु ठण्डा लोहा है। यह 1952 में प्रकाशित हुआ। इसमें 39 कवितायें संग्रहीत है, जिसका प्रमुख स्वर प्रेम का है। इसके बाद सात-गीत वर्ष प्रकाश में आया। इसमें 51 कवितायें संकलित हैं। सन् 1954 में गीति नाट्य अंधायुग, प्रकाशित हुआ। अगला पड़ाव 'कनुप्रिया' है। जो सन 1959 में प्रकाश में आया। भारती जी के काव्य का विकास मूल्यों की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। दूसरा सप्तक में संग्रहीत अधिकांश कविताओं में उन्मुक्त रूपोपासना और उद्दाम यौवन के सर्वथा मांसल गीत ही मिलते हैं। कहीं-कहीं पर प्रेम की मादक सूक्ष्मता के साथ सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना भी विद्यमान है। कविता भारती के लिये शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है। अतः किशोरावस्था में प्रणय, रूपासक्ति और आकुल निराशा की सहज और साहसपूर्ण अभिव्यक्ति करते हुए कवि अपने बाहर की जिन्दगी की चुनौती को स्वीकार करता है। आज के संघर्षपूर्ण कटु और कीचड़ में बिलबिलाती हुई जिन्दगी के सुन्दरतम अर्थ ढूँढ़ता है। कवि का आकुल मन अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को, एक जनवादी भाव-भूमि को ग्रहण करता है और कविता को सृजन की आवाज मानकर, आदमीयत का नया विश्वास और नया इतिहास देने का संकल्प करता है। इसीलिए भारती जी ने 'कविता की मौत' शीर्षक में आज की विसंगतियों और विद्रूपताओं अविश्वास और अन्धकार में छटपटाती हुई, जिन्दगी को नवीन मानवता का संदेश दिया है।

भारती का गीतिकाव्य जीवन मूल्यों पर आधारित है। इनका अधिकांश गीति साहित्य शाश्वत एवं समकालीन जीवन मूल्य बोध पर आधारित है। इनके गीतों में जो मूल्य चेतना प्राप्त होती है उसमें विशेषतः प्रणय सम्बन्धी मूल्य दृष्टि, सामाजिक चेतना, भारतीय संस्कृति परोपकार

और आदर्श आदि से सम्बन्धित मूल्य दृष्टि प्राप्ति होती है। भारती के गीतों की सबसे बड़ी विशेषतः यह है कि उन्होंने अपने गीतों में जहाँ परम्परागत जीवन मूल्यों का प्रशस्तिगान किया है वहीं दूसरी ओर समकालीन परिदृश्य में मूल्यों की जड़ता का विरोध किया है तथा युगानुरुप मूल्यों की सापेक्षता पर सदैव सचेत रहे हैं। भारती के गीतों की रचना भूमि बिल्कुल नये ढंग की है। अत्यधिक गेयता और संगीत प्रचुरता के स्थान पर पाठ्यतत्व से समन्वित है।

"ठंडा लोहा' का प्रमुख स्वर प्रणयानुभूति का रहा है। प्रिय के रूप और सौन्दर्य में डूबा हुआ कवि जहाँ प्रिय के 'फिरोजी होंठ' जाफरानी तन, किरनों की नरम मुलायम बाँहे शरद के चाँद से उजले धुले पाँव आदि अनेक छवियों की रम्य किन्तु जीवन की दृष्टि से अर्थहीन अभिव्यक्ति करता है, वहीं पर वह ठंडा लोहा, फूल मोमबत्तियाँ और सपने, कवि और अनजान पगध्वनियाँ, कविता की मृत्यु जैसी रचनाओं में युग के दंश और अभिशाप को अभिव्यक्ति देने की छटपटाहट महसूस करता दिखाई देता है। भारती जी ने कैशोरावस्था के प्रणय, रूपासक्ति, और आकुल निराशा से एक पावन आत्मसमर्पणमयी वैष्णव भावना और उसके माध्यम से अपने मन के अहम् का शमन कर अपने से बाहर की व्यापक सच्चाई को हृदयंगम करते हुए संकीर्णताओं और कट्टरता से ऊपर एक जनवादी भावभूमि की खोज की है। भारती जी शारीरिक प्रेम में विश्वास करते हुए वासना को अनिवार्य बताते हुए लिखा है -

"न हो यह वासना तो जिन्दगी की माप कैसे हो?
किसी के रूप का सम्मान मुझ पर पाप कैसे हो?"

वासना जीवन के लिए अनिवार्य है क्योंकि वासना के बिना जीवन निरर्थक है। भारती जी के विचार में वासना पाप नहीं प्रेम है और वह जीवन साथी से सम्बन्धित और मर्यादित होकर अमृत हो जाती है। भारती जी मूलतः रोमैंटिक कवि हैं। इसीलिए इनकी कवितायें प्रण्यानुभूति सम्बन्धी, रूपवर्णन प्रधान, विरह एवं निराशा से भरी हुई हैं एवं सामाजिक मार्यादा को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है। इनकी दृष्टि निषेधात्मक मूल्यों के बीच आशा और अनास्था जैसे मूल्यों की खोज करती है। इन्होंने रोमानी भावबोध और समस्याओं के प्रति बौद्धिक दृष्टि का समन्वय कर मानव मूल्यों की स्थापना की है।

डॉ0 धर्मवीर भारती के काव्य संग्रह 'सात गीत वर्ष' में मानव आस्था और मूल्यबोध का स्वर प्रबल रहा है। नयी कविता की व्यापक प्रवृत्ति व्यक्ति स्वातन्त्र्य की चेतना, जनसामान्य की मुक्ति की कामना भी रही है। भारती जी का "टूटा पहिया' कविता सामान्य से सामान्य व्यक्ति की अस्तित्व-चेतना की साहसपूर्ण स्वीकृति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है और 'प्रमथ्यु गाथा' संकटों से घिरे सामान्य जन के मुक्ति - संदेश की वेदना पूर्ण कथा है। रथ का टूटा पहिया का जीवन भी उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना समाज के किसी विशिष्ट मनुष्य का, क्योंकि वह चक्रव्यूह में फँसे अभिमन्यु का महारथियों के ब्रह्मास्त्रों से लोहा लेने में सहायक बन सकता है। अतः वह त्याज्य और गर्हित नहीं है। प्रमथ्यु भी सामान्य जन की मुक्ति के लिए कभी न खत्म होने वाली वेदना को सहर्ष स्वीकार करता है तथा साहस और विश्वास के साथ ही दासता, कायरता आदि के अंधकार को चुनौती देता हुआ जीवन की ज्योति को हृदय में निरन्तर जगाये रखते हुए कहता है-

"कोई तो ऐसा दिन होगा
जब मेरे ये पीड़ा-सिक्त स्वर
उसके मन को बेध मूर्च्छित प्रमथ्यु को जगायेंगे।"

कवि मानववाद की स्थापना करते हुए आस्था और विश्वास का दीप जलाकर सभी पराजितों को आशा और विश्वास में जीवन बिताने के लिए उत्साहित करते है तथा सामूहिक शक्ति को सर्वोपरि मानते हैं। भारती जी का व्यक्तित्व जीवन की विषम परिस्थितियों से निर्मित हुआ है। इन्हीं विषमताओं के होते हुए भी कवि ने स्वतन्त्रता, स्वाभिमान और आत्मसम्मान एवं देश-प्रेम की महत्ता का वर्णन किया है। कवि एक जागरुक नागरिक की भाँति अपने परिवेश से परिचित है। इसीलिए इन्होंने परम्परा तथा युग सापेक्ष दृष्टि का सम्यक निर्वाह किया है।

अंधायुग की कथा महाभारत की कथा से ली गयी है। उन्होंने पौराणिक कथानकों को आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में उठाया है। इस कृति की यह विशेषता है कि महाभारत काल के विनाशकारी युद्ध को आज के विश्वयुद्धों के परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की है। जिस

प्रकार महाभारत काल में धृतराष्ट्र के पुत्र मोह से उत्पन्न दम्भ और अहंकार तथा दुर्योधन के व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा के कारण सारे विश्व को संत्रास झेलना पड़ रहा है।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि आज जबकि विश्व की लगभग आधी आबादी रोटी, कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताओं से जूझ रही है। हमारे समाज और राष्ट्र के कर्णधार सारे विश्व को बारुदी सुरंगों में ढकेलने का कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार अंधायुग कृति अपनी मूल्य चेतना में समकालीन परिवेश का दर्पण दिखाती है। अंधायुग का सारा अंधेरा वर्तमान युगीन आस्थाओं के विघटन से उत्पन्न अंधेरा है। महाभारत के युद्ध को आधार बनाकर भारती ने आधुनिक युद्ध-संस्कृति के विकृत मूल्यों तथा जर्जर विश्वासों कुण्ठा, निराशा, रक्तपात प्रतिशोध विकृति-कुरुपता, अंधापन गहरे में अनुभव कर युग के प्रति जिस लेखकीय दायितव का परिचय दिया वह शायद ही नयी कविता की किसी अन्य रचना में मिले। अश्वत्थामा का प्रतिशोध और हिसां, गांधारी और धृतराष्ट्र की अन्धी ममता, और राज्यनीति, प्रहरी का जीवन की निरर्थकता का बोध, संजय के कर्मलोक से बहिष्कृत हो जाने की पीड़ा, सत्य की खोज के पक्षधर युयुत्सु की आत्महत्या युधिष्ठिर के अविवेकपूर्ण और दायित्वहीन निर्णय, वर्तमान को अस्वीकार कर भविष्य में झूठी आस्था आदि विकृत मूल्यों का विघटन दिखाते हुए कवि ने कृष्ण के माध्यम से आस्था की खोज की है, वही मानव भविष्य का रक्षक है। यह आस्था की खोज भारती जी की मानवतावादी दृष्टि का परिणाम है।

अंधायुग में स्थापित मानवीय जीवन मूल्य मानव विवेक विवेक पर खड़े होने का उद्घोष करते हैं।

डॉ0 भारती की कनुप्रिया एक ऐसी कृति है जिसमें अस्तित्वादी चिंतन और संवेदनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा की गयी है। इस कृति का महत्व इस बात में भी है कि इसमें राधा और कृष्ण के चरित्र को आधुनिक परिदृश्य में लौकिक धरातल पर अंकित किया गया है। अभी तक कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा में महाकवि एवं अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा वर्णित

प्रणयनी राधा का स्वरूप यह स्पष्ट होता था जिसमें राधा के चरित्र की महत्ता, उसके प्रणय के बलिदान, त्याग, करुणा की प्रतिमूर्ति, वियोगिनी नायिका आदि की दृष्टि से महत्वपूर्ण था। हरिऔध के प्रिय-प्रवास में पहली बार राधा का युगानुरुप समाजसेवी और आदर्श चरित्र प्रस्तुत हुआ है जो आधुनिक समाज के अधिक अनुकूल था। किन्तु भारती जी ने पहली बार राधा के चरित्र को समकालीन जीवन के यथार्थ के निकट लाने का प्रयास किया है। 'कनुप्रिया में भारती ने राधा कृष्ण के जीवन चरित्रों में पारम्परिक मूल्यों की गरिमामय प्रतिष्ठा की है। ये नवीन मूल्य राधा कृष्ण को समकालीन समाज में अत्यन्त प्रासंगिक बना देते हैं और वे कोई पौराणिक कथापात्र न होकर हमारे बीच के आदर्श कथापात्र बन जाते हैं।

भारती जी का कहानी साहित्य जीवन मूल्यों पर आधारित है। कहानीकार के रूप में 'बन्द गली का आखिरी मकान', 'चाँद और टूटे हुए लोग' संग्रह की कहानियाँ भारती की प्रतिष्ठा में चार चाँद लगाती है। भारती जी की कहानियों के पात्र जीवन के यथार्थ से लिए गये हैं। यथार्थ धरातल पर यथार्थ को ही देखने भोगने तथा परखने की क्रिया को चित्रित किया गया है। इनकी कहानियों में यथार्थ जीवन का संघर्ष क्षणों में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन में परलक्षित होता है। 'गुलकी बन्नो' हमारे समाज की उन तमाम नारियों का प्रतीक है जो अज्ञानता और रूढ़िवादिता के कारण जिन्दगी का नरक भोगती है। इनकी कहानियों में भूख, गरीबी, शोषण, अंधविश्वास, समाज में नारी की स्थिति, बंगाल के अकाल के समय भूख से व्याकुल होकर मरते हुए मनुष्यों आदि की समसामयिक स्थितियों को गहरे रूप से स्पर्श किया गया है। वास्तविक जीवन मूल्यों को तलाश कर हर परिस्थितियों में उन्हें प्रस्थापित करने का प्रयास किया गया है। उनमें युग सन्दर्भो के अनुकूल जीवन सत्य की पकड़ है, उर्ध्वगामी चेतना है और अमानवीय हालातों से टकराने की ताकत है। 'गुलकी बन्नो' चरित्र-चित्रण मानवीय संवेदना एवं यथार्थ की दृष्टि से हिन्दी की प्रतिनिधि कहानियों में से एक मानी जा सकती है।

समकालीन भारतीय परिवेश में अनेक विसंगतियां और विद्रूपतायें हैं। समकालीन व्यक्ति अनेक कुंठाओं से जूझ रहा है। महानगरीय संक्रान्ति के कारण व्यवस्था के प्रति विद्रोह है। इन सबके बीच मूल्यबोध तलाशने का काम भारती के साहित्य में किया गया है। यहाँ अनास्था-बोधक मूल्य बोध है। जबकि दूसरी तरफ समाज के स्वस्थ एवं सरस वातावरण का चित्रण भी हुआ है। जैसे-प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति-चित्रण, समाज के लोकमंगल का स्वरूप आदि। इस प्रकार की आशा और आस्थावादी भावनाओं के बीच भारती जी ने मूल्यबोध तलाशे हैं। आज के युग में संक्रमणकारी व्यक्ति दोहरा व्यक्तित्व जी रहा है। फलस्वरूप समाज में एक नया मूल्यबोध पैदा हुआ है, जिस पर भारती जी ने विशेष दृष्टि डाली है। इनके साहित्य में जहाँ अनुभव की प्रौढ़ता है, वहीं रचनात्मक काल्पनिक उड़ान के साथ-साथ परम्परा एवं काल सापेक्ष स्थिति के प्रति विश्वास भी है। इन्होंने भूख और गरीबी, अत्याचार और शोषण से जूझते दीन-हीन पीड़ित, दलित संघर्षशील जनों में सकारात्मक मूल्यों को ही स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारती जी की दृष्टि नैतिक आस्थाओं और मानवीय मूल्यों पर दृढ़ है। उनके भीतर दया, करुणा, प्रेम और सहानुभूति का अजस्र स्रोत विद्यमान है, दीनू, गुलकी, सावित्री, मुंशी, हरिनाकुस का बेटा आदि ऐसे ही पात्र हैं।

भारती जी की प्रत्येक कहानी किसी न किसी चिन्तन बोध से अनुप्राणित है। उनकी कहानियों में एक ओर भारतीय संस्कृति के प्रति गहरा अनुराग व्यक्त है तो दूसरी ओर समाज की अनेक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश भी है। वे समाज की सड़ी-गली परम्पराओं से चिपके नहीं रहना चाहते हैं। वे समग्रतः भारतीय सामाजिक समरसता और सामाजिक स्वास्थ्य के सम्बर्द्धन में विश्वास रखते हैं। इनकी अधिकांश कहानियों में इसका सम्यक निर्वाह भी हुआ है। इनकी कहानियों का चिन्तन बोध सहज एवं मानवीय है, जिसमें यथार्थ और आदर्श दोनों का समावेश हुआ है। 'चाँद और टूटे हुए लोग' की कहानियों में जहाँ कल्पना की उड़ान है वहीं रोमानी काव्यात्मकता, आदर्श, प्लेटोनिक प्रेम एवं भावनात्मक सम्बन्धों के प्रति आसक्ति भी है। ऐसा लगता है, भारतीय जी का जीवन दर्शन बहुत हद तक प्रसाद से प्रभावित है। वस्तुतः भारती के चिन्तन बोध में बदलाव हुआ है क्योंकि कुछ नवीन सृजित करने की सम्भावना हर स्तर की

ध्वंसात्मकता में ही निहित होती है। यही नवीन परिकल्पना जब समाज में मान्य हो जाती है तो मूल्य बन जाती है। इनके कहानी साहित्य में मूल्यों की तलाश का संघर्ष निरन्तर जारी रहता है।

कथ्य एवं शिल्प के धरातल पर भारती जी की उपलब्धि उसके प्रयोग की सहजता में है। इनके कहानी संग्रह में कथ्य विविधता के साथ-साथ समस्याओं को प्रस्तुत करने की सक्षम कला का दर्शन होता है। इनकी भाषा साधारण बोलचाल की है जिसमें तत्सम् तद्भव, उर्दू अंग्रेजी और देशज शब्दों के प्रयोग हुए हैं। कहीं कहीं उनकी लोक संपृक्ति सूचक बोली के शब्दों के प्रयोग दिखाई देते हैं जैसे अँबवा, डगरिया, भोर, अमराइयाँ, मरजाद पुरवैया, दुपहरिया, अन्हियारी, आदि। किन्तु उनकी भाषा की सबसे बड़ी उपलब्धि उसकी संवादात्मकता और नाटकीयता के गुणों की है। स्वाभाविक और प्रभावशाली ढंग से लिखी गयी ये कहानियाँ अपने कथ्य को पाठकों तक बखूबी संप्रेषित करती है। भारती ने चरित्र के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है भारती जी के ये पात्र जिस वातावरण से उपजे हैं वह वातावरण इनके व्यक्तित्व को सजीव और सरल बना देता है। इनकी भाषा सरल है किन्तु काव्यात्मक ढंग से निर्मित की गयी है। इनके कथोपकथन आकर्षक हैं। नाटकीयता से युक्त हैं। विश्लेषणात्मक और गत्यात्मकता है। मनोवैज्ञानिकता, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता और व्यंजनात्मकता इनमें खूब है। विवरणात्मकता, पत्रात्मकता, आत्मनिवेदन आदि भी भारती की शैली में यथा स्थान प्राप्त हैं। भाषा शैली की दृष्टि से इन कहानियों को विवरणात्मक, पत्रात्मक, आत्म निवेदन रूपात्मक शैली के अन्तर्गत विभाजित किया गया है। भारती जी ने बिम्बो का निर्माण भी कहानियों में यथास्थान किया है। बिम्बों के माध्यम से बात को स्पष्ट करना इनकी प्रधान विशेषता रही है। बिम्बों के माध्यम से संवेदनशीलता उभारी गयी है। भाषा चित्रोपम मंजी हुई प्रभावपूर्ण तथा अनूठे प्रतीक विधान और व्यंजना से युक्त हैं। हम कह सकते हैं कि भारती की कहानी साहित्य भी उनके काव्य की तरह मूल्य बोध से अनुप्राणित है। इनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि ये समाज की यथार्थ तस्वीर को हमारे सामने रखती हैं। ये कहानियाँ मानव-मन की आस्था-अनास्था के बीच मूल्यों का संधान करती दिखाई देती हैं। इन कहानियों में भारती का मौलिक चिन्तन सर्वत्र दृष्टव्य है तथा प्रत्येक कहानी एक सार्थक सन्देश से युक्त है। ये

कहानियाँ अपने चिन्तन भाव, भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से परम्परागत कहानियों से सर्वथा पृथक नूतन और मूल्य चेतना से युक्त हैं। इनकी कहानियों में भाषा का टटकापन और शिल्प की ताजगी सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

उपन्यासकला के क्षेत्र में भी डॉ0 भारती सफल रहे हैं। उनके दोनों उपन्यास हिन्दी साहित्य में अपना विशेष स्थान रखाते हैं। लोकप्रियता की दृष्टि से, गुनाहों का देवता का महत्व तो अक्षुण है। वासना एवं प्रेम सम्बन्धी मूल्य दृष्टि भारती के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः भारती जी ने गुनाहों का देवता में प्रेम, वासना, अन्तर्द्वन्द्व, घुटन, दमन, अतृप्ति और कुण्ठा जैसे निषेधमूलक भावों या विषयों पर भी अपनी मूल्य चेतना का आरोपण किया है। इसी कारण उनके उपन्यास किसी महान विचारों या विशिष्ट लक्ष्य या महान पात्रों के अभाव में भी मूल्यवान हैं। नये कवि या रचनाकारों की यह विशिष्ट पहचान है कि सहज और सामान्य कथा प्रसंगों साधारण पात्रों एवं सामान्य विषयों पर भी श्रेष्ठ कवितायें, कहानी या उपन्यास लिख देते हैं। भारती के उपन्यासों में वस्तुतः आकर्षक भाव भी अपनी मूल्य दृष्टि के कारण उत्कर्ष बन पड़े हैं। आधुनिक युग चेतना के बहुस्तरीय जटिल यथार्थ को प्रेम और वासना के परिप्रेक्ष्य में व्याप्त समस्याओं का विस्तृत चित्रण हुआ है। इस उपन्यास में मानव मन की गहराईयों में उतरकर इस मनोवैज्ञानिक सत्य को खोज निकाला है कि स्नेह और वासना, भावना और शरीर की प्यास एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं, एक जीवन का आदर्श है दूसरा उसका यथार्थ। इसमें भावुकता अधिक है साथ ही गहन चिन्तन का अभाव है। सुधा का अपने दाम्पत्य जीवन में सहयोग न करना तथा सेक्स के प्रति अरूचि अति आदर्शवादी कल्पना है इसमें थोड़ा यथार्थ होना चाहिये था जो नहीं हुआ । अस्तु भारती जी का यह उपन्यास आदर्शवादी चेतना से अनुप्राणित है। अविश्वास आदमी की प्रवृत्तियों को जितना बिगाड़ता है, विश्वास आदमी को उतना ही बनाता है। चन्दर के चरित्र में निखार और दृढ़ता विश्वास के कारण ही आया है। वह डॉ0 शुक्ला के प्रति पूर्ण ईमानदारी से अपने कार्य को सम्पूर्ण करता है। चन्दर के व्यवहार से खुश होकर ही शुक्ला जी अन्तर्जातीय विवाह करने के लिये राजी हो जाते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में प्रेम की बजाय विवाह को अधिक महत्व देते हैं इसीलिए भारती जी ने

पम्मी के माध्यम से सांस्कृतिक मूल्यों को स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है। जीवन के विकास के लिए आत्मा और शरीर दोनों का समन्वय आवश्यक है इसमें एक के न होने पर व्यक्ति कुंठा का शिकार हो सकता है सुधा और चन्दर दोनों असफल प्रेमी एवं अहं मंडित हैं। इसमें एक का विनाश दूसरे के निर्माण के लिये ही होता है यही तो है सुधा के प्रेम की मूल्य चेतना यहीं भारती का प्रेम सम्बन्धी मूल्यबोध दृष्गिोचर हुआ है। स्वयं को मिटाकर अपने प्रिय पात्र को कुछ दे जाना ही इस प्रेम का मूल्यवान होना है। भारती जी ने मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त सामाजिक बुराईयाँ, रीति-रिवाज, रूढ़ियों, परम्परा, अंधविश्वास आदि के बीच परम्परागत एवं समकालीन मूल्यों का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया है।

'सूरज का सातवाँ घोड़ा' उपन्यास जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा से अनुप्राणित है। यह जातीय और आर्थिक विषमताओं से उत्पन्न सामाजिक संकट की अभिव्यक्ति में आधुनिक है। जमुना, सप्ती, तन्ना इसी सामाजिक संकट के बीच अपनी जिन्दगी की अर्थवत्ता ढूँढ़ते हैं। पात्रों में एक तरफ घोर सामाजिक तथा आर्थिक विषमता है। तो दूसरी तरफ कामवासना का प्रबल और विकृत रूप है। वर्तमान में व्यक्ति के अन्दर मानवीय मूल्यहीनता बढ़ती जा रही है। वह एक साथ कई टुकड़ों में बँटकर जी रहा है। पारिवारिक सम्बन्धों में इतनी तेजी से बदलाव आया कि हमारा नैतिक स्तर दिन प्रतिदन गिरता जा रहा है। हमारी संवेदनायें शून्य हो गयी है। युवा मन कुंठा से भर गया है क्योंकि नैतिकता, ईमानदारी और विश्वास जैसी कोई चीज ही नहीं रही है। सारे सम्बन्धों की नींव अर्थ से ही संचालित होती जान पड़ती है। जमुना, लीला और सत्ती जैसी नारियाँ समाज के कठोर नियमों, रूढ़ियों और आर्थिक विषमता के कारण ही ही वे अपने आदर्श प्रेम को प्राप्त करने में असफल हो जाती हैं। आज के युग में अर्थ की महत्ता सर्वोपरि प्रतीत होती है। इसीलिए भारती जी ने लिखा है कि - "वास्तव में आर्थिक ढाँचा हमारे पर इतना अजब सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएँ उनसे स्वाधीन नहीं हो पातीं। आर्थिक नींव अत्यन्त खोखली है जिसके कारण विवाह परिवार, प्रेम आदि सभी की नींवे हिल गयी हैं। मानव जीवन के अन्दर अर्थ इतना प्रधान हो गया है कि मानवता उससे दूर हो गयी है। कुछ हद तक यह सही प्रतीत होता है कि प्रेम आर्थिक स्थितियों से अनुशासित होता है लेकिन इससे भी बढ़कर कोई चीज है इसीलिए भारती जी ने जोर देकर कहा है कि - "व्यक्ति को तो हर हालत में ईमानदार बने रहना चाहिये।"

इस उपन्यास में प्रेम सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान में समाज के सम्पूर्ण परिवेश के अंदर बनते बिगड़ते सम्बन्धों को बड़ी सच्चाई से पेश किया है। एक ओर महेसर दलाल, चमन ठाकुर तथा रामधान आदि धूर्त लोग सुखी हैं। तो दूसरी ओर तन्ना और सत्ती जैसे ईमानदार लोग दुःखी है। इनका शोषण होता है। इन सबके बावजूद भी वह अपनी परम्परा और कर्तव्य को पूरी ईमानदारी से निभाते हैं ये आदर्श के प्रतिमूर्ति थे। प्रत्येक व्यक्ति में जीवन के प्रति अदम्य निष्ठा और साहस होना चाहिये। इस उपन्यास में भारती जी ने करुणा, संवेदना, सहानुभूति तथा समता जैसे मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। अपने समाज के निम्न मध्यवर्ग की विसंगतियों और विद्रूपताओं का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है साथ ही मानव मूल्यों में आस्था रखने के कारण पूरी निष्ठा और विश्वास के साथ भावी जीवन के सपनों का निर्माण करना है। इस उपन्यास का महत्वपूर्ण सन्देश है कि साहस के साथ कर्तव्य पथ पर अग्रसर होना चाहिए। इस प्रकाश आशा और आस्था इस उपन्यास के महत्वपूर्ण जीवन मूल्य हैं।

भारती जी के निबंध साहित्य में मूल्य चेतना सम्बन्धी विचार हुआ। इनके निबंधों में उनकी सर्जनात्मक क्षमता का परिचय सहज ही मिल जाता है। इन निबंधों में उनकी संवेदनशीलता की रागात्मक अभिव्यक्ति मानव मूल्यों के खोज की चिन्तन विधि उनकी तर्कणा शक्ति राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की समझ की अद्‌भुत क्षमता, पत्रकारिता की शुष्कता को साहित्यिक स्तर प्रदान करने का महारथ हासिल किया है। इस प्रकार प्रत्येक रचना का सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक पौराणिक साहित्यिक और मनोवैज्ञानिक आदि मूल्यों की दृष्टि से अपना अपना महत्व रखते हैं। इनमें भारती जी की भावुक, स्वच्छन्दतावादी चेतना, वैयक्तिकता और सामाजिकता तथा सहजता के साथ ही दायित्व निर्वाह बौद्धिक चिन्तन की क्षमता और मूल्य दृष्टि को देखा जा सकता है। कहनी अनकहनी में लिखे गये एक छोटे से निबंध एक छोटी खबर एक बड़ा संदर्भ में प्रेम, हमदर्दी, मानवता, स्वाभिमान, ममता और विश्वास आदि जीवन मूल्यों को स्थापित करते हुए भारती जी ने लिखा है - "सिर्फ हमदर्दी के दो बोल प्यार की एक थपकी इन्सानी जज्बात की समझ, नेकी, ममता, आत्मत्याग, प्यार, एक दूसरे के लिऐ कुछ न कुछ करने की मानवीय भावनाएँ कितनी प्रमुख हैं।"

एकांकी संग्रह में इनका मौलिक चिन्तन सर्वत्र व्याप्त है तथा प्रत्येक एकांकी मानव मन की पीड़ा को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करती है जो मानव मन की अनुभूतियों का संधान करती दिखाई देती है तथा मूल्यों को प्राप्त करने के लिऐ अपने कर्तव्य का निर्वाहन करते हैं।

भारती जी के संस्मरणों में उनकी मूल्य दृष्टि समय से लड़कर समाज की तत्कालीन नैतिक व्यवस्था को आगे बढ़ाकर तथा सभी मनुष्यों में एक सच्ची मानवीय सहानुभूति, पारस्परिक सौहार्द और निश्चछल स्नेह की प्रतिष्ठा की है क्योंकि हजारो वर्ष पूर्व हमारे देश के साहित्य और दर्शन में जीवन मूल्यों की जोसुरसरिता प्रवाहित हो रही थी वह आज भी किसी न किसी रूप में निरन्तर चली आ रही है। इसीलिए डॉ0 भारती भारतीय दर्शन के प्रति सदैव लालायित रहे हैं।

प्रजातंत्र की पद्धति में भारती जी राष्ट्र की गतिविधियों का संचालन करने के लिए केवल नेता या प्रशासक को महत्वपूर्ण नहीं मानते बल्कि वह बुद्धिजीवियों को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा आधुनिकता एवं परम्परा के प्रति सदैव सजग दिखाई देते हैं इसीलिए वह एक दूसरे की निष्ठा पर पूर्ण विश्वास और आस्था बनाये रखते हैं।

भारती जी का समीक्षा साहित्य सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पौराणिक, राजनैतिक, साहित्यिक, दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक मूल्य चेतना से अनुप्राणित हैं। इन्होंने अपने साहित्य में मानवीय गौरव की रक्षा, प्रेम-भावना, मानवता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता देश प्रेम ईमानदारी आदि मूल्यों को समावेश किया है जो समाज कल्याण या मानव हित वाले व्यापक अर्थ से अनुप्राणित हैं।

विश्व के सभी विचारक प्राय: एक मत हैं कि जीवन में मूल्यों की आवश्यकता निर्विवाद हैं। आज चारों ओर जीवन मूल्यों का विघटन तीव्र गति से हो रहा है संस्कृति रसातल को जा रही है और समाज प्रतिक्षण पंकिल हो रहा है। हम सभी को मिलकर इस संकट से मानवता को बचाना होगा। संगोष्ठी के संयोजक डॉ0 के0एल0 जैन ने मानवीय मूल्यों की महत्ता

प्रतिपादित करते हुऐ ठीक ही कहा है कि मानवीय मूल्य ही हर युग में प्रासंगिक रहे हैं। ऋषि मुनियों के इस देश में जहाँ, त्याग, अहिंसा, करुणा, प्रेम, विश्वास और परोपकार को ही जीवन तत्व माना गया है। इनके अभाव में जीवन व्यर्थ है। ऐसा सर्वत्र कहा गया है लेकिन समकालीन स्थितियाँ दिनों दिन बिगड़ती जा रही है। साहित्य अपने मानक मूल्यों से हटता जा रहा है। तुलसी और कबीर की तरह आज प्रेरक संदेश नहीं मिलते यह चिन्ता का विषय है। आज आवश्यकता इस बात की है हम अपनी संस्कृति के रक्षा के लिये मूल्यों की वकालत करें। क्योंकि इनके अभाव में संस्कृति विकृति हो जायेगी। इस खतरे से बचने का एक ही उपाय है कि हम अपने मूल्यों को पहचानें और दूषित वातावरण से निकलकर प्रेम और पुण्य का विकास करें, प्रदर्शन का परित्याग करें और स्थायी मानवीय तत्वों को हृदय में जगा दें क्योंकि संसार में अगर कुछ श्रेष्ठ है तो वह मानवता है। यदि मानवता नष्ट हो गयी तो बचेगा क्या? मूल्यहीनता के इस दौर में पनप रही संवेदनहीनता मानव के अस्तित्व को निगल जाने के लिए मुँह फैलाये है। इसके प्रति समय रहते यदि मानव सचेत नहीं हुआ तो मानवीय अस्तित्व के जो खतरे सामने आयेंगे उनसे जूझना काफी मुश्किल होगा क्योंकि मूल्यों का संकट ही इक्कीसवीं सदी की सबसे बड़ी चुनौती है। आज मनुष्य के सामने सबसे बड़ा अहम् सवाल मूल्यहीनता का है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानक मूल्यों के ह्रास ने जिन्दगी को अर्थहीन बना दिया है। प्रत्येक सम्बन्ध चाहे वह पिता पुत्र का हो या माँ-बेटे का, पति पत्नी, भाई-बहिन का हो या निकटवर्ती रिश्तों का सभी में ह्रास हो रहा है। उससे जीवन काफी असहाय, निरीह और बेजान सा लग रहा है आज स्थितियाँ दिनो दिन इतनी बढ़ रही हैं कि जीवन मूल्यों की आवश्यकता अपरिहार्य हो गयी है क्योंकि इक्कीसवीं शताब्दी के द्वार पर खड़ा आज का मानव एकदम थका हारा, बेबस और कमजोर है। उसके पास न तो प्रेम से भरा हृदय है न संवेदनाओं से भरा जीवन न सहानुभूतियों से युक्त मन है न उदारता से भरी भावनायें। वह तो केवल अपने ही स्वार्थ के शिकंजे में जकड़ा हुआ दूसरों के साथ विश्वासघात, झूठ, बेईमानी घृणा और ईर्ष्या से ही काम चला रहा है। लिहाजा ऐसे में भारती जी ने अपने साहित्य में जीवन मूल्यों के माध्यम से मनुष्यों को सजग होने की प्रेरणा दी है तथा समकालीन परिवेश और परिस्थितियों में भी शाश्वत मूल्यों जैसे - प्रेम, करुणा, अहिंसा और परोपकार आदि को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति को जिस हद तक प्रभावित किया है तथा उससे मूल्यों के क्षण की जो स्थितियाँ निर्मित हुई है वह एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। ऐसे में भारती जी ने अपने साहित्य के माध्यम से जो पहल की है वह निश्चित रूप से सराहनीय है निरन्तर विकसित होने वाली विचार शक्ति के द्वारा भारती जी ने अपने साहित्य में ऐसे मूल्यों का समावेश किया है जो नयी नयी सम्भावनाओं को प्राप्त करने के लिए दिशा निर्देश करते हैं।

इस प्रकार हमारे भारतीय चिन्तकों ने जीवन मूल्यों को समाज की आवश्यकता और उसकी समृद्धि के अनुसार परिवर्तित करते रहे हैं। तथा समय-समय पर सामाजिक हित को देखाते हुए नये नये जीवन मूल्यों का निर्धारण करते हैं। समकालीन परिवेश में प्राचीन जीवन मूल्यों का ह्रास हो रहा है क्योंकि नये-नये जीवन मूल्य स्थापित हो रहे हैं किन्तु समाज में जीवन मूल्यों की आवश्यकता सदैव बनी रही है।

जीवन मूल्य जब रूढ़ होकर बेजान होने पर भी चलते रहते हैं तो वे समाज को हानिकारक सिद्ध होते हैं, ऐसे में हमें उन हानिकारक जीवन मूल्यों के बदलने की आवश्यकता और संभावना भी हो जाती है। जैसे बाल विवाह और सती प्रथा जैसे ह्रासमान मूल्यों को बदलने में ही समाज और देश का कल्याण हो सकता है क्योंकि व्यक्ति का जीवन समाज सापेक्ष होने के कारण उसे समाज और देश के कल्याण के लिये बलिदाना करना पड़ता है, जिससे समाज के साथ अनुकूलन और समायोजन बना रहे। कुछ ऐसे ही उदात्त उद्देश्यों को जो उसे किसी सामाजिक आदर्श व्यक्तिगत उच्चता आदि से जोड़े, जीवन में उतारना पड़ता है वे ही जीवन मूल्य होते हैं।

आजादी के बाद हमारे देश की संस्कृति और परिस्थिति के अनुसार आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक नीतियाँ न बनाकर पश्चिम की भौतिकतावादी, भोगवादी सभ्यता की अंधी नकल में पड़कर हम इंसानियत से दूर होते जा रहे हैं अतः हमें चाहिये कि हम अपने जीवन मूल्यों को भोगवादी प्रवृत्ति से बाहर निकालकर समन्वयवादी प्रवृत्ति की ओर

मोड़। जीवन मूल्यों में बदलाव किये बिना हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित नहीं रख सकते हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन मूल्यों में सुधार करना होगा। इसीलिए भारती जी का साहित्य पुरानी जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं को ढहाने का प्रयत्न करता है क्योंकि परम्परागत बासी मूल्यों को नवीन जीवन दृष्टि और अभिव्यंजना शैली की आवश्यकता है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारती जी ने जीवन मूल्यों के बदलाव को स्वीकारते हुए प्राचीन मूल्यों की महत्ता को भी स्वीकार कर उनमें आयी विसंगतियों और विद्रूपताओं को दूर करने का प्रयास किया है। वहीं नवीन जीवन मूल्यों को स्वीकार कर मूल्यों के बदलाव की सम्भावना भी व्यक्त की है।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ :

1.	अंधायुग	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
2.	इन्द्रजाल	:	जयशंकर प्रसाद
3.	कहनी अनकहनी	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
4.	गुनाहों का देवता	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
5.	चाँद और टूटे हुए लोग	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
6.	ठंडा लोहा	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
7.	ठेले पर हिमालय	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
8.	दूसरा सप्तक	:	सम्पा0 अज्ञेय
9.	नदी प्यासी थी	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
10.	पश्यन्ती	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
11.	प्रगतिवाद एक समीक्षा	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
12.	बन्द गली का आखिरी मकान	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
13.	मानव मूल्य और साहित्य	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
14.	सात गीत वर्ष	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
15.	सपना अभी भी	:	डॉ0 धर्मवीर भारती
16.	सूरज का सातवाँ घोड़ा	:	डॉ0 धर्मवीर भारती

(ख) शोध समीक्षा ग्रन्थ :

1.	अंधायुग एक सृजनात्मक उपलब्धि	:	डॉ0 सुरेश गौतम
2.	आज का हिन्दी साहित्य संवेदना और दृष्टि	:	डॉ0 रामदरश मिश्र
3.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	:	डॉ0 रामगोपाल सिंह चौहान

4.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	:	अज्ञेय
5.	आधुनिक हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियाँ	:	डॉ0 विद्या चौहान
6.	आधुनिक हिन्दी साहित्य	:	डॉ0 रामगोपाल सिंह चौहान
7.	आधुनिक काव्य में नवीन जीवनमूल्य	:	डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल
8.	आठवें दशक की हिन्दी कहानी में जीवनमूल्य	:	डॉ0 रमेश देशमुख
9.	आर्य संस्कृति का उत्कर्षापकर्ष प्रकरण	:	महादेवशास्त्री दिवेकर
10.	उपेन्द्रनाथ अश्क, कहानी के इर्द गिर्द, प्रस्तोता	:	डॉ0 सुरेश सिन्हा
11.	एकांकी नाटक संग्रह का आलोचनात्मक अध्ययन	:	ज्वाला प्रसाद शर्मा
12.	दर्शनशास्त्र का इतिहास	:	डॉ0 देवराज
13.	दर्शन-संग्रह	:	डॉ0 दीवानचन्द
14.	द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	:	डॉ0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
15.	धर्मवीर भारती व्यक्ति और साहित्यकार	:	डॉ0 पुष्पा वास्कर
16.	धर्मवीर भारती : साहित्य के विविध आयाम	:	डॉ0 हुकुमचन्द राजपाल
17.	धर्मवीर भारती : कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ	:	डॉ0 ब्रजमोहन शर्मा
18.	धर्मवीर भारती चिन्तन और अभिव्यक्ति	:	डॉ0 हरिवंश पाण्डेय
19.	धर्मवीर भारती से साक्षात्कार	:	पुष्पा भारती
20.	नई कविता	:	गिरिजा कुमार माथुर
21.	नयी कवितायें : एक साक्ष्य	:	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
22.	नयी कविता : पुरातन सूत्र	:	डॉ0 मानसिंह वर्मा
23.	नए प्रतिमान : पुराने निकष	:	लक्ष्मीकांत वर्मा
24.	निराला काव्य में मानव-मूल्य और दर्शन	:	देवेन्द्रनाथ त्रिवेदी
25.	नीतिशास्त्र	:	शांति जोशी
26.	पूर्व पश्चिम : भारतीय जीवन	:	डॉ0 राधाकृष्णन

27. प्राचीन भारती संस्कृति : बी0एन0 लूनिया

28. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका : डॉ0 नगेन्द्र

29. भारतीय दर्शन : डॉ0 बल्देव उपाध्याय

30. भारत में समाजशास्त्र प्रजाति और संस्कृति : गौरीशंकर भट्‌ट

31. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास : डॉ0 भीखनलाल आत्रेय

32. भारती का काव्य : डॉ0 रघुवंश

33. भारतीय सामाजिक संस्थाएँ : डॉ0 गोपाल

34. भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास : डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकर

35. मानववाद और साहित्य : डॉ0 नवल किशोर

36. मूल्य मीमांसा : गोविन्दचन्द्र पाण्डे

37. मूल्य-सन्दर्भ और सामाजिक परिवर्तन : नन्द चतुर्वेदी

38. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त : गोविन्द त्रिगुणायत

39. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य (खण्ड-प्रथम, द्वितीय) : डॉ0 भरत कुमार सिंह

40. स्वतंत्रता और संस्कृति : विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी

41. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-उपन्यास साहित्य की समाजशास्त्री पृष्ठभूमि : डॉ0 स्वर्णलता

42. स्वतन्त्रता की ओर : हरिभाऊ उपाध्याय

43. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्यः युगीन संदर्भ : डॉ0 सुभद्रा पैठणकर

44. स्वच्छन्दतावाद और धर्मवीर 'भारती' का काव्य : मुहम्मद इम्तियाज खाँ

45. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी का विकास : डॉ0 सूबेदार राय

46. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह 'दिनकर'

47. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन : डॉ0 देवराज

48.	समाजवाद : प्रेरणा व प्रक्रिया (मराठी)	:	सम्पा० आनन्द कुलकर्णी व बसन्त देशपांडे
49	समाजशास्त्र का मूल तत्व मराठी	:	डॉ० या॰श्री मेहेंदल
50.	समकालीन प्रतिनिधि कवि	:	अनन्त कीर्ति तिवारी
51.	समकालीन कवि और काव्य	:	कल्याणचन्द्र
52.	समकालीन कविता के तीन पड़ाव	:	हुकुमचन्द राजपाल
53.	साहित्य समीक्षा और संस्कृति बोध	:	डॉ० देवराज
54.	साहित्यिक निबन्ध	:	बद्रीनाथ तिवारी
55.	सातवें दशक की कहानी में मानवीय सम्बन्ध विशेष सन्दर्भ: मोहन राकेश	:	चन्द्रकान्ता बंसल
56.	साठ वर्ष और अन्य निबन्ध	:	सुमित्रानन्दन पन्त
57.	साहित्य का मूल्यांकन	:	प्रो० सिद्धेश्वर प्रसाद
58.	साठोत्तरी कविता में सांस्कृतिक चेतना	:	डॉ० महावीर वत्स
59.	साहित्यिक निबन्ध संग्रह	:	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
60.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	:	हजारी प्रसाद द्विवेदी
61.	हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य की सांस्कृतिक चेतना	:	डॉ० रविकुमार 'अनु'
62.	हिन्दी गद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव	:	डॉ० शंकरलाल जायसवाल
63.	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	:	डॉ० त्रिभुवन सिंह
64.	हिन्दी उपन्यास : सिद्धान्त और समीक्षा	:	डॉ० मक्खनलाल शर्मा
65.	हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य	:	डॉ० प्रेम भटनागर
66.	हिन्दी उपन्यास साहित्य : एक अध्ययन	:	डॉ० गणेशन
67.	हिन्दी उपन्यासों में नायक	:	डॉ० कुसुम वार्ष्णेय
68.	हिन्दी उपन्यास	:	डॉ० सुषमा धवन
69.	हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना	:	डॉ० एन०के० जोसफ

70.	हिन्दी का गद्य साहित्य	:	डॉ0 रामचन्द्र तिवारी
71	हिन्दी कहानी : उद्‌भव और विकास	:	डॉ0 सुरेश सिनहा
72.	हिन्दी कथा साहित्य : समकालीन संदर्भ	:	डॉ0 ज्ञान अस्थाना
73.	हिन्दी वांङ्मय : बीसवीं शती	:	डॉ0 नगेन्द्र
74.	हिन्दी कविता : तीन दशक	:	डॉ0 रामदरश मिश्र
75.	हिन्दी नवलेखान	:	डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी
76.	हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व	:	डॉ0 मंजुला गुप्ता
77.	हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य	:	मोहिनी शर्मा
78.	हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य	:	डॉ0 रमेशचन्द्र लवानिया

(ग) अँग्रेजी ग्रन्थ

1.	Culture and Anarchy	:	Mathew Arnold
2.	Fundamentals of Ethics	:	W.M. Urban
3.	Human Values in a Mechanistic Universe	:	Margarat A. Boden
4.	Hamlet	:	Shakespeare
5.	Moral Values and the idea of God	:	W.R. Sorley
6.	Modern India and the West	:	O. Mele
7.	Principia Ethica	:	G.E. Moore
8.	Sociology	:	Jeseph H. Fichter
9.	The Social structure of values	:	R.K. Mukherjee
10.	The cultural Heritage of India Vol. III	:	M. Hirriyanna

11.	Understanding Human Society	:	W. Galds Chmidt
12.	Truth in God	:	Mahatma Gandhi

(घ) कोश ग्रन्थ :

1.	मानक हिन्दी कोश	:	
2.	वृहत हिन्दी कोश	:	कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव
3.	हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-9	:	हृदयनारायण मिश्र
4.	हिन्दी साहित्य कोश भाग-1	:	सम्पा0 धीरेन्द्र वर्मा
5.	संस्कृत हिन्दी कोश	:	वामन शिवराम आप्टे
6.	मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश	:	सत्य प्रकाश, बलभद्र मिश्र
7.	ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी	:	सर मोनियर विलियम
8.	Dictionary of Philosophy	:	Degobert D. Runes
9.	Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. VIII	:	Ed. by Jemes Hasings 1915

(ङ) पत्र-पत्रिकायें :

1.	कल्पना	:	फरवरी, 118, 1961
2.	दायित्व और स्वातन्त्र्य : अविच्छिन्न मूल्य, सम्पादकीय आलोचना	:	जनवरी, 1956
3.	श्री देवराहा बाबा दिव्य आलोक (ज्ञान कर्म एवं भक्ति की त्रमासिकी)	:	अक्टूबर-दिसम्बर, सन् 1995 प्रो0 अजब सिंह का आलेख महामेघ
4.	धर्मयुग	:	15 अप्रैल 1973, डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी
5.	नयी कविता	:	अंक-7, डॉ0 जगदीश गुप्त

6. पहल : 37, सम्पा0 ज्ञानरंजन

7. बिन्दु : मूल्य विश्लेषण : अंक, अक्तूबर, 1967
अनु0 नन्द चतुर्वेदी

8. यंग इण्डिया : 3 अप्रैल, 1924

9. सप्त सिन्धु : वर्ष 18, अंक-1, जनवरी, 1971

******